ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

महाकवि धनञ्जयविरचिता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

अनेकार्थनिघण्टुः एकाक्षरीकोशश्च

सम्पादक

पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, सप्ततीर्थ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रति

चैत्र, वीरनि० सं० २४७६
वि० सं० २००७
अप्रैल १९५०

मूल्य
साढे तीन रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा
संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैनसाहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भंडारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)
प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतीर्थ, आदि
बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी
मुद्रक—पं० पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, काशी।

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्णा ९
वीर नि० सं० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

ANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No. 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekartha nighantu and Ekakshari Kosha

EDITED WITH NOTES

By

Pt. SHAMBHU NATHA TRIPATHI

Vyakaranacharya, Sapta Tirtha

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

irst Edition
'00 Copies.

CHAITRA, VIR SAMVAT 2476
VIKRAMA SAMVAT 2007
APRIL 1950.

Price
Rs. 3/8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited, Jain agamic, Philosophical, Pauranic literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhransha, Hindi, Kannada, Tamil Etc. will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholars and Jain literature of popular interest will also be published.

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof. MAHENDRA KUMAR JAIN

NYAYACHARYA, JAIN-PRACHINA NYAYATIRTHA Etc.

Professor of Bauddha Darshana, Sanskrit Mahavidyalaya

Banaras Hindu University

SANSKRIT GRANTHA No. 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY.

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY.

Founded in Falguna Krishna 9, Vir Sam. 2470

Vikram Samvat 200
18th Feb. 1944.

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras, founded by Shri. Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few worksinvarious languages such as Snskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar, Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor. The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhanamjaya. The first is called N A M A M A L A, a collection of synonyms, while the other is called A N E K A R T H A—N A M A M A L A, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksairasvamin in his famous commentry on AMARAKOSA The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhunath Tripathi, a Saptatirtha and also a Vyakaranacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi excels the Bhsyakara both in ingenuity and accuracy, nay, I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited, but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words, a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chaturvedi, Vyakaranacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible, and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar, the General Editor, in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949.

P. L. V A I D Y A, M. A.; D. Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राक्कथन

(हिन्दी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मूर्तिदेवीजी की स्मृति के लिए साहु शान्तिप्रसाद जी जैन द्वारा संस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक उत्साहवर्धक योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशाल दृष्टि व कल्पना वाले सभी अंगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत है तथा अब तक इस संस्था से संस्कृत, प्राकृत, पाली, आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ से अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशन के लिए तैयार हैं।

वर्तमान ग्रन्थ में प्रसिद्ध कोशकार धनञ्जय की दो कृतियाँ सम्मिलित हैं। पहली नाममाला कहलाती है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का संग्रह है और दूसरी अनेकार्थ नाममाला, जिसमें अनेक अर्थ-बोधक शब्दों का संग्रह है। पहली कृति में २०० श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उससे काफी छोटी है। प्रथम कृति के सम्बन्ध में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकीर्ति का भाष्य पहले पहल प्रकाश में आ रहा है। अमरकीर्ति ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया है और अपनी दृष्टि में आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को शामिल कर दिया है। उनके भाष्य की वही सरणि पद्धति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन ख्यातनामा पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ ने बड़ी सावधानी से तथा प्रमाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया है। उनकी टिप्पणियों का अध्ययन करने से, मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ है कि पण्डित त्रिपाठी—युक्ति और शुद्धि दोनों में कहीं-कहीं भाष्यकार को भी मात कर गये हैं, इतना ही नहीं, उनके व्युत्पत्ति संबन्धी स्पष्टीकरण और भी अच्छे हैं। मुझे विश्वास है कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न की प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादित दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकीर्ति के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची, यौगिक शब्दों की सूची, उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई हैं। यह सब पण्डित महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने किया है। सचमुच में ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया है जितना मानवी शक्ति से संभव था। और इस सब के लिए मैं प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की सराहना करता हूं जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वन्मण्डली को एकत्रित किया है।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय
६ सितम्बर, १९४९

पी० एल० वैद्य
एम० ए० डी० लिट०
मयूरभंज प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष, संस्कृत पाली विभाग।

प्रस्तावना

"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति"—ब्रह्मबिन्दु०

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात की सूचना देता है कि साधक को पहिले शब्दशक्ति और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भावार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। वस्तुतः शब्द भावों के ढोने का एक लंगड़ा वाहन है। जब तक संकेतग्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द संकेतभेद से भिन्न भिन्न अर्थो का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता की विवक्षा को सूचित करते हैं, पदार्थ के वाचक नहीं हैं। 'घट' शब्द का संकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का द्योतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरविषाण भी शब्द है जिसका अखंड वाच्य पदार्थ इस संसार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घड़ा मौजूद है। अतः शब्द के सम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेढ़ी खीर है। फिर भी शाब्दिकों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिग्रह या संकेतग्रहण। जिस अर्थ में जिस शब्द का संकेतग्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक हो जाता है। यह संकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कठिन है। ईश्वर को संकेत ग्रहण कराने के लिए घसीटना श्रद्धा की वस्तु है। इसका इतना ही अर्थ है कि वृद्धपरम्परा से शब्द संकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया संकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसंकेत हैं। इस संकेतग्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं:—

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥"

अर्थात्—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से संकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा संकेत ग्रहण हो भी जाय पर रूढ़ और योगरूढ़ शब्दों का संकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अन्ततः कोश ही एक ऐसा उपाय बचता है जिससे सभी प्रकार के शब्दों का संकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भंडार। व्याकरण से सिद्ध या वृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध कैसे भी यौगिक रूढ़ या योगरूढ़ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ संग्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भंडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलियां थीं उच्चारण करना पाप घोषित किया था। फिर भी संस्कृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपसर्ग आदि के योग से शब्दोत्पादन शक्ति थी

उसीके कारण यह बन्धनबद्ध होकर भी विद्वद्भोग्य अवश्य बनी रही। संस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी बोली होने का सौभाग्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्माधर्म विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सीमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहां तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। ये लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और फिर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाधारित वर्गप्रभुत्व से संस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा० महाभाष्य के पस्पशा आह्निक में लिखा है कि—"तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै, नापभाषितवै, म्लेच्छो ह वा एष अपशब्दः।" अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश का ही। अपशब्द म्लेच्छ हैं। अपशब्द का विवरण भी वहीं यह दिया है—"यदि तावच्छब्दोपदेशः क्रियते, गौरित्येतस्मिन्नुपदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽपशब्दा इति।" अर्थात्–गौ शब्द है और गावी गैया आदि अपशब्द हैं।

यद्यपि भाषा को संस्कृत रखने के लिए व्याकरण का संस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है, परन्तु उसके उच्चारण में किसी जाति विशेष का या वर्ग विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रुक ही जाती है। नाटकों में स्त्री, शूद्रों तथा दासों से प्राकृत भाषा का बुलवाया जाना उक्त रूढ़ि का ही साक्षी है।

इतना ही नहीं, धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह सहज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रभुत्व के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे आर्थिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध में मौलिक क्रान्ति महाश्रमण महावीर और बुद्ध ने की। उनने भाषा के इस कल्पित बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पामर से पामर व्यक्तियों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इनने स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिंगानुशासन से मुक्त हों। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं, जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्पित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर ईसा की तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं को गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं। शासनादेश प्राकृत भाषा में चलते रहे हैं। पुनः संस्कृत युग में इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग में जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना संस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से संस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। दार्शनिक क्षेत्र में उथल पुथल तो नागार्जुन दिग्नाग समन्तभद्र सिद्धसेन अकलंक आदि के ग्रन्थों से ही मची। तात्पर्य यह कि श्रमण परम्परा ने मध्यकाल में संस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ–

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महाकवि धनञ्जय ने २०० श्लोकों में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम, 'वृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर बन्दर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकीर्ति विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्देश पूर्वक बताई गई है। उणादि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निर्व्युत्पत्ति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महापुराण, पद्मनन्दि शास्त्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत, द्विसन्धानकाव्य, वृहत्प्रतिक्रमण भाष्य, महाभारत, सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी, अमरसिंह भाष्य, आशाधर महाभिषेक, नीतिसार, शाश्वत, हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यशःकीर्ति, अमरसिंह, आशाधार, इन्द्रनन्दि, क्षीरस्वामी, पद्मनन्दि, श्रीभोज, हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तियां तो अमरकीर्ति की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

"म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य स्पर्शेनेति मरुत्" अर्थात् जिसके स्पर्श से क्षुद्र जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

"न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा" जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननांदा–ननद है।

"यज्ञानां पशुकारणलक्षणानामरिः यज्ञारिः" अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव हैं। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है:—"इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णे अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेदः।" इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार अधिष्ठाता वीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञातकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भी वीर-सेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण–

अमरकीर्तिकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन झालरापाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब पं० महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तैयार किये हैं। टिप्पणियां पं० शंभुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिश्रम से लिखी है। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणों में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्त्ता महाकवि धनञ्जय हैं। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम श्लोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ख्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पाया जानेवाला यह श्लोक स्वयं इसका साक्षी है:—

"प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥"

अर्थात्—अकलङ्कदेव का प्रमाण शास्त्र, पूज्यपाद का लक्षण—व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह श्लोक नाममाला के भाष्यकार अमरकीर्ति के सामने था, उनने इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। ठीक भी है; क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथ चरित के प्रारंभ में द्विसन्धान काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है:—

"अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।
वाणा धनञ्जयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम्।"

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों को ही प्रिय कैसे लगेंगे जैसे कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्ष्यों के भेदक मर्मभेदी वाण कर्ण को प्रिय नहीं लगते?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धारा-धीश भोजराज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (पृ० ४०२) में किया है।

जल्हण (१२वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्र-शंसा में निम्नलिखित पद्य उद्धृत है:—

"द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनञ्जयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः॥"

इस श्लोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमुग्धकर सरणि से उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषापहार स्तोत्र भी वनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह स्तोत्र कवि ने अपने सर्पदष्ट पुत्र का विष उतारने के लिए वनाया था।

समयविचार—

इनके समय निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं:—

(१) प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता प्रभाचन्द्र (ई० ११वीं सदी) ने इनके द्विसन्धान-काव्य का उल्लेख किया है अतः ये ११वीं सदी के वाद के विद्वान् तो नहीं हैं।

(२) इसी तरह वादिराज सूरि (सन् १०३५) ने पार्श्वनाथ चरित में धनञ्जय और द्विसन्धान का निर्देश किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं।

(३) जल्हण (१२वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्तिमुक्तावली में जो पद्य उद्धृत किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर हैं। इनका उल्लेख सोमदेव (ई० ९६०) के यशस्तिलक चम्पू में पाया जाता है अतः राजशेखर का समय ई० १०वीं सदी सुनिश्चित है। राजशेखरके द्वारा प्रशंसित होने के कारण धनञ्जय का समय १०वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता।

(४) डॉ० हीरालालजी ने षट्खंडागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ० ६२) में यह सूचित किया है कि जिनसेन के गुरु वीरसेन स्वामी ने धवला टीका (पृ० ३८७) में अनेकार्थ नाममाला का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया है:—

"हेतावेवं प्रकाराद्यैः व्यवच्छेदे विपर्यये ।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः ॥"

यह श्लोक अनेकार्थ नाममाला का है। धवलाटीका वि० सं० ८७३ सन् ८१६ में समाप्त हुई थी अतः धनञ्जय का समय ९वीं सदी के बाद नहीं हो सकता।

(५) धनञ्जय ने अकलंक देव का उल्लेख 'प्रमाणमकलङ्कस्य' श्लोक में किया है। अकलंक का समय ई० ७वीं सदी निश्चित है, अतः धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई० १२वां शतक का मध्य निर्धारित किया है। (पृ० १७४) उनने अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ० के० बी० पाठक महाशय का यह मत[1] भी उद्धृत किया है कि—"धनञ्जय ने द्विसन्धान महाकाव्य की रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्य में की है"। पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय ई० ८वीं सदी का अन्त और नवीं का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में जो ई० १२वीं सदी की रचना है, राजशेखर के नाम से उद्धृत 'द्विसन्धाने निपुणतां' श्लोक काव्यमीमांसाकार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्त्ता राजशेखर का। संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकद्वय यहां भ्रान्ति कर बैठे हैं, वे स्वयं जल्हण को १२ वीं सदी का विद्वान् लिखकर भी उसमें उद्धृत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं!

अतः धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार से ई० ८वीं का उत्तर भाग और नवीं का पूर्व भाग प्रमाणित होता है।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुष्पिका वाक्य लिखा है:— "इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्त्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां धनञ्जयनाममालायां प्रथमकाण्डं व्याख्यातम्" इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति 'त्रैविद्य' उपाधि से विभूषित थे और वे सेन्द्रवंश (सेनवंश) में उत्पन्न हुए थे।

इन्होंने अपने को 'शब्दवेधा' उपाधि से अलङ्कृत किया है।

मंगल श्लोकों में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्दि और समन्तभद्र के साथ ही साथ एक कल्याण-

---

१. इसी के आधार से कल्पद्रुकोश की प्रस्तावना (P. XXXii) में श्री रामावतार शर्मा ने भी भी धनञ्जय का समय १२वीं सदी लिखा है।

र्कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने ग्रन्थ के बीच में जहां आवश्यकता भी नहीं है वहां भी अपना नाम देने में संकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोकों की उत्थानिका में भी "सम्प्रति मनुष्यवर्ग आरभ्यते अमरकीर्तिना" (पृ० १३) आदि लिखा है। जो स्पष्टतः भ्रम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकांश की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—"वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना। अधुना इदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते। केन भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहां 'केन' का उत्तर 'धनञ्जयेन' होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है:—

(१) 'छक्कम्मोवएस' आदि ग्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति[1]। इन्होंने वि० सं० १२४७ भादों सुदी १४ के दिन छक्कम्मोवएस ग्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसवीय १२ वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये अमितगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुरु परम्परा यह है:—अमितगति, शान्तिषेण, अमरसेन, श्रीषेण, चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के प्रगुरु अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इस प्रकार है[2]।....देवेन्द्र विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति,.....धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२९५ वैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निषद्या बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५० के आसपास सिद्ध होता है। ये ईसवीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३०७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है:—

"जीयादमरकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणिः।
विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविदः॥
अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशयः कुसुमचापमदाचलवज्रभृत्।
जिनमतापहृतारितमाश्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रयः॥"

अर्थात्—शास्त्रकोविद विमलाशय कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४०३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है[3]। अतः उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करीब सन् १४५० अर्थात् ईसवीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है[4]। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४०४ शक अर्थात् १४८२ ई० है।

---

१. देखो डा० हीरालाल का 'अमरकीर्तिगणि और उनका षट्कर्मोपदेश' लेख। जैन सि० भास्कर भाग २ अंक ३।

२. जैन शिलालेख संग्रहका १११वाँ शिलालेख।

३. प्रशस्तिसंग्रह के सम्पादक पं० के० भुजबली शास्त्री ने 'शाके वह्निखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे' का अर्थ शक १४६३ किया है। जब कि दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक 'शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते' का अर्थ १४०४ शक किया है। दोनों जगह ख का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४०४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कैसे आ सकती है? ४. देखो प्रशस्तिसंग्रह, पृ० १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कम्मोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि० १२४७ के आसपास है, जब कि नाममाला के भाष्य (पृ० ६२) में आशाधर के महाभिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनगारधर्मामृत वि० १३०० में समाप्त किया था। अतः प्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि० १३०० अर्थात् ईसवीय १२४३ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं हैं। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्मनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२–१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोल्लेख पूर्वक अवतरण लिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति पृथक् व्यक्ति तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्य मिलते हैं–

"शिष्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधिः।
श्रीमानमरकीर्त्यार्यो देशिकाग्रेसरः शमी ॥
निजपक्षपुटकवाटं घटयित्वानलरोधतो हृदये।
अविचलितबोधदीपं तममरकीर्तिं भजे तमोहरणम् ॥"

अर्थात्–अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की यशोलिप्सा टपकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में 'शास्त्रकोविद' विशेषण उनके पाण्डित्य का निर्देश कर रहा है। अतः हमारे प्रकृत ग्रन्थकार दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५० के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ मिलता है।[1] उसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने जेठ सुदी ५ शक संवत् १३५० में जिनयज्ञफलोदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा स्मृत हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार–

इस ग्रन्थ के सम्पादक पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गंभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनने जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे अगाध ज्ञानी निरहङ्कारी और विद्याजीवी विद्वान् विरल हैं। उनके तलस्पर्शी गंभीर पाण्डित्य का निदर्शक यह संस्करण है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ० पी० एल० वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। पं० हरगोविन्दजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निघण्टु का सम्पादन किया है। पं० महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ संशोधन में पूरा योग दिया है। पं० व्रजनन्दनजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम० ए०

---

[1] देखो प्रशस्ति संग्रह पृ० १६।

ने प्राक्कथन का हिन्दी अनुवाद किया है । पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्थनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। पं० श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुगृहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्षा सौ० रमा रानी जी की संस्कृतिनिष्ठा, उदार दृष्टि, ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन हैं। अपनी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोदयकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यदृष्टि, सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मैं इन सब का आभार मानता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
पौष शुक्ल १५
वीर सं० २४७६
३।१।५०

—महेन्द्र कुमार जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४००)	कागज २० रीम २२×२९/३२ पौण्ड	५४५।।।)	कार्यालय व्यवस्था प्रूफ संशोधन आदि
९७९)	छपाई पृष्ठ १९६ दर ५०) प्रति फार्म	४२६=)	सम्पादन
२००)	जिल्द बँधाई	५००)	भेंट आलोचना, विज्ञापन आदि
६०)	कवर छपाई	७८७।।)	कमीशन
४०)	कवर कागज		

कुल लागत ३९३४।=)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।=)

मूल्य ३।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकाक्षरी कोशश्च

महाकविधनञ्जयप्रणीता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोधं विद्यादिनन्दिनमिनं च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममलं प्रणिपत्य वीरं भाष्यं करोमि परमं बुधबुद्धिसिद्ध्यै ॥ १ ॥
सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।
भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां धीविवृद्धये ॥ २ ॥
यद्यपि धनञ्जयो (येनो) क्तो भावो वक्तुं न शक्यते ।
तथाऽप्यहं प्रवक्ष्यामि वाग्देव्याश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥
पूर्वाचार्यकृता प्रायो व्युत्पत्तिरुपदिश्यते ।
क्वापि क्वापि स्वबुद्ध्याऽपि क्षम्यतामत्र मे बुधैः ॥ ४ ॥

शिष्टासमाचार (ष्टाचार) परिपालनार्थं नमस्कारसमुद्गतधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं च धनञ्जयबुधः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।
उन्मूलयत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः–

"णमो[1] अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥" ईदृग्विधम् । **नमामि** नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? **अवाङ्मनसगोचरम्** वाक् च वाणी मनसं[2] च चित्तं वाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अलक्ष्यस्वरूपत्वात् । तथा चोक्तं शब्दभेदे—

"नभन्तु[3] नभसा सार्धं मनसं मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपन्तु तपसा सह ॥"

तथा च पद्मनन्दिशास्त्रे—

"[4]स्वानुभूत्यै भवेद् गम्यं रम्यं यज्ज्ञात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥"

---

१ एतत्पञ्चनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुरूपमत्र ज्योतिः । २ नभं तु नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधुः । ३ साम्प्रतं निर्णयसागरयन्त्रालयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलब्धम् । तदित्थम्–

कुमुदं कुमुदा चापि योषित्स्याद् योषिता सह । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥ ३४॥
अत्र कालप्रकर्षाद्यद्यपि मनसशब्दः प्रभ्रष्टस्तथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तत्तथैवासीदिति ध्रुवम् ।

४. प० प० २२।१।

यत् अविद्यां पापविद्याम्, चाटुकारसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मादिसूत्रम्, नृत्यसूत्रम्, गन्धर्वसूत्रम्, पटहसूत्रम्, अगदसूत्रम्, यौद्धसूत्रम्, मन्त्रसूत्रम्, द्यूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रञ्च । गजतुरगपुरुषस्त्रीछत्रगोखड्गदण्डाञ्जनानां [च विद्या पापविद्या] कथ्यते, ताम् **उन्मूलयति** मूलादुच्छेदयति । यत्[1] **विद्यामपि उन्मीलयति** स्थापयतीत्यर्थः ।

द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम् ।
युग्मं द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

दश युग्मे । द्वौ अवयवौ यस्य तद् **द्वयम्**, "द्वित्रिभ्यामयड् वा[2] ।" **द्वितयम्** द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वितयम् । **उभयम्** उभौ अवयवौ यस्य "द्वित्रिभ्यामयट्" इत्यनुवर्तमाने "उभाभ्यां नित्यम्[3]" इत्ययट् न तु तयट् । **यमलं** यमं लातीति यमलम् । **युगलं** युगं लातीति युगलम् । युगडं युगडकं च । **युगं** युज्यते धर्मवृत्त्या युगम्[4] । समाश्रयत्यन्यं युगम् । **युग्मम्** युनक्ति द्वितीयेन युज्यते श्लिष्यते युग्मम् । "युजिरुचितिजां घ्मक्[5] ।" **द्वन्द्वम्** द्वौ द्वावित्यर्थः द्वन्द्वम् । यच्छत्युपरमत्येकत्वात् **यमम्** । द्वाभ्यामितं द्वीतम्, द्वीतमेव **द्वैतम्** । **पातु** रक्षतु ।

ऋषिर्मुनिर्यतिर्भिक्षुस्तापसः संशितो व्रती ।
तपस्वी संयमी योगी वर्णी साधुश्च पातु वः ॥३॥

द्वादश मुनौ । ऋषति कालत्रयं जानातीति **ऋषिः** । "रिषिशुचिगॄनाम्युपधात्किः[6]" । तथा च यशस्तिलके[7]—

"रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः ।"

यतिः यो देहमात्रारामः सम्यग्विद्यानौलाभेन तृष्णासरित्तरणाय योगाय शुक्लध्यानधर्मध्यानाय यतते स यतिः[8] । तथा च यशस्तिलके[9] —

"यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।"

मुनिः, तपःप्रभावात् सर्वैर्मन्यते मुनिः । "मन्यतेः किरत उच्च[10] ।" तथा च—

"[11]मान्यत्वादाप्तविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ।"

भिक्षुः भिक्षते इत्येवंशीलो भिक्षुः । "सन्नन्ताशंसिभिक्षामुः[12] ।" **तापसः**, तपो विद्यते यस्य स तापसः । "अण्[13] च ।" तपःसहस्राभ्यां न केवलमस्त्यर्थे विनीनौ अण् च, वृद्धिः । **संशितः** संशायते स्म संशितः । "[14]श्यतेर्व्रते नित्यम् ।" व्यवस्थितविभाषया शो तनूकरणे इत्यस्य व्रतेऽर्थे नित्यमिकारो भवति, विकल्पो नास्ति । **व्रती**, "हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[15] ।" व्रतं विद्यतेऽस्य व्रती । **तपस्वी** "अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः[16] ।" "प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।[17] तपश्च विद्यते यस्येति तपस्वी । **संयमी**, सयमनं संयमः इन्द्रियप्राणलक्षणः । संयमो विद्यते यस्येति संयमी । **योगी**, * युजिर्[18]

---

१. यत् इत्यस्य पूर्वम् 'तथा' इति पदं योज्यम् । २. हे० श०७।१।१५१ । ३. एतत्सूत्रं हे० श० नोपलब्धम् । परंतु द्वित्रिभ्यामयड्वा इत्यनुवर्तमाने उभाभ्यां नित्यमिति टीकोक्तवचनात्तस्यमेवैतत्सूत्रमिति निश्चीयते । ४. कालवाचकयुगपरतयेयं व्युत्पत्तिः, प्रकृतार्थे तु युगं लातीत्येव । ५. का० उ० १।५७ इति घ्मक् प्रत्ययः कुत्वं च । ६. गॄनाम्न्युपधात्किः का० उ० ३।१५ इति किप्र० । ७. यशस्ति० आ० ८. क० ४४ । ८. यती प्रयत्ने । इः सर्वधातुभ्यः का० उ० ३।१४ इप्र० । ९. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १०. का० उ० ४।३ इति किप्र० । मनु अवबोधने । ११. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १२. का० सू० ४।४।५१ । १३. पा० सू० ५।२।१०३ । १४. श्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति पातञ्जलभाष्यम् ७।४।४१ । १५. त० सू० ७।१ । १६ त० सू० । १७ त० सू० । १८. *एवञ्चिह्नितांशस्थाने युजिर् योगे रुधादौ परस्मैपदी युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवम्पाठः सुगमः ।

योगे, युज समाधौ पर० युज् समाधौ वा० दि० । आत्म० युज् रुधादौ । पर० युज समाधौ वा दि० । आत्म० * युनक्ति युज्यते वा इत्येवंशीलः योगी । युजभजेत्यादिना[1] विनिण् । **वर्णी,** वर्णो ब्रह्मचर्यमस्त्यस्य वर्णी । **साधुः,** शिष्याणां दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुखः सकलकर्मोन्मूलनसमर्थो मोक्षमार्गाऽनुष्ठानपरो यः स साधुः । सिद्धिं साधयति साधयिष्यति वा साधुः ।

"स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।
कर्मोन्मूलनशक्तो [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः ॥"

"[2]कृवापाजिमीस्वदिसाध्यशूद्बषणिजनिचरिचटिभ्य उण्" । **वो** युष्मान् **पातु** रक्षतु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारः शिष्ये । **[दीक्षितम्]** दीक्षा संजाताऽस्येति । [3]तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । **मौण्ड्यम्** मुण्डे मस्तके भवं वपनादिकं मौण्ड्यम्[4] । **शिष्यम्,** शिष्यते व्युत्पाद्यते गुरुणा शिष्यः । "वृभूद्जुषीण्शासुस्तुगुहां क्यप्[5] ।" गुरोरन्ते वसत्यन्तेवासी तम् । **विदुः** कथयन्ति ।

कृतान्ताऽगमसिद्धान्ताः

त्रयः सिद्धान्ते । लोकानां सन्देहस्य कृतः अन्तो विनाशो येन सः **कृतान्तः** । आगच्छतीत्य**ागमः,** आगमन**मागमो** वा । **सिद्धान्तो** [सिद्धोऽन्तो] निश्चयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुंसि ।

ग्रन्थः शास्त्रमतः परम् ॥ ४ ॥

ग्रथ्नाति[6] रचयतीति **ग्रन्थः** । शास्ति **शास्त्रम्** ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही ।
धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥
वसुधा धरणी क्षोणी क्ष्मा धरित्री क्षितिश्च कुः ।
कुम्भिनीलोर्वरा चोर्वी जगती गौर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिर्भूमौ । भवति सर्वमत्र **भूमिः** । "ऊर्मिभूमिरश्मयः[7] ।" भवत्यस्मात्सर्वं **भूः** । रेफान्तश्चाव्ययम् । प्रथते **पृथिवी पृथ्वी** च । गुहयतीति[8] गह्वरी । रुह्वरीति पाठः । न्याये मेद्यति स्निह्यति मधुकैटभमेदोयोगाद् वा **मेदिनी** । मह्यते **मही** । मह पूजायाम् । धरत्यगान् **धरा** । वस्वस्त्यस्याः **वसुमती** । दधाति संगृह्णाति भेषजार्थं वैद्यो यामिति **धात्री** । "कर्मणि[9] धेटः ष्ट्रन् ।" केचिद्धधातेरपीच्छन्ति। क्षमणं **क्षमा**[10]। "षाऽनुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्[11] ।" विश्वं बिभर्ति **विश्वम्भरा**।"नाम्नि तृभृवृजिधारितपिदमिसहां संज्ञायाम्[12]।" खप्रत्ययः । भूतानवति **अवनिः** । स्त्रियामीः । [13]"अर्तिसृधृञ्धम्यश्यवितृतिग्रहिभ्योऽनिः ।" अनिः प्रत्ययः । वसु दधातीति **वसुधा** । धरति पर्वतानिति **धरणिः** । "धृञोऽनिः[14]।" क्षौति क्षुपम् क्षोणिः । स्त्रियामीः । **क्षोणी** । "टु क्षु रु कु शब्दे" । क्षमते भारं **क्ष्मा** क्षमा च । धरति सर्वं **धरित्री** । क्षयति क्षयं प्राप्नोति प्रलयकाले **क्षितिः** । कायति कूयते वा **कुः** । कुम्भो रत्नोत्पत्तिद्वीपोऽस्त्यस्याः **कुम्भिनी** । एति जन इमाम् **इला** । "इरासुराकपिलिकादिदर्शनाल्लत्वम् ।" [15]शूद्रादयः—

१. युजभजभुजद्विषद्रुहदुहाङ्क्रीडत्यजानुरुधाङ्यमाङ्माङ्यसरञ्जाऽभ्याङ्हनां च इति पूर्णं का० सू० ४।४।२२। २. का० उ० १।१। ३. तदस्य संजातं तारकादेरितच् इति का० रू० पू० सू० ५०८ । ४. मौण्ड्यमस्यास्तीत्यपि विग्रहे निवेश्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । ५. का० सू० ४।२।२३ । ६. ग्रथ्यते रच्यते इति कर्मणि विग्रहो योग्यः । ७. का० उ० ३।३२ इति भवतेर्मिप्र० कित्त्वं च । ८. गूहतीति गहरी रुहरी इत्यपि पाठ इति युक्तम् । ९. का० सू० ४।४।६० इति ष्ट्रन् । १०. वस्तुतस्तु क्षमते इति क्षमा, पचादित्वादच्, टाप् । ११. का० सू० ४।५।८२ । १२. का० सू० ४।३।४४ । १३. का० उ० २।४३ । १४. का० उ० २।४३ अर्तिसृधृञ० इत्यादिसूत्रम् । १५. का० उ० २।१७ ।

“शृद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः’ एते रक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । क्लेशमुर्वति हिनस्ति फलेन **उर्वरा** । **उर्वी** । उर्वी थुर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसार्थाः । सर्वमूर्वति व्याप्नोति उर्विः । स्त्रियामीः उर्वी । राजान्तरं गच्छति **जगतिः** । स्त्रियामीः,**जगती** । पूजां गच्छति **गौः** । स्त्रीनुोः । गमेर्डोः । “[1]गौरौ धुटि” इत्यौत्वम् । धृञ् धारणे । धृः । धरति धरते । इञ् । अस्य वृद्धिः । धारि जातम् । वसु वसूनि वा धारयति **वसुन्धरा** । नाम्नि तृभृ०[2] खप्रत्ययः । कारितस्या०[3] कारितलोपः । अभिधानात् ह्रस्वः । “ह्रस्वा[4]रुषोर्माऽन्तः ।” “त्रिया[5]मादा ।” भूतधात्री, रत्नगर्भा, विपुला, सागराम्बरा, रत्नवती, रसा, अचला, अनन्ता, काश्यम्—काश्यपी, गोत्रा, स्थिरा, सर्वसहा ।

तत्पर्य्यायधरः शैलस्तत्पर्य्यायपतिर्नृपः ।
तत्पर्य्यायरुहो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

योजयेत् योटयेत् **अन्यं** शब्दं च । **तत्पर्य्यायधरः शैलः** । भूमिधरः, भूधरः, पृथिवीधरः पृथ्वीधरः, गह्वरीधरः, मेदिनीधरः, महीधरः, धराधरः, वसुमतीधरः, धात्रीधरः, विश्वम्भराधरः, अवनीधरः, वसुधाधरः, धरणीधरः, क्षोणीधरः, क्ष्माधरः, धरित्रीधरः, क्षितिधरः, कुधरः; कुम्भिनीधरः, इलाधरः, उर्वराधरः, उर्वीधरः, जगतीधरः, गोधरः, वसुन्धराधरः । सप्तविंशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । **तत्पर्य्यायपतिर्नृपः** । भूमिपतिः, भूपतिः, पृथिवीपतिः, पृथ्वीपतिः, गह्वरीपतिः, मेदिनीपतिः, महीपतिः, धरापतिः, वसुमतीपतिः, धात्रीपतिः, क्षमापतिः, विश्वम्भरापतिः, अवनीपतिः, वसुधापतिः, धरणीपतिः, क्षोणीपतिः, क्ष्मापतिः, धरित्रीपतिः, क्षितिपतिः, कुपतिः, कुम्भिनीपतिः, इलापतिः, उर्वरापतिः, उर्वीपतिः, जगतीपतिः, गोपतिः, वसुन्धरापतिः । सप्तविंशति नामानि नृपस्येति ज्ञातव्यानि । **तत्पर्य्यायरुहो वृक्षः** । भूमिरुहः, भूरुहः, पृथिवीरुहः, पृथ्वीरुहः, गह्वरीरुहः, मेदिनीरुहः, महीरुहः, धरारुहः, वसुमतीरुहः, धात्रीरुहः, क्षमारुहः, विश्वम्भरारुहः, अवनीरुहः, वसुधारुहः, धरणीरुहः, क्षोणीरुहः, क्ष्मारुहः, धरित्रीरुहः, क्षितिरुहः, कुरुहः, कुम्भिनीरुहः, इलारुहः, उर्वरारुहः, उर्वीरुहः, जगतीरुहः, गोरुहः, वसुन्धरारुहः । सप्तविंशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति ज्ञातव्यानि ।

दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः सानुमान् गिरिः ।
नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिककुन्मरुत् ॥ ८ ॥

द्वादश पर्वते । दरीं बिभर्तीति **दरीभृत्** । स्वस्थानात् न चलति **अचलः** । शृङ्गमस्यास्तीति **शृङ्गी** । पर्वाणि सन्त्यस्य **पर्वतः** । “[6]पर्वमरुभ्यां तः ।” सानुरस्त्यस्य **सानुमान्** । जलं गिरतीति **गिरिः** । “[7]गृनाम्युपधात्किः ।” नं गच्छतीति **नगः** । “[8]डोऽसंज्ञायामपि”। नाम्न्युपपदे गमेर्डो भवति । शिला उच्चीयन्तेऽत्र, **शिलोच्चयः** । खम् आकाशम् अत्तीति **अद्रिः** । “[9]भूस्वदिभ्यः किः ।” शिखरमस्त्यस्य **शिखरी** । त्रिकं पृष्ठाधरं स्कुभ्नाति विस्तारयतीति **त्रिककुत्** । वर्णविकारत्वाद् भकारस्य [10]तकारः । स्तम्भु[11]स्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्चेति वक्तव्यमत्रास्य धातोः प्रयोगः ।” म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य स्पर्शेनेति **मरुत्** । “[12]मृग्रोरुतिः” । शैलः, क्षितिधरः, गोत्रः, आहार्यः, कुध्रः, ग्रावा ।

प्रस्थं पार्श्वं तटं सानुर्मेखलोपत्यका तटी ।
नितम्बमन्तो दन्तश्च तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

---

१. का० सू० २। २।३३ । २. नाम्नि तृभृवृजिधारितपिदमिसहां संज्ञायाम् इति पूर्णं का० सू० ४।३।४४ । ३. कारितस्यानामिड्विकरणे इति पूर्णम् का०सू० ३।६।४४ । ४. का०सू० ४।१।२२ । ५. का० सू० २।४।४० । ६. पर्वमरुतस्तः श०चं०सू० ४।१।७३ । ७. का०उ० ३।१३ । ८. का०सू० ४।३।४७ । ९. का०उ०३।५३ । १०. वर्णविनाशेन सकारस्य लोपोऽपि बोध्यः । ११. श०च० २।१।१६ । त्रीणि ककुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहोऽन्यत्र। त्रिककुत्पर्वते पा०सू० ५ । ४।१४७ इत्यकारलोपः । १२. का० उ० १।३० ।

पर्वतमेखलायां दश। प्रस्थीयते जनेनात्र **प्रस्थम्**। "[1] नाम्निस्थश्च" कः। उभयम्। पाति रक्षति जनान् **पार्श्वम्**। तटति उच्छ्रायं गच्छति **तटम्**। त्रिषु लिङ्गेषु। सनोतीति **सानुः**। [2] कृवापाजिमीस्वदिसाध्यशूहृषणिजनिचरिचटिभ्य उण्।" "षण दाने" अस्य धातोः प्रयोगः। मेहनस्य खं तस्य मां लातीति निरुक्तिः। मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तानिति वा **मेखला**। **उपत्यका** उप समीपे भवा उपत्यका। "[3]उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः।" तटमस्यास्ति तटी। क्रीडार्थे जनस्ताम्यतीति[4] **नितम्बः**। अमतीत्यन्तः। "[5]मृगृवाहस्यमिदमिलूपूभ्यस्तः "एभ्यस्तप्रत्ययो भवति। दम्यतेऽ (भ) दयतेऽनेन **दन्तः**। "[6]मृगृवाहस्यमिदमिलूपूभ्यस्तः।" तप्रत्ययः। **तद्वानपि गिरिः स्मृतः**। प्रस्थवान्, पार्श्ववान्, तटवान्, सानुमान्, मेखलावान्, उपत्यकावान्, तटीमान्, नितम्बवान्, अन्तवान्, दन्तवान्।

राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः।
ईश्वरो विभुरीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

चतुर्दश राज्ञि। न्यायमार्गेण राजते इति **राजा**। "[7]वृषितक्षिराजिधन्विप्रदिवियुभ्यः कनिः।" को यण्वद्भावार्थः। एभ्यः कनिः प्रत्ययो भवति। अधि ऐश्वर्य्ये पाति रक्षतीति **अधिपः**। तथा च उपसर्गवृत्तौ-अधि वशीकरणाधिष्ठानाध्ययनैश्वर्यस्मरणाधिकेषु।" पात्यवति **पतिः**।[8]पातेर्डतिः। अस्माड्डतिप्रत्ययो भवति। "अम गतौ" सुपूर्वः। शोभनममतीति **स्वामी**। "[9]स्वामेरिन् दीर्घश्च।" स्वावुपपदे अमेर्धातोरिन् प्रत्ययो भवति। नाथयति रिपुं **नाथः**। "वृहि वृहि वृद्धौ"। ढो वृढः। अत एव वृंहः परिपूर्वात् परिवृंहति परिवर्हति स्म वा **परिवृढः**। "[10]गत्यर्था०" इति कः। "[11]परिवृढदृढौ प्रभुबलवतोः" एतौ प्रभुबलवतोरर्थयोर्यथासंख्यं निपात्येते। परिपूर्वस्य वृंहेरिडभावो नलोपश्च। वृहतृहोः प्रकृत्यन्तरयोरपीत्यन्ये। ये तु प्रकृत्यन्तरयोरिच्छन्ति, तेषाम्मते "तृह तृहि वृह वृहि दृह वृद्धौ"इति पाठान्तरं वर्तते। तेन पाठान्तरेण दृहस्य वृहस्य वा "दृढः वृढः" इति निपातः। तत्र वर्हति स्म दर्हति स्म इति वाक्यं क्रियते। प्रभवतीति **प्रभुः**। "[12]भुवो डुर्विशम्प्रेषु च"। "[13]डानुबन्ध०" ऊकारलोपः। "ईश ऐश्वर्ये" ईष्टे इत्येवंशील **ईश्वरः**। "[14]कशिपिसिभासीशस्थाप्रमदां च।" एषां वरो भवति तच्छीलादिषु। विभवतीति **विभुः**। डुप्रत्ययः। ईष्टे शक्नोति सृष्टिस्थितिप्रलयान् कर्तुम् **ईशानः**। आश्रितजनान् बिभर्ति पोषयति **भर्ता**। इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवतीति **इन्द्रः**। "[15]स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्युन्दीन्दिभ्यो रक्।" एतीति **इनः**। "[16]इण्जिकृषिभ्यो नक्।" ईष्टे **ईशिता**।

अनोकहस्तरुः शाखी विटपी फलिनो नगः।
द्रुमोऽङ्घ्रिपः फलेग्राही पादपोऽगो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्वादश वृक्षे। अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्तीति **अनोकहः**। [17]ओकहप्रत्ययेन वा **अनोकहः**। तरन्त्यनेनातपं **तरुः**। "[18]भृमृतृचरित्सरितनिमस्जिशीङ्भ्य उः।"शाखाः सन्त्यस्य **शाखी**। विटपो विस्तारो-

---

१. का०सू० ४।३।५। वस्तुतस्तु नाम्नि स्थश्चेति कप्रत्ययस्य कर्तरि विधानादत्र घञर्थे कविधानमिति कः। २. का०उ० १।१। ३. पा० सू० ५।२। ३४ इति त्यकन् प्रत्ययष्टाप् च। ४. क्रीडार्थे जनैस्तम्यते काङ्क्ष्यते इति कर्मणि विग्रहो न्याय्यः। ५. का० उ० ४।२७। ६. का० उ० २।३। ७. उ० वृ० ११। ८. का० उ० ३।५२ इति पातेर्डतिप्र० टिलोपश्च। ९. का०उ० ६।६८। पाणिनीयैस्तु स्वामिन्नैश्वर्ये पा०सू० ५।२।१२६ इति स्वशब्दादामिन्प्रत्ययेन साधितः। स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः। १०. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च इति पूर्णं का० सू० ४।६।४९। ११. का०सू० ४।६।९५। १२. का० सू० ४।४।५९। १३. डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोप इति पूर्णं का० सू० २।६।४२। १४. का० सू० ४।४।४७। १५. का० उ० २।१४। १६. का० उ० २।५१। १७. अन प्राणने। अनिति श्वासोच्छ्वासं करोतीति; अन धातोरोकहप्रत्यय औणादिक इत्यपेक्षितांशः। १८. का० उ० १।५।

ऽस्त्यस्य **विटपी**। फलानि सन्त्यस्य **फलिनः** । [१]"फलवर्हाभ्यामिनच् ।" न गच्छतीति **नगः** । [२]"डोऽसंज्ञायामपि" । द्रवति वृद्धिं गच्छति अथवा द्रु वृक्षैकदेशोऽस्यास्तीति **द्रुमः** । अङ्घ्रिभिश्चरणैः पिबति पाति वा **अङ्घ्रिपः** । अङ्घ्रिपश्च । फलानि गृह्णातीति **फलेग्राही**। अभिधानाद्दीर्घः।" [३]फलमलरजःसु ग्रहेः।"पादैः पिबति पानीयं **पादपः**। न गच्छतीत्यगः । [४]"नगस्याऽप्राणिनि वा" विकल्पेन नकारलोपः । वनस्य पतिः **वनस्पतिः** । [५]पारस्करादित्वात्सुट् । महीरुहः, कुटः, शालः, पलाशी, द्रुः, वृक्षः, कुजः, विष्टरः[६], अगश्चापि ।

तत्पर्य्यायचरो ज्ञेयो हरिर्वलिमुखः कपिः ।
वानरः प्लवगश्चैव गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

एकोनविंशति नामानि हरौ । अनोकहचरः, तरुचरः, शाखिचरः, विटपिचरः, फलिनचरः, नगचरः, द्रुमचरः, अङ्घ्रिपचरः, फलेग्राहिचरः,पादपचरः, अगचरः,वनस्पतिचरः, । इत्यादिद्वादशनामानि मर्कटस्य ज्ञेयानि । हरतीति **हरिः** । "हृः सर्वधातुभ्यः ।" वलयो मुखेऽस्य **वलिमुखः** । कम्पते वायुना शरीरे **कपिः** । "अंहिकम्प्योर्न[७]लोपश्च ।" आभ्यां किः प्रत्ययो भवति नलोपश्च । वनं वनति सम्भजते **वानरः**, नरोऽपि । प्लवेन उत्फालेन गच्छति **प्लवगः** । "डो[८]ऽसंज्ञायामपि" च । गां भूमिं लङ्गतीति गोलाङ्गूलम्, गोलाङ्गूलमस्यासौ गोलाङ्गूलः उणादित्वात् "लंगे[९]र्दीर्घश्च" । "मृङ् प्राणत्यागे ।" म्रियते मर्कटः । "जटा [१०]मर्कटौ" एतावटप्रत्ययान्तौ निपात्येते । वनौकाः । प्लवङ्गमः । कीशः । शाखामृगः ।

विपिनं गहनं कक्षमरण्यं कानन वनम् ।
कान्तारमटवी दुर्गम्

नव वने । वेप्यते कम्प्यते भयेनात्र **विपिनम्** । [११]"वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च" इतीनच् । उणादौ उप्यते । "[१२]वृजिनाऽजिनेरिणविपिनतुहिनमहिनानि ।" एतानि इनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । [१३]गाह्यते मृगादिभिर्गहनम् । उभयम् । कषति घर्षति **कक्षम्** । अर्यते गम्यते श्वापदैः **अरण्यम्** । प्रतिभ्राम्यन्ति अत्र वा अरण्यम् । [१४]"अर्तेरन्यः" अस्मादन्यः प्रत्ययो भवति । उभयम् । कन्यते गम्यतेऽस्मिन् **काननम्**[१५] । वन्यते सेव्यते **वनम्** । कान्तम् जलान्तम् गच्छति इच्छति वा **कान्तारम्** । अटन्त्यस्यामटविः । स्त्रियामीः । **अटवी** । दुःखेन महता कष्टेन गम्यते **दुर्गम्** । नानाऽर्थे । सत्रम्, हव्यम्, दावम्, अरण्यानी, फलम् ([१६]अफलम्) ।

---

१. पात० भाष्य० ५।२।१२२ । २.का०सू० ४।३।४७ इति गमेर्डः । ३. का०सू० ४।२।४७ अनेन ग्रहेरिन् । एवं सति वृद्ध्यभावात् फलेग्रहिरिति रूपं सम्भवति । तत्राभिधानाद्दीर्घ इति टीकाकारः । तथाभिधायकवचनाभावात्कोपान्तरेषु फलेग्रहीति दीर्घरहितस्यैव दर्शनाच्च फलेग्राहीति रूपं चिन्त्यम् । ४. नेदृशं किमपि सूत्रं कातन्त्रे । नगोऽप्राणिनि वा इति हे० श० सू० ३।२।१२७। ५. पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् पा० सू० ६।१।१५७। ६. अत्र अ० चि० ४।१८० प्रमाणम् । तदुक्तम्—वृक्षोऽगः शिखरी च शाखिफलदावद्रिर्हरिर्द्रुर्द्रुमो जीर्णोद्रुविटपी कुटः क्षितिरुहः कारस्करो विष्टरः । नन्द्यावर्तकरालिकौ तरुवसू पर्णी पुलाक्यंह्रिपः सालानोकहगच्छपादपनगा रूक्षागमौ पुष्पदः ॥ इति । ७. का० उ० ४।४। ८. का० सू० ४।३।४७। ९. खर्जिकृपिमसिपिञ्जादिभ्य ऊरीलौ का० उ० ३।६०इत्यूलप्र० उणादित्वाल्लगे दीर्घश्चेति दुर्गवृत्तिः । १०. का० उ० ३।५८ । ११. पा० उ० २।५५ । १२. का० उ० २।२२ । इतीनप्रत्ययः वपेरकारेकारश्च । १३. गाहू विलोडने । बहुलमन्यत्रापीति युच् । कृच्छ्रगहनयोरिति निर्देशाद्ध्रस्वः । १४. का०उ० ३।२। १५. कानयति दीपयति स्मरादि । कनी दीप्तौ । युच् । कम् जलम् अननं जीवनमस्य वेति विग्रहोप्यूह्यः । १६. फलपुष्परहिते वन्ध्य-अवकेशि-अफल-शब्दाः कल्पद्रुकोशे दृष्टाः । तदुक्तम्—

"नञर्थात्फलपर्यायोऽवकेशी वन्ध्य इत्यपि । फलपुष्पैर्विरहित एते वन्ध्यादयस्त्रिषु ॥

तच्चरः स्याद् वनेचरः ॥१३॥

चरशब्देन युक्ते शवरस्य नव नामानि । विपिनचरः, गहनचरः, कक्षचरः, अरण्यचरः, काननचरः, वनचरः, कान्तारचरः, अटवीचरः, दुर्गचरः ।

पुलिन्दः शवरो दस्युर्निषादो व्याधलुब्धकौ ।
धानुष्कोऽथ किरातश्च सोऽरण्यानीचरः स्मृतः ॥१४॥

पोलति भ्रमति महत्त्वं याति गच्छति **पुलिन्दः** । पुलीन्दश्च । शवति[1] निर्दयत्वं गच्छतीति **शवरः** । तालव्यः । शवति अरण्यं शवरः । दस्यति अन्यमुपक्षिणोति **दस्युः** । "जनिमनिदसिभ्यो युः[2] ।" एभ्यो युः प्रत्ययो भवति । निषीदति पापकर्मात्र निषादः । निषदश्च । वा[3] ज्वलादिदुनीभुवो णः । "व्यध ताडने" व्यध विध्यतीति **व्याधः** । "दिहि[4]लिहिश्लिषिश्वसिविध्यतीण्श्यातां च ।" एषां णो भवति । लुभ्यते गृध्यते मांसे **लुब्धः** । स्वार्थे कः **लुब्धकः** । धनुषा[5] सह वर्त्तते इति **धानुष्कः** । किरति शरान्[6] **किरातः** । अरण्यस्य अरण्यानी (तत्र) चरतीति अरण्यानीचरः[7]। इन्द्र[8]वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमयमारण्ययवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक् ईश्च । अरण्यानीति ।

वार्वारि कं पयोऽम्भोऽम्बु पाथोऽर्णः सलिलं जलम् ।
सरं वनं कुशं नीरं तोयं जीवनमब्विषम् ॥ १५ ॥

अष्टादश पानीये । वारयति तृषामिदम् **वारि**, वृणोति वा **वारि** । "शॄवसिवपिराजिवृहनिनमेरिञ् ।" एभ्य इञ् प्रत्ययो भवति । अकार इञ्वद्भावार्थः । रान्तम् **वार्** । स्त्रीक्लीवे । काम्यते इष्यते **कम्**, कायतीति (वा) । "[10]कायतेर्डतिडमौ" प्रत्ययौ भवतः । पीयते पयते वा **पयः** । "पीङ् पाने ।" "सर्व[11]धातुभ्योऽसुन् ।" अमति गच्छति स्वादुत्वं सान्तम् अम्भस् ।"अम गतौ ।""अमे[12]र्भोऽन्तश्च । अकार उच्चारणार्थः । "अबि शब्दे" "अम्बु"इति सौत्रो वा "सेवायाम् ।" अम्ब्यते तृष्णार्त्तैरित्यम्बु । "[13]अम्बिकम्बिभ्यामुः ।"आभ्यामुः प्रत्ययो भवति । पीयते पाति वा **पाथः** । "[14]रमिकासिकुषिपातृवचिरिचिसिचिगुभ्यस्थक् ।" एभ्यस्थक् प्रत्ययो भवति । को यण्वद् भावार्थः । ऋणोत्यर्णः । गम्यते[15]स्नानपानार्थैः सान्तम् **अर्णस्** । सरति गच्छति **सलिलम्** । उणादौ"षच सेचने ।' "[16]धात्वादेः षः सः ।" "सचते[17] इति **सलिलम्** । "सचेर्लिलश्च चस्य लुक्[18] ।" सचेर्लिल : प्रत्ययो भवति चस्य लुक् च । जडति नीचं गच्छति **जलम्** । जडं च । शृणाति हिनस्ति तृष्णाम् इति **शरम्** । वन्यते सेव्यते एनत् **वनम्** । कोशते **कुशम्** । प्राणिचेष्टां वृद्धिं नयतीति **नीरम्** । मीयते हिनस्ति तृषां मीरम् च । तुदति तृषाम् **तोयम्** ।"तुः" सौत्र आवरणार्थो वा । जीव्यतेऽनेन **जीवनम्** । जीवनीयम् च । आप्नुवन्ति समुद्रमित्यापः । आप्नोतेः क्विप् प्रत्ययो भवति । ह्रस्वश्च । अप् स्त्रियां बह्वर्थः । क्वचिदेकत्वम् ! क्लीबत्वम् । अपशब्दो बहुवचनान्तः ।

---

१. शव गतौ भ्वादिः । बाहुलकादरः । २. का० उ० ४।१। ३. का० सू० ४।२।५५ । ४. का० सू० ४।२।५८ । ५. धनुः प्रहरणमस्येति व्युत्पत्तिर्युक्ता । प्रहरणमिरण् । ६. किरतीति किरः । कृ विक्षेपे । कप्रत्ययः । अततीत्यतः । अत सातत्यगमने । पचाद्यच् । किरश्चासावतश्चेति किरात इति पूर्णव्युत्पत्तिः । ७. महदरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । ८. इदं पाणिनीयं ४।१।४९ अत्र यमेत्यधिकः पाठः । ९.का०उ० ४।५ । १०.का०उ० ५।५० । ११.का०उ० ४।५६ । १२.का०उ० ४।६६ । अमति स्वादुत्वं गच्छतीति शेषः । रामाश्रमस्तु अमिशब्दे इत्यतोऽसुन् प्रत्ययमाह । १३. का० उ० ५।३५ । १४. का० उ० २।१० । १५. अर्यते इत्यस्य पर्यायो गम्यते । यतोऽर्णस् शब्दो नसुप्रत्ययान्तः । ऋ गतौ । १६. का० सू० ३।८।२४ । १७. सलति गच्छति निम्नमिति विग्रहे सल् गतौ इत्यस्मात् सलिकल्यनि० इत्यादि १।५४उ० सूत्रेण बाधितोऽन्यत्र । १८. का० उ० ६।३९ ।

"अपश्च[1] " इति घुटि दीर्घः । आपः । अघुट्स्वरत्वात् शसादेर्न दीर्घः । अपः । "अपां[2] भेदः ।" इति विभक्तिभे पस्य दः । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । "[3] वर्गादेः शषसेषु द्वितीयो वा ।' अफ्सु । अप्सु । आमन्त्रणे–हे आपः । वेवेष्टि देहं शैत्येन व्याप्नोतीती विषम् । उभयम् । घनरसः, पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, क्षीरम्, भुवनम्, दकम्, कमलम्, कीलालम्, अमृतम्, कबन्धम् , सर्वतोमुखम्, आनर्त इति नानार्थे ।

तत्पर्य्यायचरो मत्स्यस्तत्पर्य्यायप्रदो घनः ।
तत्पर्य्यायोद्भवं पद्मं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

तस्य पर्य्यायस्तत्पर्य्यायः, तत्परं चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वार्चरः, वारिचरः, कञ्चरः, पयश्चरः, अम्भश्चरः, अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः, सलिलचरः,जलचरः, शरचरः,वनचरः, कुशचरः, नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अप्चरः, विषचरः । प्रदप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाग्रे घनस्य नामानि भवन्ति । वार्प्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रदः, अम्भःप्रदः, अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः, अर्णःप्रदः,सलिलप्रदः,जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रदः, नीरप्रदः, तोयप्रदः, जीवनप्रदः, अप्प्रदः, विषप्रदः । इत्यादीनि घननामानि । तत्पर्य्यायोद्भवं पद्मम् । वारिपर्य्यायशब्दाग्रे उद्भवंप्रयुज्ये उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वारुद्भवम्, वार्युद्भवम्, कमुद्भवम् , पयउद्भवम्, अम्भउद्भवम्, अम्बूद्भवम्, पाथउद्भवम्, अर्णउद्भवम्, सलिलोद्भवम्, जलोद्भवम्, शरोद्भवम्, वनोद्भवम्, कुशोद्भवम्, नीरोद्भवम्, तोयोद्भवन्, जीवनोद्भवम्, अबुद्भवम्, विषोद्भवम् । **तत्पर्य्यायधिरम्बुधिः** । वाः शब्दा (शब्दपर्याया) ग्रे धिप्रयुज्ये धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि ज्ञेयानि । वार्धिः, वारिधिः, कन्धिः, पयोधिः, अम्भोधिः, अम्बुधिः, पाथोधिः, अर्णोधिः, सलिलधिः, जलधिः, शरधिः, वनधिः, कुशधिः,नीरधिः, तोयधिः, जीवनधिः, अब्धिः, विषधिः ।

पृथुरोमा षडक्षीणो यादो वैसारिणो झषः ।
विसारी शफरी मीनः पाठीनो (ऽ) निमिषस्तिमिः ॥१७॥

एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य **पृथुरोमा** । षट् अक्षीणि स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र-मनांसि यस्य सः **षडक्षीणः** । याति गच्छति जले, **यादः** । विसरति "ग्रहादेर्णिन्"[4] **विसारी** मत्स्य इति । स्वार्थेऽण् । **वैसारिणः** । झषति जन्तून् हिनस्ति झषः । "सृ गतौ" । सृ शृ ऋृ गतौ वा" । सृ विपूर्वा० विसरति विससर्त्ति वा इत्येवंशीलः,**विसारी** । "[5]विप्रतिभ्यामाङः सत्तेर्णिन् प्रत्ययः । अस्यो० (स्य) वृद्धिः । विसारिन् इति जाते सिः । "[6]इन्हन् [पूर्ववत्] (पूषार्यम्णां शौ च)" । शफिति शफरः । शफाः (न्) त्रायन्ते (राति) शीघ्रगत्वाच्छ**फरी** । मीयते हिंस्यतेऽन्योऽन्यतः, मीनः । बहुदंष्ट्रत्वात् पाठयति भक्ष्यत्वेन पाटयते वा **पाठीनः** । निमिषति परस्परं हिनस्ति हन्तीति वा [7]**निमिषः** । "नाम्यु[8]पध (धात्) पृकॄगॄज्ञां कः" । तिम्यति जलेनार्द्रो भवति **तिमिः** । मत्स्यः, अण्डजः, शकली, विसारः, जलचरः, शल्की ।

घनाघनो घनो मेघो जीमूतोऽभ्रं वलाहकः ।
पर्जन्यो मिहिरो नभ्राट्

---

१. का० सू० २।२।१९ । २. का० सू० २।३।४३ । ३. का० सू० पू० सू० २५७ । ४. का०सू० ४।२।५० इति णिन् प्र० । ५. पा०सू० ३।२।७६ उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानम् इति काशिकावृत्तिः । ६. का०सू० २।२।२१ । ७.निमेषरहितत्वान्मीनानाम् । कोषान्तरेषु तेषामनिमिषसंज्ञादर्शनाच्च अत्राप्यनिमिष इत्येव छेदो युक्तः । न तु निमिष इति । तदुक्तम्–'विसारः शकली शल्की शंवरोऽनिमिषस्तिमिः' अ० चि० ४।११० । ८. का० सू० ४।२।५१ ।

नव मेघे । हन हिंसागत्योः । हन्तीति **घनाघनः** । "अच् [1]घनाघनः" इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा "[2]चिक्लिदचक्नसचराचरचलाचलपतापतवदावदघनाघनपाटूपटा वा' इति नामभूता संज्ञा रूढाः । तत्र क्लिदेः " [3]नाम्युपधात्" कः । क्नसिचरिचलिपतिवदिहनिपाटयतिभ्योऽच्प्रत्ययो द्विर्वचननिपातनं चेति । वाशब्दात् क्लिदः, क्नसः, चरः, चलः, पतः, वदः, घनः, पटः, इत्यपि भवति । हन्यते वायुना **घनः** । "[4]मूर्तौ घनिश्च ।" अल् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चति भूमिमिति **मेघः** । "अच्य [5]चाम् (दिम्यश्च)' अच् । नामिनो गुणः । "न्यङ् कुः[6]" इत्येवमादीनां चजोः कगौ भवतः । हश्च (हस्य च) घो भवति । जीवनस्य जलस्य मूतः पुटबन्ध इति निरुक्त्या **जीमूतः** । जीवन्त्यनेन भूतानि वा जीमूतः । जीव प्राणने । अभ्रन्त्यपो राति वा **अभ्रम्** । अभ्र गत्यर्थः । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आप्नोति सर्वा दिशो वा अभ्रं क्लीबे । [7]बलाकादिभिर्हीयते **बलाहकः** । वारिवाहको वा । प्रवर्षति जलं **पर्जन्यः** । उणादौ "पृजी सम्पर्के" पृङ्क्ते पृणक्ति वा **पर्जन्यः** । "[8]पर्जन्यपुण्ये" इति अन्यप्रत्ययान्तो निपात्यते । मेहति सिञ्चति विश्वं **मिहिरः** । मिहिरः मुहिरश्च । न भ्राजते न शोभते **नभ्राट्** । "क्विब्भ्राजिपृधुर्विभासाम्[9]" एषां क्विब् भवति । अब्दः, स्तनयित्नुः, पयोधरः, धाराधरः, धूमयोनिः, तडित्वान्, वारिदः, अम्बुभृत्, मुदिरः, जलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

षट् शम्पायाम् । शाम्यति शीघ्रं **शम्पा** । शम्बा च । शम्पिबति वा शम्पा । सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् **सौदामि (म) नी** । [10]तेनैकदिगित्यण् । शोभनस्य दाम्नो बन्धनरज्जोरियं सदृशी **सौदामि (म) नी** । सौदाम्नी । सौदामिनी च । ताडयति **तडित्** । ताडयतेर्णिलुक् । ताडयति मेघं ताडयतेऽसौ वेति तडित् । तान्तम् । आकलयति स्तोककालं रोचते वा **आकालिकी**[11] । "आङ् मर्य्यादाऽभिविध्योः ।" क्षणे क्षणे रोचते शालते **क्षणरुचिः** । विद्योतते **विद्युत्** । चपला, क्षणिका, शतह्रदा, ह्रादिनी, अचिरांशुः, ऐरावती, चञ्चला, चटुला, दिश्या ।

तत्पतिरम्बुदः ।

विद्युच्छब्दाग्रे पतिशब्दे प्रयुज्यमाने **अम्बुदनामानि** भवन्ति । शम्पापतिः, सौदामनीपतिः, तडित्पतिः, आकालिकीपतिः, क्षणरुचिपतिः, विद्युत्पतिः, निर्घातपतिः, अशनिपतिः, वज्रपतिः, उल्कापतिः, इत्यादिमेघनामानि स्युः ।

निर्घातमशनिर्वज्रमुल्काशब्दं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वज्रे । निर्हन्यतेऽनेनेति **निर्घातम्** । पर्वतादीनश्नाति, **अशनिः** । "[12]अर्तृसृधृञ्घम्य-

---

१. हन्तेर्घत्वं च का० वार्तिकम् । अच् घनाघन इत्याकारकं वचनं न क्वचिदुपलब्धम् । शा० सू० ४।१।५५ घनाघन पाटूपटम् इति । २. इदं तु नोपलब्धम् । चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या० वा० । ३. का० सू० ४।२।५१ । ४. का० सू० ४।५।५० इति हन्तेरल्प्र० घनिरादेशश्च । ५. का० सू० ४।२।४८ । ६. न्यङ्क्वादीनाम् इति का० सू० ४।६।५७ इति हस्य घः । ७. बलाकाभिर्हीयते । ओहाङ् गतौ । कर्मणि क्वुन् । अथवा बलेन हीयते आहायते वा क्वुन् इति रामाश्रमः । पृषोदरादित्वाद् वारिवाहकशब्दस्य बलाहक इति निपातश्च । ८. का०उ० ३।४। ९. का० सू० ४।४।५७ । १०. तेन प्रोक्तमित्यतस्तेनेत्यधिकारे "एकदिक्" इति जै० सू० ३।३।८१ । ११. समानकालावाद्यन्तौ यस्या इति विग्रहे आकालिकडाद्यन्तवचने इति पा० सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्ङीपि आकालिकीति मूलोक्तमपि साधु । १२. का० उ० २।४३ ।

श्यविवृतिग्रहिभ्योऽनिः ।" एभ्योऽनिः प्रत्ययो भवति । "टु ड स्फूर्जा वज्रनिर्घोषे" स्फूर्जतीति वज्रम्[1] । शृद्रादयः[2]—"शृद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः" एते रक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पर्वतेष्वपि वजति वज्रम् । उपति ज्वलति उल्का । उल् इति सौत्रोऽयं धातुर्वा ।

परिपत्कर्दमः पङ्कः

त्रयः कर्दमे । परि समन्ताद् भाराक्रान्तः सीदति गन्तुं न शक्नोतीति परिपत् । "[3]सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गे" एषामुपसर्गेऽनुपसर्गेऽपि नाम्युपधात्क्विप् । करोति चेष्टां हिनस्तीति कर्दमः । "[4]पृप्रथिचरिकर्दिभ्योऽमः" । पञ्च्यते विस्तार्यते वर्षाकालेन पङ्कः । उभयम् । उणादौ 'पन च' पनायते पन्यते वा पङ्कः । "पसिपनिभ्यां कः[5]" आभ्यां कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिंहः—

"[6]निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।"

निषद्वरः, जम्बालः, शादः, इचिकिलः, चिकिलश्चानेकार्थे ।

तज्जम्

तस्मात् जम् उद्भवम् पङ्कजम्, कर्दमजम्, परिपज्जम्, इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विदुः ।

कमलं नलिनं पद्मं सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

खरदण्डं कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्यति जलं काङ्क्षति तामरसम् । अमरसिंहभाष्ये—"[7]तामः प्रकर्षो रसोऽस्य तामरसम् । तमः प्रकर्षोऽर्थस्तारतम्यवत् ।" केन मस्तकेन मल्यते धार्यते कमलम् । श्रिया वासाऽर्थं काम्यते वा । [8]"पटिकमिमुशिकुशिभ्यः कलः ।" एभ्यः कलः प्रत्ययो भवति । कम्मलं च । नलाः सन्त्यस्य नलिनम् । नलति आकर्षति श्रियं वा नलिनम् । "[9]पुलिनलितलिमलिट्रुहिभ्यः किनः" । नलं च । पद्यते पाति लक्ष्मीरत्र पद्मम् । "[10]अर्तिसृहुसुधृक्षिणीपदभायास्तुभ्यो मः ।" उभयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरस्यां रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । [11]खरञ्च तद्दण्डञ्च खरदण्डम् । कोकाश्चक्रवाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । क्लीबे । [रक्त] कुमुदम्[12] । रक्तकमलञ्च । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुणति माङ्गल्यात्वात्पुण्डरीकम् । मट (मुट) प्रमर्दने स्थाने । पुण्डिरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमते पुण शोभे । पुणति जल्पति शोभां पुण्डरीकः[13] । "अनुनासिकान्ताड्डः" अनुनासिकान्ताद्धातोर्डः प्रत्ययो भवति । महच्च तदुत्पलं च महोत्पलम् । तथा च हलायुधः—"पुण्डरीकं[14] सिताम्बुजम् ।"

---

१. स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वजादेशो रक्प्रत्ययश्च निपात्यः । वज गतौ । वजतीति विग्रहे केवलं रक् । २. का० उ० २।१७ । ३. का० सू० ४।३।७४ । ४. का० उणादौ एतत्सूत्रं नास्ति । पा० उ० सू० ४।८४ कलिकर्द्योरम इत्यमप्र० । ५. का० उ० ५।३० । रामाश्रमस्तु पचि विस्तारे कर्मणि हलश्चेति घञ् इत्याह । ६. अमर० १।१०।९ । ७. क्षी० भा० १।९।४०। ८. का०उ० ६।१ । ९. का० उ० ६।६ । १०. का०उ० १।५३। ११. खरो दण्डो यस्येति विग्रहो न्याय्यः । १२. अथ कोकनदं रक्तकुमुदे रक्तपंकजे इति मेदिनी तद्विशेषे प्रमाणम् । १३—फर्फरीकादयश्च पा० उ० ४।२० इति मुढधातो रीकन् प्रत्ययान्तः पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुडिधातोररीकन्प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण धातोररीकप्रत्ययो डान्तागमश्चेत्युभयं विवेयम् । केवलं डप्रत्ययस्तु न युक्तः । १४. हलायुधः ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

सप्त नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्यं प्राप्नोति **इन्दीवरम्**। अरान् राजीः विन्दति इति **अरविन्दम्**। विद्लृ लाभे, विद् अरपूर्वः। अरान् विन्दतीति **अरविन्दः**। "कर्मणि च विदः" श-प्रत्ययो भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते—अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्[1]] अण् बाधकः । "[2]साहिसाति-वेद्युदेजिचेतिधारिपारिलिपि(म्पि)विन्दां त्वनुपसर्गे" एषामनुपसर्गे शो भवति । चक्रस्याऽवयवः अर-विन्दम् । पिण्डी (पुण्डरीक) कमलेऽर्थे तु (अपि) अरविन्दम् । राजविशेषस्तु अरविन्दः । केचित्कम-लेऽपि पुंस्त्वं मन्यन्ते । शतं पत्राण्यस्य **शतपत्रम्**। क्लीबे । शोभां पोषयति पुष्यति वा **पुष्करम्**। शोभामुत्कर्षेण पलति गच्छतीत्युत्पलम्। कौ वलते प्राणिति कुवलयम् । कुत्सितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टन-मस्येति श्रीभोजः ।

विशेषमाह—

अथ नीलाम्बुजन्म च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजन्म । इन्दतीन्दीवरम्[3] । कुवलय [दलनीलेति] सामान्यस्य [**नीले**] विशेष-वृत्तिः । **अस्मिन्** सिते । रात्रौ विकासं करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा **कुमुदम्**। दान्तञ्च । के उदके जले रौति केरवो हंसः, तस्येदं प्रियं **कैरवम्**। क्लीबे ।

तद्वती

तस्य कमलस्य पर्याये **'वती'** इति प्रयुज्यमाने कमलिनीनामानि भवन्ति । तामरसवती, कमलवती, नलिनवती, पद्मवती, सरोजवती, सरसीरुहवती, कोकनदवती, पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर-विन्दवती, शतपत्रवती ।

बिसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेकः[4] । बिसमस्त्यस्या **बिसिनी**। नलिनी । पुटकिनी । मृणालिनी ।

व्रततीर्वल्लरी लता ।

वल्लीनामानि योज्यानि—

चतुर्व[5] (चत्वारो व) ल्ल्याम् । वृणोतीति **व्रतती** । प्रकृष्टा ततिरस्या **व्रततीः**[6], व्रततिश्च । जपादित्वाद्वत्वम् । वल्लते **वल्लरी** । लाति ललति चित्तं वा **लता**[7] । वल्लते वेष्टते **वल्ली** । वल्लादीः । वल्लिरिदन्तोऽपि । स्त्रियामीः । वल्ली । व्रातश्च । वीरुक् (ध्), गुल्मिनी, प्रतानिनी, शारिवा[8], किर्मी च । वृक्षशाखायामपि ।

---

१. का० सू० ४।३।१ । २. का० सू० ४।३-५४ । ३. इन्दतीतीन्दीः लक्ष्मीः । सर्वधातुभ्य इन् उ० सू० ४।११७ इतीन् । कृदिकारादक्तिन इति ङीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूह्यम् । ४. एकः बिसीनीशब्द इत्यर्थः । ५. अत्र चत्वारो वल्ल्यामिति युक्तम् । ६. प्रतनोतीति व्रततिः । तन् धातोः क्तिच् । क्तौ च संज्ञायामिति क्तिच् । पृषोदरा-दित्वात्पस्य व इत्यन्यत्र । ७. लतिः सौत्रो धातुर्वेष्टनार्थो लततीति लता । पचाद्यच् इत्यन्यत्र । ८. सारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिविशेषवाचकः । किर्मिः स्त्री स्वर्णपुत्र्यां स्यादपि मालापलाशयो-रिति-विश्वलोचनप्रमाणतः किर्मिशब्दः । किर्मीशब्दो स्वर्णपुत्री-माला-पलाशवाचकः । वृक्षशाखायां लतायां वा उभावप्यप्रसिद्धौ । अतोऽत्रेदमेव प्रमाणम्

वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना ॥२३॥

अधुना इदानीं **वारिधिर्वर्ण्यते** कथ्यते । केन ? भाष्यकर्त्रा मुनिश्रीमदमरकीर्तिना । साम्प्रतं समुद्रनामानि प्रारभ्यन्ते—

स्रोतस्विनी धुनी सिन्धुः स्रवन्ती निम्नगाऽपगा ।
नदी नदो द्विरेफश्च सरिन्नामा तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्त्यस्याः **स्रोतस्विनी** । धुनोति कम्पते धुनिः[1]। स्त्रियामीः । **धुनी** । स्यन्दति जले चलति **सिन्धुः** । त्रिपु । "स्यन्देः[2] सम्प्रसारणं धश्च ।" तटेभ्यो जलं स्रवति **स्रवन्ती** । निम्नं गच्छति निम्नगा । आ समन्तादाप्नोति अद्भिरगति वा **आपगा**[3] । आपेन वा गच्छति **आपगा** । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोति **नदी** । नदति **नदः** । "अच्[4] पचादिभ्यश्च" अच् । द्वौ रेफौ तटौ यस्य **द्विरेफः** । सरति समुद्रं गच्छति **सरित्** । तान्तम् । तरङ्गाः सन्त्यस्यां **तरङ्गिणी** । तटिनी, निर्झरिणी, कूलङ्कषा, शेवलिनी, सरस्वती, समुद्रकान्ता, ह्लादिनी, स्रोतः, कपुः[5], कुल्या, द्वीपवती, रोधोवक्त्रा ।

तत्पतिश्च भवत्यब्धिः,

तस्या धुन्याः **पति**र्धुनीपतिरित्यादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपतिः, सिन्धुपतिः, स्रवन्तीपतिः, निम्नगापतिः, आपगापतिः, नदीपतिः, नदपतिः, द्विरेफपतिः,सरित्पतिः,तरङ्गिणीपतिः ।

पारावारोऽमृतोद्भवः ।
अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽकरः ॥२५॥
समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णवः ।

नव समुद्रे । पारमावृणोति **पारावारः** । अमृतस्योद्भवः **अमृतोद्भवः** । अपारं वार् जलं यत्राऽसौ **अपारवाः** । न कुं पृणोति मर्यादापालनाद**कूपारः** । हलायुधे—"न कुं पृथिवीं पिपर्त्ति व्याप्नोतीति अकूपारः ।" अकूवारोऽपि । **रत्नमीन**शब्दयोरग्रे **आकरे** प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति । रत्नाकरः, पृथुरोमाकरः, षडक्षीणाकरः, यादाकरः[6], वैसारिणाकरः, झषाकरः, विसार्याकरः, शफराकरः, मीनाकरः, पाठीनाकरः, निमिषाकरः, तिम्याकरः । 'उन्दी क्लेदने' सम्पूर्वः । समन्तादुनत्त्यस्मादिति **समुद्रः**[7] । "[8]स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्युन्दीन्दिभ्यो रक्" "[9]अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गः" । तथा च हलायुधे[10]—"**मुदन्ति मिश्रीभवन्ति भौमाऽन्तरीक्षनादेयजलान्यत्र समुद्रः ।**" अमरसिंहे—[11]"**समुनत्ति समुद्रः**" । वारीणां जलानां राशि**र्वारिराशिः** । सरांसि जलप्रसारणानि सन्त्यस्य **सरस्वान्** । सागरस्यापत्यं सागरः, सगरतनयैः खातत्वात् । अर्णांसि सन्त्यस्य **अर्णवः** ।

---

१. धुनोति कम्पयति वेतसादीन् । धुञ् कम्पने । क्विप् । पृषोदरादित्वान्नुक् । नान्तत्वान्ङीप् धुनी इति रामाश्रमः । २. का० उ० १।७ । ३. अद्भिरगतीति विग्रहेऽपः पकारस्य जश्त्वाभावोऽकारस्य दीर्घत्वं च पृषोदरादित्वेन निपातात्साध्यम् । ४. का० सू० ४।२।४८ । ५. अत्र कपूरिति दीर्घोकारान्तपाठो युक्तः । तदुक्तम्—कपूर्नदी करीषाग्न्योरिति शाश्वतः ६७२ । ६. यादस् शब्दस्य सकारान्तत्वाद् याद आकर इत्येव न तु यादाकरः । ७. समन्तादुनत्ति आर्द्रीकरोति भूभागानेतावानेव विग्रहः । अत्रास्मादित्यपादानार्थटीकोक्तो नापेक्षणीयः । समीचीना मुद्रा जलचरविशेषा यस्मिन् सह मुद्रया मर्यादया वर्तते वेति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूह्यम् । ८, का० उ० २।१४ । ९. का० सू० ३।६।१ । १०. मुद संसर्गे चुरादिः सम्पूर्वः । कथादावदन्ते तत्पाठाच्चुरादिणिचो वैकल्पिकत्वान्मुदन्तीत्यपि पक्षे । समो मकारलोपः पृषोदरादित्वात्तत्र बोध्यः । ११. क्षी० भा० १।६।१।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये—"[१] अर्णोऽस्यास्त्यर्णवः । 'अर्णसो लोपश्च' इति वः सलोपश्च ।" उदधिः, उदन्वान्, तोयनिधिः, जलराशिः, वीचिमाली, शशध्वजः[२] । तद्भेदाः सप्त—लवणोदः, क्षीरोदः, सुरोदः, इक्षूदः, स्वादूदः, दध्युदः, घृतोदः ।

सीमोपकण्ठं तीरञ्च पारं रोधोऽवधिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । षिञ् बन्धने । सिनोति बध्नातीति **सीमा** ! "[३]घर्मसीमाग्रीष्माऽधमाः" एते मक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे **उपकण्ठम्** । तरन्त्यस्मात्तीरम्[४] । तरति प्लवते इव के **तीरं वा** । [५]पिपर्ति वृणोति जलेनेति **पारम्** । पार्यते समाप्यतेऽस्मिन्निति वा । रुणद्धि जलं वेगेन **रोधस्** । सान्तम् । उभयम् । अवधानम् **अवधिः** । "[६]उपसर्गे दः किः" । तटयते आहन्यतेऽम्भसा **तटम्** । त्रिषु । तटः । तटी । इदन्तो वा । तटिः । स्त्रियामीः, तटी । कूलम्, कच्छः, प्रपातः, तीरम् ।

भङ्गस्तरङ्गः कल्लोलो वीचिरुत्कलिकाऽवलिः ।
पाली वेला तटोच्छ्वासौ विभ्रमोऽयमुदन्वतः ॥२७॥

एकादश तरङ्गे । भज्यते जले स्वयमेव **भङ्गः** । तरति प्लवते **तरङ्गः** । "[७]तॄपतिभ्यामङ्गः" आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । [८]कल्ल्यन्तेऽनेन नद्यः **कल्लोलः** । कुत्सितं लोडति **कल्लोल** इत्येकः । याति (वयति) गच्छति **वीचिः**[९] । स्त्रियामीः, वीची । वृद्धिमुत्कर्षेण कलयति **उत्कलिका** । स्त्रियाम् । आ समन्ताद् वलते आवलिः । पाल्यते पालिः । स्त्रियामीः । **पाली** । वेलयति पूर्णिमादिकालमुपदिशति **वेला** । स्त्रियाम् । तटश्च उच्छ्वासश्च तटोच्छ्वासौ । तटति **तटः** । उच्छ्वसनम् **उच्छ्वासः** । विभ्रमति **विभ्रमः** विकारः । कस्य ? **उदन्वतः** समुद्रस्य । ऊर्मिः, लहरी ।

सम्प्रति **मनुष्यवर्ग** आरभ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः ।
ना पुमान् पुरुषो गोधा

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्यं **मनुष्यः** । *[१०]कुरुनिषादेभ्यः प्रथमाऽपत्येऽपि' । कुरुनिषादाभ्यामणीपि मनोः सान्तश्च । क्वचिद्द्विस्वरस्य न वृद्धिः । अण्वा । * मनुष्यः । मानुषः । उणादौ च । मन्यते सुखदुःखादिकमिति **मनुष्यः** । "[११]मनेरुस्यः" उस्यप्रत्ययः । मानयति मान्यते इति वा मानुषः । "[१२]मानेरुसः" उस्प्रत्ययः । उभयम् ।

---

१ क्षी० भा० १।६ । २. कोषान्तरेषु समुद्रस्य शशध्वज इति नाम नोपलब्धम् । कथंचित्समाधानापेक्षायां शशिध्वज इति पाठो बोध्यः । शशी चन्द्रो ध्वजश्चिह्नं वंशप्रख्यापकं यस्येति तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रप्रभवत्वं पुराणप्रसिद्धम् । ३. का० उ० १।५६ । ४. तॄ प्लवनतरणयोः । कप्रत्यये ऋत इर् दीर्घत्वं च । अत्रोणादिः शरणम् । सरलः पन्थास्तु पार तीर कर्मसमाप्तौ । ततस्तीरयतीति विग्रहे पचाद्यच् । ५. पालनपूरणयोः पॄ धातुस्तेन पिपर्तीत्यस्य पूरयतीति पर्यायो युक्तो न तु वृणोतीति । ज्वलादित्वाण्णः । क्षीरस्वामी तु परे पार्श्वे भवं कूलम् पारम् इत्याह । ६ का० सू० ४।५।७० इति किः । ७. का० उ० ५।२२ । ८. कल्ल अव्यक्ते शब्दे कल्लन्ते इत्यस्य शब्दायन्ते इत्यर्थः । उणादित्वादोलच्प्र० । कं जलम् तस्य लोलश्चञ्चलोऽवयवः । अनुस्वारस्य परसवर्णो लकार इति रामाश्रमः । ९. वेञ् संवरणे । वेञो डिच उ० सू० ४।७२ इतीचिप्र० । १०. *एवं चिह्नितांशस्थाने "मनोः षण्यौ" का०रू०पू० ४९३ इति घ्य षण् प्रत्ययौ इति पाठो युक्तः । ११. का० उ० ६।१० । १२. का० उ० ६।११ ।

"लुीय वाञ्छितं यान्तो वरमेते भुजङ्गमाः ।
न पुनः पक्षहीनत्वात् पङ्गुप्रायन्तु मानुषम् ॥"

म्रियते **मर्त्यः** । "[1]मृङस्त्यः" । स्वार्थे त्यो वा । मनोर्जातः **मनुजः** । मनोरपत्यं **मानवः**[2] । नृणाति विनयति **नरः**, 'णीञ् प्रापणे' नयतीति वा । "[3]नियो डाऽनुबन्धश्च" । अस्मात् ऋन् प्रत्ययो भवति, स च डाऽनुबन्ध इष्यतेऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । पूर्य्यते कुलमनेन सान्तः–[4]**पुमान्** । उणादौ पूङः पवते पुनातीति वा **पुमान्** । "[5]सिर्मनन्तश्च ।" अस्मात्सिः प्रत्ययो भवति, अस्य च मन् अन्तः चकाराद् ह्रस्वत्वं च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणाद्वा पुरुषः । पृणाति पूरयति वा स्त्रीणामुदरं गर्भेणेति **पुरुषः**[6] । "पृणातेः[7] कुषः" । अस्मात्कुषः प्रत्ययो भवति । कोऽनुबन्धः । अन्येषामपीति वा दीर्घः । पूरुषः । लत्वे पुरुषः, पुलुषश्च । "गुध परिवेष्टने" । गुध्यति **गोधा**[8] ।

धवः स्यात्तत्पतिर्नृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्याग्रे **धव–पति**शब्दप्रयोगे **नृप**नामानि भवन्ति । मनुष्यधवः, मानुषधवः, मर्त्यधवः, मनुजधवः, मानवधवः, नरधवः, नृधवः, पुन्धवः, पुरुषधवः गोधाधवः । मनुष्यपतिः, मानुषपतिः मर्त्यपतिः मनुजपतिः, मानवपतिः, नरपतिः, नृपतिः, पुंस्पतिः, पुरुषपतिः, गोधापतिः ।

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदातिः पदगोऽनुगः ।
भटोऽनुजीव्यनुचरः शस्त्रजीवी च किङ्करः ॥२९॥

एकादश सेवके । भ्रियते इति **भृत्यः** । "[9]भृञोऽसंज्ञायाम्" । भ्रियते राज्ञा भृतः । स्वार्थे कः । **भृतकः** । पतति अधो गच्छति **पत्तिः**[10], पतनं वा । [पादाभ्याम्] अतति [**पदातिः**[11]] । पादातिकः । औणादिक इकः । [12]विनयादित्वात्स्वार्थे ठण् । पद्भ्यां[13] गच्छतीति **पदगः** । अनु पश्चाद् गच्छति **अनुगः** । भटति युद्धं बिभर्ति **भटः** । अनुजीवतीत्येवंशीलः **अनुजीवी** । अनु पश्चाचरतीत्य**नुचरः** । शस्त्रेण आयुधेन जीवतीत्येवंशीलः **शस्त्रजीवी** । किं कुत्सितं कार्यं विदधाति **किङ्करः** । सहायः, सेवकः, पदजेयः, पद्गः, पदिकश्च । तथा च यशस्तिलके–(श्लो० १३०)

"सत्यं दूरे विहरति समं साधुभावेन पुंसां धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।
पापं शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं सेवावृत्तेः परमिह परं पातकं नास्ति किञ्चित् ॥"

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना ।
ललना कामिनी योषिद् योषा सीमन्तिनीति च ॥३०॥

---

१. का० उ० ६।१२ । २. वाणपत्ये का० रू० पू० ४७३ इत्यण् । ३. का० उ० २।४१ । ४. पाति पुनाति वा पुमान् । पातेर्डुम्सुन् पूञो डुम्सुन्, पा० उ० ४।१७० इति डुम्सुन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र । ५. का०उ० ४।४२ । ६.पुरि शयनादिति तु निरुक्तप्रकारो विग्रहस्तु पृणातीत्यादिरेव । ७. का०उ० ३।५४ । ८. गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोषान्तरप्रमाणं नोपलब्धम् । तदुक्तम्–"गोधा तलनिहाकयोः" वि०लो० । गोधा प्राणिविशेषे स्याज्ज्याघातत्र च वारणे । आकारान्तस्त्रीलिंगत्वं च सर्वत्रास्योक्तम् । अ०सं० २४३। अतोऽस्य मूलं मृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यास्तीति गोदः मुख्यमस्तिष्कवत्त्वात् पुरुष इति समाधेयम् । तदुक्तम् गोदं तु मस्तकस्नेहो मस्तिष्को मस्तुलुङ्गकः अ० चि० ३।२८९ । ९. का० सू० ४।२।२५ इति क्यप् । १०. औणादिकस्तिः, क्तिच् क्तौ च संज्ञायामिति वा क्तिच् । पतनं वा इति व्युत्पत्तिस्त्वप्रासङ्गिकत्वादुपेक्ष्या । ११. अज्यतिभ्यां च पा०उ० ४।१३० इत्यतेरिञ् । पादस्य पदाज्यातिहतेषु इति पदादेशश्च । १२. विनयादेष्ठण् जै० सू० ४।२।४० । १३. पदाभ्यां पादाभ्यां वेति वक्तव्यम्, न तु पद्भ्यामिति । पाद इत्यापत्तेः । पादस्य पदाज्यातीति पादस्य पद् ।

नितम्बिन्यबला बाला कामुकी वामलोचना ।
भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविंशतिः स्त्रियाम् । "स्तृञ् आच्छादने" स्तृणात्याच्छादयति स्वदोषान् परगुणानिति **स्त्री** । उणादौ । स्तृणात्याच्छादयति लज्जयाऽत्मानमिति **स्त्री** । स्तृणातेष्ट्रत्[1]" प्रत्ययो भवति । अकारमात्रः । "रमृवर्णः[2]" । अथवा ड्रट्पाठः । डाऽनुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । डकारो नदाद्यर्थः । रकारमात्र एव । अमरसिंहभाष्ये[3]–"स्त्यायत्य(तेऽ) स्यां गर्भः स्त्री ।" तथा च हलायुधे–"स्तृणाति विवेकमाच्छिनत्ति स्त्री" । नरस्य स्त्री जातिश्चेत्**नारी** । नरं वनति भजते वनिता । मुह वैचित्ये कार्येषु मुह्यति **मुग्धा** । "मुहेर्धक्[4] हस्य गः ।" भामते कुप्यते (ति) **भामिनी** । [भामः] क्रोधोऽस्त्यस्याः वा **भामिनी** । बिभेत्यस्माद्(त्यसौ)**भीरुः** । "[5]भियो रुग्लुकौ च ।" भीरुः । प्रशस्तान्यङ्गान्यस्या अङ्गना । लाडयति, (लडति) विलसति, ललयति (ललति) नरमीप्सते वा **ललना** । "लल ईप्सायाम्" । भोगान् कामयते **कामिनी** । युषः सौत्रोऽयं धातुः सेवाऽर्थे । योषति पुरुषं गच्छति रतेच्छया आत्मनो **योषा** । "कष शिष जष झष दष मष रुष रिष यूष जूष हिंसार्थाः" । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । "[6]हृसृतडिरुहियुषिभ्य इतिः" एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । अमरसिंहे–"[7]यौति पुंसा योषित् ।" अजादित्वादाप्प्रत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्त्स्याः **सीमन्तिनी** । बध्नाति चित्तं **वधूः** । नितम्बोऽस्त्यस्या **नितम्बिनी** । न विद्यते बलमस्या **अबला** । 'बा' सौभाग्यं लाति गृह्णातीति **बाला** । "कमु कान्तौ" कम् । "[8]कमेरिनिङ् कारितम्" इन् । "अस्योप०" दीर्घः । कामयते इत्येवंशीला **कामुकी** । "[9]शृकमगमहनवृषभूस्थालषपतपदामुकञ् ।" [10]कारितलोपः । "[11]निमि०" दीर्घाभावः । ञकाराऽनुबन्धत्वात्पूर्वस्योप०दीर्घः । वामे सुन्दरे लोचने नेत्रे यस्याः सा **वामलोचना** । "भाम क्रोधे" चुरादौ । भामयति । "भाम क्रोधे" भ्वादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते **भामा** । चक्षुर्दोषादिदर्शनात् । तनु सूक्ष्ममुदरं यस्याः सा **तनूदरी** । नरेषु रमते, मनांसि रमयति वा **रामा**[12] । सुष्ठु द्रियते आद्रियते जनोऽत्र, शोभनो दरो वराङ्गच्छिद्रमस्या वा [13]सुन्दरी । अथवा 'सुन्दर' इति सौत्रोऽयं धातुः । युवत्शब्दान्नदादिविहितस्तिः[14], **युवतिः** । यु मिश्रणे यौति नरान् मिश्रयति औणादिको वा अतिः युवतिः । स्त्रियामीः । **युवती** । यूनीत्यन्यः । तथाहि प्रयोगः—

"भर्ता संगर एव मृत्युवसतिं प्राप्तः समं बन्धुभिः,
यूनी काममयं दुनोति च मनो वैधव्यदुःखाद् वधूः ।
बालो दुस्त्यज एक एव च शिशुः कष्टं कृतं वेधसा,
जीवामीति महीपते प्रलपति यद्वैरिसीमन्तिनी ॥"

चलचित्तान्पुरुषान् चालयतीति **चला**[15] । वामनेत्रा, पुरन्ध्री, वासिता, वर्णिनी, प्रमदा, रमणी,

---

१. का० उ० ४।३६ । २. का० सू० १।२।१० । ३. ट्टी० भा० २।६।२ । ४ का०उ० ६।३८४ इति धिक् प्र० हस्य गश्च । ५. का०सू० ४।४।५६ । ६. का०उ० १।३५ । ७. ट्टी० भा० २।६।२ । ८. का० रू० उ० ४६२ । ९. का० सू० ४।४।३४ । १०. कारितस्यानामिड्विकरणे का० सू० ३।६।४४ इतीनो लोपः । इनः कारितसंज्ञा कातन्त्रव्याकरणे । ११. निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः इति परिभाषेन्दुशेखरे अकृतव्यूहपरिभाषार्थरूपः । १२. रमते रामा । ज्वलादित्वाण्णः । रमयतीति तु न युक्तम्, ण्यन्तस्य ज्वलादित्वाभावात् । १३ सु-अतीव उनत्ति सुन्दरी । उन्दी क्लेदने । बाहुलकादरप्र० । शकन्ध्वादित्वादुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वान्ङीप् इति रामाश्रमः । १४. का० सू० २।४।५० । १५. चलचित्तैः पुरुषैश्चलतीति चलत्येव विग्रहः । पचाद्यच् । णिजन्तात्तु चाला इति स्यात् ।

दयिता, प्रतीपदर्शिनी, कान्ता, वशा, महिला, महेला च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्रं गेहिनी गृहम् ।
महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रयः ॥३२॥

दश कलत्रे । डुभृञ् धारणपोषणयोः" । भ्रियते पुष्यते गर्भेण **भार्या** । "[1]ऋवर्णव्यञ्जनान्ताद्घ्यण्" । यकारमात्रः । अत्योपधावृद्धिः । भार्या इति जातम् । "[2]स्त्रियामादा" । आप्रत्ययः । प्र० सिः । "[3]श्रद्धायाः सिर्लोपम् ।" सिलोपः । "ज्या वयोहानौ" जा (जि) नाति **जाया** । 'जनी प्रादुर्भावे च' । सुखी जायते आत्माऽत्र **जाया** । "[4]सन्ध्यादयः—सन्ध्या वन्ध्या जाया इत्यादयः शब्दाः यक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । जनयति पुत्राञ्जनिः । इः"[5] सर्वधातुभ्यः" । कुले साधुः **कुल्या** "[6]यद्गवादितः" । "कड मदे" कड तौदादिकः । कडति माद्यति यौवनेनेति [7]**कलत्रम्** । "अमिनक्षिकडिभ्योऽत्रः" अत्रप्रत्ययः । कडत्रम् । डलयोरैक्यम् । प्रथ० सि० नपुं० [8]अका० मुरा० । [9]मोऽनु० । गेहमस्त्यस्या **गेहिनी** । 'ग्रह उपादाने" । गृह्णाति प्रत्युपार्जितं **गृहम्** । "[10]गेहेत्वक्" अक्प्रत्ययः । "ग्रहिज्या[11]"—सम्प्रसारणम् । मह्यते पूज्यते । **महिला** । मानः प्रणयकोपोऽस्या **मानिनी** । पतिं पतति याति **पत्नी** । "दृ विदारणे" । द० क० । दीर्यते शतखण्डीभवति पुरुष एभिरिति **दाराः** । "[12]भावे" घञ् । अकारमात्रः । [13]वृद्धिः । दार इति जातम् । प्रथमा जस् । प्राया बहुत्वं च । पुरं धमयन्ति, नेत्रान्ते पुरं शरीरं धरन्तीति [14]**पुरन्ध्रयः** । क्षेत्रम्, सहधर्मचारिणी, गृहाः, सहचरी, सहचरा ।[15]

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्ठा रमणी दयिता प्रिया ।
इष्टा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

एकादश वल्लभायाम् । वल्लते पत्युश्चित्तं संवृणोतीति **वल्लभा** । "[16]कृशृशलिगर्दिरासिवलिवल्लिभ्योऽभः" अभः प्रत्ययः आप्रत्ययः । अतिशयेन प्रिया **प्रेयसी** । "तर[17]तमेयस्विष्ठः" प्रकर्षाऽर्थे 'तर तम ईयसु इष्ठ' इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया **प्रेष्ठा** । रमते जनोऽत्र, मनांसि रमयति

---

१. का० सू० ४।२।३५ इति घ्यण्प्रत्ययः । २. का० सू० २।४।४९ । ३. का० सू० २।१।३७ । ४. का० उ० ४।३० । ५. का० उ०३।१४ । ६. का० सू० २।६।११ इति यत्प्र० । ७. का०उ० ३।५। गड सेचने । गडति गड्यते वा "गडेरादेश्च कः" पा० उ० इत्यत्रन् । डलयोरेकत्वम् । कड शासने मदे । कडति कड्यते वा बाहुलकादत्रन् । कलं मधुर ध्वनिं त्रायते रक्षति वा । त्रैङ् पालने कः इत्यन्यत्र । ८. अकारादसम्बुद्धौ मुश्च इति पूर्णं का० सू० २।२।७ इति सेर्लोपो मुरागमश्च । ९. मोऽनुस्वारं व्यञ्जने इति पूर्णं का०सू० १।४।१५ इत्यनुस्वारः । १०. का०•सू० ४।२।६० । ११. का० सू० ३।४।२ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिव्यचिप्रच्छिव्रश्चिभ्रस्जीनामगुणे इति पूर्णसूत्रम् । १२ का० सू० ४।५।१३ । १३ का० सू० ३।६।५ । अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु इति सूत्रस्वरूपम् । १४. स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री २।६।६ । इत्यमरादिकोशेषु दीर्घेकारान्तपुरन्ध्रीशब्दस्यैव सत्त्वादत्र पुरन्ध्रय इति पाठोऽयुक्त इति न भ्रमितव्यम् । पुरं धरन्तीति विग्रहे "अत्र इः" पा० उ० ४।१३९ इति इः । पृषोदरादित्वात्पुरोऽकारान्तत्वं मुमागमश्चेति रीत्या तस्याप्युपपत्तेः । अत एव " तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्" इति रघुः । पुरन्धमयन्तीति न विचारसहम्, तत्साधकानुशासनविरहात् । १५. भार्यादिपुरन्ध्र्यन्तशब्देषु सामान्यविशेषभावादर्थभेदो न विस्मर्तव्यः । तद्यथा—भार्या, जाया, कुल्या, कलत्र, गेहिनी, गृह, पत्नी दारा परिणीतस्त्रीवाचकाः । महिलामानिन्यौ विशिष्टनायिके । पुरन्ध्री पतिपुत्रवती । १६. का०उ० ३।१२ । १७. एतच्च कातन्त्रसूत्रं नोपलब्धम् । गुणाङ्गाद्वेष्ठेयसू शा० सू० ३।४।७५ इतीयसुप्रत्ययो बोध्यः ।

वा **रमणी** । नरेषु दयते गच्छति ईष्टे वा **दयिता** । प्रीणाति पतिचित्तं रञ्जयति **प्रिया** । इज्यते इष्यते वा **इष्टा** । प्रकृष्टो मदोऽस्याः **प्रमदा** । काम्यते नरेण **कान्ता** । चण्डते कुप्यति **चण्डी** । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति **प्रणयिनी** ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्न्यपि ।

मनस्विनी भवत्यार्या–

सप्त पतिव्रतायाम् । एकः पतिरस्तीति **सती**[1] । पतिव्रतं करोति,पतिरेव व्रतं सेव्यो नान्यो यस्या इति वा **पतिव्रता** । पतिसेवैव व्रतं यस्याः **पतिव्रता** । यत्स्मृतिः—**"नास्ति[2] स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति ।"** साधयति **साध्वी** । पतिरस्या अस्तीति **पतिवती**[3] । एकः पतिर्यस्याः सा **एकपती** । मनोऽस्या अस्तीति **मनस्विनी** । अर्यते सेव्यते **आर्या** । सुचरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया धनञ्जयेन, भाष्यकर्त्रा अमरकीर्त्तिना वा कथ्यते **विपरीता** असदृशा ।

बन्धकी कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंश्चली खला ।

षड् बन्धक्याम् । बध्नाति तरुणचित्तानि **बन्धकी** । कुलमटति **कुलटा** । तथा चोणादौ "टल ट्वल वैकल्ये" हेताविन् । अस्योपधाया दीर्घः । कुलपूर्वः । कुलं टालयति **कुलटा** । "कुले[4] टालेरिलुक् डश्च" कुले उपपदे टालेरिन्नन्तस्य डः प्रत्ययो भवति इलुक् च । स्वाचारं मुच्यते (स्म) पत्या जनैर्वा **मुक्ता** । पुनर्भवतीति **पुनर्भूः** । पुमांसं चालयति **पुंश्चली** । खं पञ्चेन्द्रियोत्पन्नसुखं लाति गृह्णातीति **खला,** अन्यपुरुषलम्पटत्वात् । पांशुला, स्वैरिणी, असती, इत्वरी, धर्षणी, अविनीता, अभिसारिका, चपला ।

स्पर्शाऽभिसारिका दूती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूत्याम् । 'स्पृश संस्पर्शे' । स्पृशति, स्प्रक्ष्यति, अस्प्राक्षीत्, पस्पर्श वा घञ् । स्पर्शः । "पद[5]-रुजविशस्पृशोचां घञ्" । नामिन[6]श्च गुणः । "स्त्रियामादा" आप्रत्ययः । **स्पर्शा** । पुरुषान्तरमभिसरति **अभिसारिका** । दूयन्तेऽस्या[7] मौखर्यात् **दूती** । 'ईर् गतौ कम्पने च' । ईर् । ईरणम् ईरः । "भावे"[8] घञ् प्रत्ययः । स्वस्य ईरः स्वैरः । स्वैरो विद्यतेऽस्या **स्वैरिणी** । "तदस्यास्तीति[9] मन्त्वन्त्वीन्" इन् । "[10]नदाद्यञ्चिवाह्" ई प्रत्ययः । "रषृवर्णेभ्यः[11]" नस्य णत्वम् । शं सुखम् फलति निष्पादयतीति **शम्फली** । तथा तेनैव प्रकारेण ।

गणिका लञ्जिका वेश्या रूपाजीवा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दासी कामुकी सर्ववल्लभा ॥ ३६ ॥

नव वेश्यायाम् । गणः पेटकोऽस्त्यस्याः, गणयतीश्वरानीश्वरौ वा **गणिका** । 'लजि लाजि लाजा लज तर्ज भर्त्सने' । लञ्जयति निः स्वान्पुरुषान् तर्जयतीति **लञ्जिका** । वेशे वेश्यावाटे भवा **वेश्या**[12] । रूपेण आ समन्ताज्जीवतीति **रूपाजीवा** । विलासोऽस्याऽस्तीति **विलासिनी** । तथा चोक्तम्—

"हावो मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमोऽत्र दृगन्तयोः ॥

---

१ अस्धातोः शतृप्रत्ययान्तो ङीवन्तः सतीशब्दः । २ "नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे न हीयते" इति मनुस्मृतिः ५।१५५। ३. पतिवत्नी, एकपत्नी इति पाठो युक्तः । ४. का० उ० ५।४७ । ५. का० सू० ४।५।१ । ६. का०सू० ३।५।२ नामिनश्चोपधाया लघोः इति पूर्णसूत्रम् । ७. दूयन्ते परितप्यन्ते । अस्य कर्तारः स्त्रीपुमांसः । ८. का० सू० ४।५।३ । ९. का० सू० २।६।१५ । १०.का० सू० २।६।५०। ११. का० सू० २।४।४८। "रषृवर्णेभ्यो नोममन्त्यः स्वरहयवकवर्गान्तरोऽपि" इति पूर्णं सूत्रम् । १२. वेशेन नेपथ्येन शोभते,"कर्मवेशाद्यत्" इति यत् । वेशे भवा दिगादित्वाद्यत् ।

पण्यस्य स्त्री **पण्यस्त्री**। परिमाणं कृत्वा रमयतीत्यर्थः। दृणाति विदारयति कामिनम् **दारिका**। दस्यति परिकर्मणा क्षयति, ददात्यात्मानं वा **दासी**। दाशी। तालव्यदन्त्यः। कामयते इत्येवंशीला **कामुकी**। सर्वेषां पुरुषाणां वल्लभा **सर्ववल्लभा**। सैरिन्ध्री।

"[१]चतुःषष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी।
प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री कथ्यते बुधैः॥"

गन्धकारिका। पण्यस्त्री च।

कान्तेष्टौ दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः।
वल्लभोऽसुपतिः प्रेयान् विटश्च रमणो वरः॥३७॥

त्रयोदश कान्ते। काम्यतेऽभिलष्यते **कान्तः**। इष्यते **इष्टः**। दया कृपा संजाता अस्येति **दयितः**। '[२]तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच्।' '[३]इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च।' आकारलोपः। सौरेफः। प्र प्रकर्षेण ईं कामसुखम् इतः प्राप्तः प्रीतः। पृषोदरादित्वात् आकारलोपः। प्रीणातिस्म **प्रीतः**। प्रीणाति प्रीणीते वा **प्रियः**। "[४]नाम्युपधप्रीकृगृज्ञां कः"। "[५]स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ।" कामोऽस्यास्तीति **कामी**। कामयते इत्येवंशीलः **कामुकः**। वल्लते **वल्लभः**। "[६]कृशृशलिगर्दिरासिवलिवल्लिभ्योऽभः।" अभः प्रत्ययः। असूनां प्राणानां पतिः **असुपतिः**। अतिशयेन प्रियः **प्रेयान्**। "[७]प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः।" विट शब्दे विटति कामोद्रेकशब्दं करोतीति **विटः**। [८]इगुपधेति कः। 'रमु क्रीडायाम्।' रम्। रमते कश्चित्। तं प्रयुङ्क्ते इन्। अस्योपधादीर्घः। "[९]मानुबन्धानां ह्रस्वः।" रमयतीति **रमणः**। "[१०]नन्द्यादेर्युः।" [११]"युवुभ्रानामनाकान्ताः" अनः। "[१२]कारितस्य०" कारितलोपः। "[१३]रपृ०" नस्य णत्वम्। वृणोति वरयति वा **वरः**। कमिता। पतिः। वरयिता। भर्ता। भोक्ता। धवः। रुच्यः। अभीकः। "[१४]अभ्यनुभ्यां कामपितरि को वा दीर्घश्च" जनयति कः। अभिकः। अमुकः। प्राणाधिनाथः। सेक्ता।

सवित्री जननी माता

त्रयः मातरि। सूते जनयति **सवित्री**। जनयति जायतेऽस्यां वा **जननी**। माति गर्भोऽत्र [१५]मानयति वा **माता**। अम्बा।

जनकः सविता पिता।

त्रयः पितरि। जनयति उत्पादयतीति **जनकः**। पुत्रान् सृजते (सूते) **सविता**। अहितात् पाति रक्षतीति **पिता**। "उणादौ" पा रक्षणे, पातीति पिता। 'स्वस्रादयः'[१६]। "स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृप्रशास्तृपितृमातृदुहितृजामातृभ्रातरः" एते शब्दास्तृन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

---

१. 'चतुष्षष्टिकलाऽभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी। प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री स्ववशेति चेति कात्यः" इत्यमरकोशे क्षी० स्वा०। २. का० रू० पू० ५०८। ३. का०सू० २।६।४४। ४. का० सू० ४।२।५१। ५. का०सू० ३।४।५५। इतीप्। ६. का० उ० सू० ३।१२। ७. पा०सू० ६।४।१५७। इति प्रियशब्दस्य प्रादेशः। ८. "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" पा० सू० ३।१।१३५। ९. का० सू० ३।४।६५। इति ह्रस्वः। १०. का० सू० ४।२।४९। इति युप्रत्ययः। ११. का० सू० ४।६।५४। इति योरनादेशः। १२. का० सू० ३।६।४४। इतीनो लोपः। १३. का० सू० २।४।४८। १४. कातन्त्रे नैतत्सूत्रमुपलब्धम्। जैनेन्द्रव्याकरणे-"शृङ्खलिकोदरिके" त्यादि सूत्रम् ४।१।१७। तेन कप्रत्ययान्तः पक्षे दीर्घान्तश्चाभिकोऽभीक इति निपातितः। १५. मानयतीत्यर्थः, विग्रहस्तु मातीत्येव। मा माने। तृच् प्रत्ययान्तः। १६. का० उ० २।४२।

देहापघनकायाङ्गं वपुः संहननं तनुः ॥ ३८ ॥
कलेवरं शरीरं च मूर्त्तिः

दश देहे। देहश्च अपघनश्च कायश्च अङ्गं च। समाहारसमासत्वादेकवचनम्। दिह। देग्धीति देहः। "[1]दिहिलिहिश्लिषिश्वसिव्यध्यतीषुश्यातां च"। एषां णो भवति। अपहन्यते अपघनः। "मूर्तौ[2] घनिश्च" अल्। चिञ् चयने। चि। चीयतेऽसौ कायः। "[3]शरीरनिवासयोः कश्चादेः" चिनोतेः शरीरे निवासे चार्थे घञ् भवति आदेश्च को भवति। उख, णख, वख, मख, रख, लखि, इखि, वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, स्वगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्थाः। अङ्गति मरणं गच्छतीति अङ्गम्। उप्यन्ते पुरुषार्था अनेनेति वपुः। '"ऋ[4]पृवपिचक्षिजनितनिधनिभ्य उस्" एभ्य उस् प्रत्ययो भवति। संहन्यन्ते संपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम्। धातुभिः रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रैस्तन्यन्ते तनुः। तनूः। उणादौ तनुविस्तारे। तनोतीति तनूः। "कृषि[5]चमितनिधनिव्रधिसर्जिखर्जिभ्य ऊः" एभ्य ऊप्रत्ययो भवति। कलते स्थिरत्वं गच्छति कलेवरम्[6]। कडति माद्यति वा कलेवरम्। कडेवरं च। अमरसिंहभाष्ये[7] 'कल्यते कलेवरम्।' शीर्यते क्षयं गच्छति रोगज्वरादिभिः शरीरम्। "कॄ[8]शॄशौण्डॄभ्य ईरः।" एभ्य ईरप्रत्ययो भवति। उणादित्वात्। 'मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः' मूर्छ। मूर्छनं मूर्तिः। स्त्रियां[9] क्तिः। "घोषवत्योश्च कृति"[10]इति नेट्। "राल्लोपः (प्वौ)"[11]इति छकारलोपः। "नामिनार्वोदकुर्छुरोर्व्यञ्जने"[12] दीर्घः। व्यञ्जनम्"[13]। प्रथ० सिः। "रेफ०[14]। विग्रहः। वर्ष्म। पुरम्। पिण्डम्। क्षेत्रम्। गोत्रम्। घनः। पुद्गलः। प्रतीकः। अवयवः।

अस्मिन् भवः

अस्मिन् काये **भवः** कायभवः। देहभवः। अपघनभवः। अङ्गभवः। वपुर्भवः। संहननभवः। तनुभवः। कलेवरभवः। शरीरभवः। मूर्तिभवः। कायजः। देहजः। अपघनजः। अङ्गजः। वपुर्जः। संहननजः। तनुजः। कलेवरजः। शरीरजः। मूर्त्तिजः। एतानि पुत्रनामानि भवन्ति। भव प्रयोगे।

सुतः।
पुत्रः सूनुरपत्यं च तुक् तोकं चात्मजः प्रजा ॥३९॥

अष्टौ पुत्रे। सूयते **सुतः**। पुनातीति **पुत्रः**। "[15]पूञो ह्रस्वश्च।" अस्मात् त्रक्प्रत्ययो भवति धातोर्ह्रस्वश्च। कोऽगुणार्थः। तथा च सोमनीत्याम्[16]—"**य उत्पन्नः पुनाति वंशं स पुत्रः। अथ पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते वा पुत्रः**। सूयते **सूनुः**। "[17]सूविपिभ्यां णवत्।" आभ्यां नु प्रत्ययो भवति, स च णवत्।" पूङ् प्राणिगर्भविमोचने।" पल शल पत्लृ पथे च गतौ।" पत् नञ् पूर्वः। न पतन्ति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ **तदपत्यम्**। "नञि[18] पतेर्यः" यप्रत्ययः। नस्य[19] तत्पु० सिः। नपु०

---

१. का० सू० ४।२।५८। २. का० सू० ४।५।५८। इत्यल् घन्यादेशश्च। ३. का० सू० ४।५।३५। ४. का० उ० २।४६। ५. का० उ० १।३१। ६. कले शुक्रे मधुराव्यक्तध्वनौ वा वरं श्रेष्ठम्। "हलदन्तादि" ति सप्तम्या अलुक्। इत्यन्यत्र। ७. क्षीर० भा० २।६।७०। ८. का० उ० ३।४८। ९. का० सू० ४।५।७२। इति क्तिप्रत्ययः। १०. का० सू० ४।६।८०। ११. का० सू० ४।१।५८। १२. का० सू० ३।८।१४। १३. "व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्" इति पूर्णं कातन्त्रसूत्रम् ।१।१।२१। इति व्यञ्जनस्य परवर्णयोगः। १४. "रेफसोर्विसर्जनीयः" इति पूर्णम्। का० सू० २।३।६३। इति सकारस्य विसर्गः। १५. का० उ० ४।४१। १६. नी० वा० समु० ५ सू० ११। १७. का० उ० २।८। १८. का० उ० ६।३०। १९. "नस्य तत्पुरुषे लोप्यः" इति पूर्णम्। का० सू० २।५।२२। इति नलोपः।

अका०[1] । मोऽनु०[2] । तोजति [3]तुक् । स्तूयते **तोकम्**[4] । आत्मनो जातः **आत्मजः** । प्रकर्षेण जाता **प्रजा** । "[5]सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्डः ।" बालः, पाकः, अर्भकः, गर्भपोतश्च । पृथुकः, शिशुः, शावः, डिम्भः, वटुः, माणवकः, भ्रूणः ।

उद्वहस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।
स्तनन्धयोत्तानशयौ–

अष्टौ बालके । उद्वहतीति **उद्वहः** । खश् । तनोति विस्तारयति वंशम्, **तनयः** । "तनेः[6] कयः ।" पवते वातेन **पोतः**[7] । दारयति दृणाति वा तरुणीनां मनांसि [8]**दारकः** । 'टुनदि समृद्धौ ।' नद् । अत एव नन्द् । नन्दति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते । "[9]धातोश्च हेतौ (हेतौ)" इन् । नन्दयतीति **नन्दनः** । "नन्दि[10]वासिमदिदूषिसाधिशोभिवर्धिभ्य इनन्तेभ्योऽसंज्ञायाम्" युप्रत्ययः । स्वमते "नन्द्यादेर्युः" यु प्रत्ययः "[11]युवुझानाम०"– इति युस्थाने अनः । "[12]कारितस्यानामि० कारितलोपः । 'अर्ह मह पूजायाम्' अर्हत्य**र्भकः** । "[13]मूकादयः ।' मूकयुकाऽर्भकपृथुकत्रकल्कभूकाः एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति **स्तनन्धयः** । [14]"शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पेषु धेटः ।" खश् । उत्तानः शेते **उत्तानशयः** । [15]"उत्तानादिषु कर्तृषु" अच् ।

स्त्री चेद् दुहितरं विदुः ॥४०॥

पुत्र्यां दुहितरं[16] दोग्धि मातृकुलं दुनोति वा विदुः कथयन्ति । तनया, पुत्री ।

वयस्याऽली सहचरी सध्रीची सवयाः सखी ।

षट् सख्याम् । वयसा तुल्या **वयस्या** । वयसी च । आ समन्ताच्चित्तं लाति **आलिः** । स्त्रियामीः । **आली** । सह सार्धं चरतीति **सहचरी** । सहाञ्चतीति सध्यूङ् । [17]"सहसन्तिरसां सध्रिसमितिरयः ।" ईप्रत्यये **सध्रीची** । सह वयसा वर्तते **सवयाः**[18] । समानं ख्यातीति सखिः (खा) । स्त्रियामीः **सखी** । [19]"सख्यादयः" सखि अश्रि प्रहि इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

आलीविवर्जितं मित्रं सम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे । **आली** रहितानि वयस्यादीनि नामानि **मित्र**वाच्यानि स्युरित्यर्थः । 'जिमिदा स्नेहने' । मेद्यति स्म मेदते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा **मित्रम्** । [20]"चिमिदिभ्यां त्रक्" आभ्यां[21]

---

१. "अकारादसम्बुद्धौ मुश्च" इति पूर्णम् । का० सू० २।२।७। इति सेर्लोपो मुरागमश्च । २ "मोऽनुस्वारं व्यञ्जने" इति पूर्णम् । का० सू० १।५।१५। ३. "तुज हिंसाबलादाननिकेतनेषु" । चुरादौ वा णिच् । तोजति पितृधनमादत्ते "तुक्" इति टीकाशयः । ४. तौति पूरयति पितृकार्यं पितुरभावेऽपीति तोकम् । तुः सौत्रो धातुर्हिंसावृत्तिपूर्तिषु । बाहुलकात्कः इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूह्यम् । ५. का० सू० ४।५।५१। इति जनेर्डः । ६. का० उ० २।२५। इति तन् धातोः कयप्रत्ययः । ७. पवते वातेनेति विग्रहस्तु नौकावाचकपोते बोध्यः । पुत्रार्थे तु पुनाति पवते वा वंशं पोतः । 'मृगृवाहस्यमि" – इति का० उ० ४।२७। सूत्रेण तप्रत्ययः । ८. युवतिमनोदारणं बालद्वारा न घटते । अतो दृणाति दारयति वा मातुर्यौवनम्, पित्रोर्निस्सन्तानता जन्यार्तिर्वेति तदाशयोऽभ्युन्नेयः । ९. का० सू० ३।२।१०। १०. का० सू० ४।२।४९। "नन्द्यादेर्युः" इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११. का० सू० ४।६।५४ । १२. का० सू० ३।६।१४। इतीनो लोपः । इनः कारितसंज्ञा कातन्त्रे । १३. का० उ० २।५८। १४. का० सू० ४।३।३१। १५. का० सू० ४।३।१८ अत्र दुर्गवृत्तिः । १६. दोग्धि पितृकुलं दहति दुनोति वा मातृकुलं दुहिता । स्वस्रादित्वात्तृन्प्रत्यय इत्याशयः । १७. का० सू० ४।६।७१। इति सहस्य सध्र्यादेशः । १८. समानं वयो यस्या इति विग्रहो न्याय्यः । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेशः । १९. का० उ० ४।९। २०. का० उ० ४।४० । २१. मेद्यति मेदते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्तः, न तु भूतकालिकः ।

त्रक् प्रत्ययो भवति। ककारो यण्वद्भावाऽर्थस्तेनागुणत्वम्। सम्यक् स्नेहेन बध्नातीति **सम्बन्धः**। मित्रं युनक्तीति **मित्रयुक्**। सुष्ठु हरति चित्तं **सुहृद्**[1]। शोभनं हृदयं यस्य वा। सखा, स्निग्धः।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः।

चत्वारः सहाये। सहकृतवान् **सहकृत्वा**। "कृञश्च[2]" क्वनिप् प्रत्ययः। प्र० सि०। "घुटि[3] चा०" दीर्घः। सह समन्तात्करोतीति **सहकारी**। "नाम्न्यजातौ[4] णिनिस्ताच्छील्ये"। सह सार्धम् अयते गच्छति **सहायः**। समवाये नियुक्तः **सामवायिकः**। इकण्।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि। समाना नाभिर्यस्य **सनाभिः**। समानं गोत्रं यस्य **सगोत्रः**। बध्नाति स्नेहेन **बन्धुः**। "पट्यसि[5] वसिहनिमनित्रपीन्दिकन्दिबन्धिवह्यणिभ्यश्च" एभ्य एकादशभ्य उः प्रत्ययो भवति। **सोदर्यः**। समानोदर्यः, सगर्भः, सोदरः, समानोदरः, आत्मीयः, स्वजनः, आप्तः, ज्ञातिः, सनाभेयः, सपिण्डः।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्–

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि। अवरं पश्चाज्जातः **अवरजः**। (अनु) पश्चाज्जातः **अनुजः**। "सप्तमी-[6] पञ्चम्योर्जे (म्यन्ते ज) नेर्डः"। अयमनयोरतिशयेन युवा **कनीयान्**। "युवाऽल्पयोः[7] कन्वा। कनिष्ठः।

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जातः **अग्रजः**। प्रकृष्टो वृद्धो **ज्येष्ठः**। "वृद्धस्य[8] ज्यः" वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति। पूर्वजः, वरिष्ठः, वर्षीयान्, अग्रियः।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा।

त्रयो भगिन्याम्। भ्रातुर्जाता **भ्रातृजानी**[9]। स्वस (स्य) ति क्षिपति चित्तं **स्वसृ**[10]। ऋदन्तः। अनु पश्चाज्जाता **अनुजा**। भगिनी। भग्नी च। जामिः। यामिश्च।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्–

स्यात् भवेत्। **भर्तुःस्वसा** भगिनी। **ननान्दा**। "टुनदि समृद्धौ"। नद्। "अत[11] एव०" नञ् पूर्वः। न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा। "नञि[12] च नन्देर्ऋ न् दीर्घश्च" नञि उपपदे

---

१. सुष्ठु हरतीतिव्युत्पत्तिस्तु तान्तसुहृत्शब्दे सम्भवति। मित्रवाचकदान्तसुहृद्शब्दे तु शोभनं हृदयं यस्येत्येव। हृदयस्य हृदादेशः समासे। २. का०सू० ४।३।९०। ३. "घुटि चासम्बुद्धौ"।४. का०सू० २।२।१७। का०सू० ४।३।७६। ५. का०उ० १।६। ६. का०सू० ४।३।९१। ७. वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम्। ८. वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम्। ९. नान्यस्मिन्कोषे भ्रातृजानीशब्द उपलब्धः, नाप्येतत्साधकं किमपि व्याकरणसूत्रम्। भ्रातुर्जातेति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थेऽसंगतः। तथापि भ्रात्रा सह मातुर्जातेति विगृह्य बाहुलकादौणादिकमण्प्रत्ययं जनधातोः प्रकल्प्य अणन्तत्वान्ङीपि भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्थकारप्रत्ययात् कथञ्चित् समाधेयः। १० स्वस्यति क्षिपति चित्तं भ्रातुः स्वसेति विग्रहो बोध्यः। "असु क्षेपणे" दिवादौ। सुपूर्वकात्ततः "सुज्यसेर्ऋन्" इति ऋन्प्रत्ययः। कातन्त्रौणादौ तु "स्वसादयः" इति 'श्वस् प्राणने' इत्यत ऋन्प्रत्यये शकारस्य सकारे च "श्वसितीति स्वसा" इत्याह। अत्र क्षिपतीति दर्शनात् 'असु क्षेपणे' इत्येव भाष्यकर्तुरभिप्रेत इति ज्ञायते। ११. "अत एव वर्जनादिदमनुबन्धानां नोऽस्तीति" दुर्गवृत्तिः। का० सू० ३।६।१०। १२. का० उ० २।३९।

सति नन्देर्धातोऋ॑न् प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति जातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्यायाम् । मातुलस्येयं भार्या **मातुलानी** । "इन्द्र[१]वरुणभवशर्वरुद्रहिमयमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ईप् च" । अम्बैव अम्बिका । "अम्बादिभ्यो डलेकाः" ड, ल, इक, प्रत्यया भवन्ति । प्रिया चासौ अम्बिका **प्रियाम्बिका** ।

वैर्यरातिरमित्रोऽरिर्द्विट् सपत्नो द्विषद्रिपुः ।
भ्रातृव्यो दुर्जनः शत्रुर्दुष्टो द्वेषी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विशिष्टाम् ईं लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरः, वीरस्य कर्म वैरम्[२] । [वैरमस्यास्तीति **वैरी** ।]. वैरिपुरमियर्त्ति गच्छति **आरातिः**[३] अरातिश्च । न मित्रम् **अमित्रम्** । अधर्मानृतादिवत् । **"विपक्षे नञ्"** इति सारस्वत[४]सूत्रम् । शत्रुत्वमियर्त्ति **अरिः** । द्वेष्टीति **द्विट्** । "सत्[५]सू द्विष् द्रुह् दुह् युज विद भिद छिद जि नी राजामुपसर्गेऽपि" क्विप् । एकार्थाऽभिनिवेशेन समानं पतति **सपत्नः** । द्विष्टे **द्विषन्** । निष्ठुरं रयति **रिपुः** । "[६]रज्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलघवः ।" एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तप्रापणार्थे प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लक्षणेन यद्यदसिद्धं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । तथा क्षीरस्वामिनः–[७]"रेपयति **रिपुः** । **रेपृ गतौ** । भ्रातरं व्ययति मारयति [८]**भ्रातृव्यः** । दुष्टजनः **दुर्जनः** । परमभट्टारकश्रीयशःकीर्तिसम्भाषितग्रन्थे—

"प्रशस्या न नमस्याऽपि दुर्जनैर्या विधीयते ।
कण्टकः पादलग्नोऽपि न शुभाय प्रजायते ॥"

तथा च सूक्तिमुक्तावल्याम्[९]—

"वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥"

अत्र ये केचिद् दुर्जनाः सन्ति, तेषां मस्तकेऽशनिपातो भवतु । तथा च[१०]—

"दुज्जण सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसें वासरु तिमिण जिमि मरगउ कच्चेण ॥"

शृणाति शीर्यते वा [११]**शत्रुः** । दूष्यते निन्द्यते लोके **दुष्टः** । द्वेष्टि [१२]द्वेषोऽस्त्यस्य वा **द्विषन्** ।

---

१. पा० सू० ४।१।४९। अत्र सूत्रे यमेत्यधिकः पाठः । २. "हायनान्तयुवादिभ्योऽण्" युवादित्वादण् । ततो मत्वर्थे "अत इनिठनौ" इतीन् । ३. "ऋ गतौ" । आङ्पूर्वकाद् ऋधातोर्बाहुलकादातिप्रत्ययः । अन्यत्र तु न राति सुखं ददातीति नञ् पूर्वकात् 'रा' (दाने) धातोः क्तिच् क्तौ च संज्ञायामिति क्तिच् । ४. "तदन्यतद्विरुद्धतदभावेषु नञ् वर्तते" इति वक्तव्यम् । "अन् स्वरे" सार० समा० १४ सू० । ५ का० सू० ४।३।७४। ६. का० उ० सू० १।६। ७. क्षीर० भा० २।८।१०। ८. "व्येञ् संवरणे" धातूनामनेकार्थत्वाद्धिंसाऽर्थे वृत्तिः । आतोऽनुपसर्गे कः । ९. निर्णयसागरयन्त्रालयप्रकाशितकाव्यमालासप्तम गुच्छेसूक्तिमुक्तावलौ ६१ श्लो० । १० सावयध० दो० २ । ११. "जत्वादयः । जत्रुश्मश्रु शिग्रुशत्रवः । एते रुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते" । इति का० उ० दुर्ग० वृ० ३।६६। १२. द्वेषोऽस्त्यस्येति केवलमर्थाऽभिप्रायेण । विग्रहस्तु द्वेष्टीत्येव । शत्रुप्र० ।

खलति सज्जनगुणानाच्छादयतीति **खलः**। न मैत्रीं हिनोति गच्छति, न हितो वा, [1]अहितः। अभियातिः, प्रतिपक्षः, असहनः, जिघांसुः, परिपन्थी, परः, असुहृत्, अपथी, पर्यवस्थाता, शात्रवः, प्रत्यनीकः, द्वेषणः, दुर्हृद्, दस्युः, अभिमन्थी।

दीधितिर्भानुरुस्रोंऽशुर्गभस्तिः किरणः करः।
पादो रुचिर्मरीचिर्भास्तेजोऽर्चिर्गौर्द्युतिः प्रभा ॥४५॥

षोडश किरणे। दिधीते दीप्यते **दीधितिः**। [2]"दीधीङो ङितिः" दीधीङो धातोर्ङितिः प्रत्ययो भवति। 'भा दीप्तौ' भाति **भानुः**। [3]"दाभारिवृञ्भ्यो नुः।" एभ्यो नुः प्रत्ययः स्यात्। वसति रवौ [4] **उस्रः**। पुंसि। अश्नुते जगद् व्याप्नोति **अंशुः**। स्त्री। उणादौ। अनच्। अनितीति **अंशुः**। अनेः[5] शुः" अनेर्धातोः शुप्रत्ययो भवति। ["[6]भा दीप्तौ" भाति **भानुः**। "दाभारी"] गां भुवं बभस्ति [7]**गभस्तिः**।

"[8]वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे॥"

कीर्य्यते **किरणः**। हलायुधे-"**किरति विक्षिपति तमांसि किरणः**।" "[9]कॄभूभ्यां कनः। कीर्यते **करः**। पद्यते **पादः**। "[10]पदरुजविशस्पृशोचां घञ्।" रोचते **रुचिः**। म्रियते तमोऽनेन **मरीचिः**। स्त्रीनॄः। उणादौ। म्रियते **मरीचिः**। "[11]मृकणिभ्यामीचिः" आभ्यामीचिः प्रत्ययो भवति। भासते क्विपि सान्तो **भास्**। स्त्रीनॄः।" पुंस्येवेति शब्दभेदः। भाः। भासौ। भासः। तेजयतीति **तेजस्**। अर्चयतीति अर्चिष्। अर्च्यते पूज्यते **अर्चिः**। "अर्चि[12]शुचिरुचिहुसृपिछिदिछर्दिभ्य इसिः।" गच्छति तमोऽत्रोदिते **गौः**। स्त्रीनॄः। द्योतनं **द्युतिः**। द्योतते (वा) **द्युतिः**। प्रभाति **प्रभा**। रोचिः, अभीशुः, प्रद्योतः, रश्मिः, घृणिः, रुचिः, विभा, धाम, वसुः, केतुः, प्रग्रहः, उपधृतिः, धृष्णिः, पृश्निः, मयूखः, विरोकः, शेकश्च।

दीप्तिर्ज्योतिर्महो धाम रश्मिरूर्जो विभावसुः।

सप्त तेजसि। दीप्यते **दीप्तिः**। द्योतते **ज्योतिः**। 'ज्योतिरादयः[13]। ज्योतिर्बर्हिरादयः। महति **महः**[14]। सान्तम्। धीयते सूर्येण नान्तम् **धामन्**। रशिः सौत्रः। रशति अश्नुते **रश्मिः**। "ऊर्ज बलप्राणनयोः।" ऊर्जयतीति **ऊर्जः**। कः। [[15]विभा वसुर्यस्य स **विभावसुः**।] (विभा। वसुः।)

शीतोष्णप्रायपूर्वार्च्यौ तदन्ताविन्दुभास्करौ ॥४६॥

तयोरन्तौ [16]**तदन्तौ**। **इन्दुभास्करौ**। इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करौ। कथंभूतौ? **शीतोष्ण-**

---

१. न मैत्रीं हिनोतिस्मेति भूते विग्रहो बोध्यः। गत्यर्थत्वात्कर्त्तरि क्तः। न हितमस्मादिति रामाश्रमः। २. का० उ० सू० ६।२६। ३. का० उ० सू० २।७। ४ "वस् निवासे" वस् धातोः "स्फायितञ्चि" त्यादि उ० सूत्रेण रक्प्रत्ययः सम्प्रसारणं च। ५. का० उ० सू० ५।४८। अंशयति विभाजयति "अंश विभाजने" उप्रत्ययः व्युत्पत्त्यन्तरं च। ६. पुनरुक्तत्वात्परिहार्यः। ७. बभस्ति दीपयति। "भस भर्त्सनदीप्त्योः"। तिप्रत्ययः। पृषोदरादित्वात्षोडशादौ वर्णविकारवदोकारस्याकारः। ८. शा० सू० २।२।१७२। "पृषोदरादयः" इत्यत्र कारिकारूपेण पठितः। ९. का० उ० सू० ६।१४। १०. का० सू० ४।५।१। ११ का० उ० सू० ३।४३। १२. का० उ० सू० २।४४। १३. का० उ० सू० २।४५। १४. महनं महः। मह्यते पूज्यते वेति रामाश्रमः। १५. वस्तुतस्तु "विभा" इति "वसु" इति च तेजसः संज्ञा। समुदितो "विभावसु" शब्दस्तु सूर्याग्निवाची। तदुक्तं "सूर्यवह्नी विभावसू" इति अम० को० ३।३।२२६। १६. ते दीधित्यादयः शब्दा अन्ते ययोस्तौ तदन्तौ इत्येवं समासो बोध्यः। तयोरन्ताविति समासस्तु लेखकप्रमादात्प्रयुक्तः।

(प्राय) पूर्वाञ्चौ। शीतोष्णौ (प्रायेण) पूर्वाञ्चौ ययोरिन्दुभास्करयोः (तौ) शीतोष्ण (प्राय) पूर्वाञ्चौ। शीतदीधितिः। शीतदीधितिमान्। शीतभानुः। शीतभानुमान्। शीतांशुः। शीतांशुमान्। शीतगभस्तिः। शीतगभस्तिमान्। शीतकिरणः। शीतकिरणवान्। शीतपादः। शीतपादवान्। शीतरुचिः। शीतरुचिमान्। शीतमरीचिः। शीतमरीचिमान्। शीतार्चिः। शीतार्चिष्मान्। शीतभाः। शीतभावान्। शीतगुः। शीतगोवा[1] (मा) न्। शीतद्युतिः। शीतद्युतिमान्। शीतप्रभः। शीतप्रभावान्। शीतदीप्तिः। शीतदीप्तिमान्। शीतज्योतिः। शीतज्योतिष्मान्। शीतमहाः। शीतमहस्वान्। शीतधामा। शीतधामवान्। शीतरश्मिः। शीतरश्मिवान्। शीतोर्जः। शीतोर्जवान्। शीतविभावसुः। शीतविभावसुमान्। किरणशब्दानां (भ्देभ्यः) पूर्वे शीतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति। उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति। उष्णदीधितिः। उष्णदीधितिमान्। उष्णभानुः। उष्णभानुमान्। उष्णोस्रः। उष्णोस्रवान्। उष्णांशुः। उष्णांशुमान्। उष्णगभस्तिः। उष्णगभस्तिमान्। उष्णकिरणः। उष्णकिरणवान्। उष्णपादः। उष्णपादवान्। उष्णरुचिः। उष्णरुचिमान्। उष्णमरीचिः। उष्णमरीचिमान्। उष्णभाः। उष्णभास्वान्। उष्णतेजाः। उष्णतेजस्वान्। उष्णार्चिः। उष्णार्चिष्मान्। उष्णगुः। उष्णगोमान्। उष्णद्युतिः। उष्णद्युतिमान्। उष्णप्रभः। उष्णप्रभावान्। उष्णदीप्तिः। उष्णदीप्तिमान्। उष्णज्योतिः। उष्णज्योतिष्मान्। उष्णमहाः। उष्णमहस्वान्। उष्णधामा। उष्णधामवान्। उष्णरश्मिः। उष्णरश्मिवान्। उष्णोर्जः। उष्णोर्जवान्। उष्णविभावसुः। उष्णविभावसुमान्।

शशी विधुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः।
कलाभृच्चन्द्रमाश्चन्द्रः कान्तिमानोषधीश्वरः॥ ४७॥

दश चन्द्रे। शशोऽस्यास्तीति **शशी**। विदधात्यमृतं **विधुः**। "वौ धाञश्च[2]"। सुधा अमृतं सूयते **सुधासूतिः**। कुमुदानामियं विकाश (स) हेतुत्वात्**कौमुदी** (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः)। कुमुदानां प्रियः अभीष्टः **कुमुदप्रियः**। कलां बिभर्तीति **कलाभृत्**। "मा माने" चन्द्रं मातीति **चन्द्रमाः**[3]। "चन्द्रे[4] मातेः" चन्द्रे उपपदे अस्मादसन् प्रत्ययो भवति। अगुणवद्भावादकारलोपः। भिन्नयोगः सज्ञार्थ एव। चन्दतीति **चन्द्रः**। "स्फायि"तञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृदिमदिमन्दिचन्दुन्दीन्दिभ्यो रक्[5]"। कान्तिरस्यास्ति **कान्तिमान्**। ओषधीनामीश्वरः **ओषधीश्वरः**। इन्दुः, सोमः, राजा, रोहिणीवल्लभः, अब्जः, ऋक्षेशः, अत्रिनेत्रप्रसूतः। तथा चोक्तं यशस्तिलके—[6]

"आहुर्नेत्रोत्थमत्रेः सुतममृतनिधेर्यं हरेर्नर्मबन्धुं
मित्रं पुष्पायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूषाविधानम्।
वृत्तिक्षेत्रं सुराणां यदुकुलतिलकं बान्धवं कैरवाणां,
सम्प्रीतिं वस्तनोतु द्विजरजनियतिश्चन्द्रमाः सर्वकालम्॥"

---

१. "मादुपधायाश्च०" इत्यादि वत्वविधायकं सूत्रम्। मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च मतोर्मकारस्य वकारं शास्ति। अत्र तथात्वाभावात् "शीतगोमान्" इति वक्तव्यम्। वस्तुतस्तु शीतगोशब्दस्य कर्मधारये ततो "गोरतद्धितलुकि" इति टचो दुर्वारत्वात् "शीतगववान्" इति सुवचन्। सिद्धान्ततस्तु नेदृशस्थले मतुबिष्टः। तदुक्तं "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः"। २. का० उ० सू० ५।२। कुप्रत्ययः। ३. चन्द्रं कर्पूरं माति तुलयति सादृश्येनेति ग्रन्थोक्तविग्रहार्थः। चन्द्रमाह्लादं मिमीते तुलयति सादृश्यनेति विग्रहान्तरमप्यूह्यम्। ४. का० उ० सू० ४।५७। ५. का० उ० सू० २।१४। ६. आश्वा० ३।४७ श्लो०।

प्रालेयांशुः, श्वेतरोचिः, शशाङ्कः, द्विजराजः, रजनिकरः, पीयूषरुचिः, निशीथिनीनाथः, जैवातृकः, मृगाङ्कः, दाक्षायणीरमणः, मा[1] अप्युच्यते, सत्यभामेतिवत्। सुधामूर्तिः अमृतनिर्गमः, समुद्रनवनीतम्। देश्याम्[2]।

उडूनि भानि तारर्क्षं नक्षत्रम्–

चत्वारो नक्षत्रे। अवति प्रभाम् उडुः[3]। स्त्रीक्लीवे। तथा चामरसिंहे[4]—

"नक्षत्रमृक्षं भन्तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम्।"

भाति दीप्यते **भम्**। क्षीरस्वामिनि–[5]**"भा विद्यतेऽस्य भम्।"** तरन्त्यनया **तारा**[6]। तारयति वा। ऋच्छति हिनस्ति तम **ऋक्षम्**[7]। नक्षति खे याति न तमः क्षि (क्ष) णोति वा **नक्षत्रम्**। "अमि[8]नक्षिकडिभ्योऽत्रः"। तारकं क्लीवेऽपि। यच्च[9] शाश्वतः—

"नक्षत्रे वाऽक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च।

लक्ष्यं च—

द्वित्रैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकघनच्छायैः स्थितं तारकैः"

तत्पतिः

(नक्षत्र पर्यायेभ्यः परं) **पतिशब्दप्रयोगे** चन्द्रनामानि भवन्ति। उडुपतिः। तारापतिः। ऋक्षपतिः। नक्षत्रपतिः। उडुराजः। उडुस्वामी। उडुनाथः। नक्षत्रेश्वरः। तारेन्द्रः।

निशा।

क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षिपा

सप्त रात्रौ। निशाति तनूकरोति चेष्टामिति **निशा,** निशो वा। "आत[10]श्चोपसर्गे"। क्षणमवसरं ददातीति **क्षणदा**। तमसा रञ्जति रजनिः। स्त्रियामीः। **रजनी**। रजनशब्दाद् वा नदादित्वादीः। नेनेक्ति **नक्तम्**। दुष्टं दूषयति याऽत्र **दोषा**। आदन्तोऽव्ययाऽनव्ययः। श्यायन्ते गच्छन्ति रात्रिञ्चरा अत्र **श्यामा**। तथाऽनेकार्थ[11] (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

"श्यामा रात्रिस्तु विट्श्यामा श्यामा स्त्री मुग्धयौवना।
श्यामा प्रियङ्गुराख्याता श्यामा स्याद् वृद्धदारिका॥"

क्षिप प्रेरणे। क्षिप्। क्षेपणं **क्षिपा**। "[12]षाऽनुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्।" क्षिप्यते स्वापेन जनैः, निर्गम्यते वा। तमी। तमा आदन्तोऽव्ययानव्ययः। तमिस्रा। तमस्विनी। विभावरी। नक्तमुखा। शर्वरी। त्रियामा। निशीथिनी। यामिनी। वसतिः। वासतेयी। रात्रिः।

---

१. "लोपः पूर्वपदस्य च अच्प्रत्यये तथैवेष्टः" इति कात्यायनवार्तिकम् ।५।३।८३। पा० सूत्रस्थं पूर्वपदलोपविधायकमत्र प्रमाणं बोध्यम्। २. "देशी" शब्दः प्रान्तभाषावाचकः। क्षीरस्वामिकृताऽमरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते। साधुत्वमस्य पचादेराकृतिगणत्वात् "देवी" इतिवद् बोध्यम्। वस्तुतस्त्वयं शब्दो दैशिक एव। ३. अवति प्रभां रक्षतीति ऊः। "अव रक्षणे" क्विप्। "ज्वरत्वरे" त्यूठ्। डयते इति डुः। ड्यतेर्डुप्रत्ययः। ऊश्चासौ डुश्चेति कर्मधारयः। नक्षत्राणां रक्षणार्हत्वादाकाशोत्पतनशीलत्वाच्च उडुत्वमुपपन्नम्। "इको ह्रस्वः" इत्यूकारस्य ह्रस्व इति टीकाशयः। ४. अम० को० १।३।२१। ५. क्षीर० भा० १।३।२२। ६. भिदादित्वादङ्। अङि परे गुणः। निपातनाद्दीर्घः। ७. ऋषति गच्छति "ऋषी गतौ" तुदादिः। औणादिकः सप्रत्ययः कित्। षत्वकत्वक्षत्वानि। ऋक्षमिति। ८. का० उ० सू० ३।५। ९. "यच्च शाश्वतः" इत्यारभ्य "स्थितं तारकैः" इत्यन्तः पाठः १।२।२२। क्षीरस्वामिभाष्यस्योऽत्र गृहीतः। १०. का० सू० ४।५।८४। ११. ९६ श्लो० श्लोका०। १२. का० सू० ४।५।८२।

करः ॥४८॥

(निशापर्यायात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति। निशाकरः। क्षणदाकरः। रजनीकरः। नक्तङ्करः। दोषाकरः। श्यामाकरः। क्षपाकरः।

तरणिस्तपनो भानुर्ब्रध्नः पूषाऽर्यमा रविः।
तिग्मः पतङ्गो द्युमणिर्मार्तण्डोऽर्को ग्रहाधिपः ॥४९॥
इनः सूर्यस्तमोध्वान्ततिमिरारिर्विरोचनः।

सप्तदश सूर्ये। तरन्त्यनेनेति **तरणिः**। "ऋतॄ[1]सृधृञ्‌धम्यश्यवितॄतिग्रहिभ्योऽनिः।" तपति त्रिलोकीं **तपनः**। भाति दीप्यते करैः **भानुः**। "[2]दाभारिवृभ्यो नुः" नुः प्रत्ययः। "बन्ध बन्धने" बध्नाति जन्तुदृष्टीर्**ब्रध्नः**। "[3]बन्धेर्ब्रधिश्च"। अस्मान्नक् प्रत्ययो भवति ब्रध्यादेशश्च। इकार उच्चारणार्थः। पुष पुष्टौ। पुष्णाति वर्धते तेजसा **पूषा**। पूषादयः[4]— "पूषन्नर्यमन्मुक्षन्श्वन्प्लीहन्मातरिश्वन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्यूषन्दोषन्" एते कन्यन्ता निपात्यन्ते। इयर्तीति **अर्यमा**। 'ऋ गतौ"। रूयते स्तूयते **रविः**। "इः [5]सर्वधातुभ्यः"। तीतिक्षतीति **तिग्मः**। "युजिरुचितिजां [6]घमक्"। पतति नक्षत्रपथे **पतङ्गः**। "तॄ[7]पतिभ्यामङ्गः"। आभ्यामङ्गः प्रत्ययो भवति। दिवो मणिरिव **द्युमणिः**। मृतण्डस्यापत्यं **मार्तण्डः**। मृतण्डश्च। आकाशमियर्ति **अर्कः**। उणादौ "अर्च पूजायाम्।" अर्च्यते **अर्कः**। "[8]इणभीकापाशल्यचिकृदाधाराभ्यः कः" एभ्यः कः प्रत्ययो भवति। ग्रहाणामधिपः स्वामी **ग्रहाधिपः**। एतीति **इनः**। "[9]इणजिकृषिभ्यो नक्"। सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् **सूर्यः**। "सूर्यरुच्याव्यथ्याः[10] कर्तरि"। सूर्य इति यप्रत्ययान्तो निपातः। तमश्च ध्वान्तं च तिमिरश्च **तमोध्वान्ततिमिराः**,तेषामरिः,— तमोऽरिः, ध्वान्तारिः, तिमिरारिः। विरोचते इत्येवंशीलो **विरोचनः**। [11]"रुचादेश्च व्यञ्जनादेः"। रुचादेर्गणाद् व्यञ्जनादेर्युः भवति। आदित्यः, सविता, सहस्रकिरणः, प्रद्योतनः, भास्करः, तिग्मांशुः, दिनमणिः, भास्वान्, विवस्वान्, हरिः, विकर्तनः, भगः, गोपतिः, दिनकरः, सूरः शूरश्च, अंशुमाली, मिहिरः, तिमिररिपुः, अंशुमान्, अंशुः, हरिदश्वः, सप्ताश्वः, प्रभाकरः, भानुमान्, हंसः, खगः, मित्रः, चित्रभानुः, अहर्पतिः, कर्मसाक्षी, जगच्चक्षुः, द्वादशात्मा, त्रयीतनुः।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः—

पञ्च दिवसे। "दो ऽवखण्डने" द्यति खण्डयति अन्धकारमिति **दिनम्**। "दोनात[12] इ (द्यतेरि) च" द्यते नप्रत्ययो भवत्याकारस्येच। रविर्दी [र्धान् दी] प्यतेऽत्र; आदन्तमव्ययम् **दिवा**। अदन्तं क्लीबम्। दिवं विदन्। न जहाति काल(रवि)महः। "नञि[13] जहातेः" इति क्विप् (कनिः)। दीव्यतीति **दिवसः**[14]। दिवसम्। "[15]वेतसवाहसदिवसफनसाः" एतेऽसप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। वासयत्यत्र **वासरः**[16]। वासोऽपि। उभयम्। "देवि[17]वटिजटिभ्रमिवासिभ्योऽरः" एभ्योऽर् प्रत्ययो भवति। द्युः। घस्रः।

---

१. का० उ० सू० २।४३। २. का० उ० सू० २।७। ३. का० उ० सू० २।५२। दुर्गवृत्तिश्च। ४. का० उ० सू० २।५। ५. का० उ० सू० ३।१४। ६. का० उ० सू० १।५७। ७. का० उ० सू० ५।२२। ८. का० उ० सू० २।५७। ९. का० उ० सू० २।५१। १०. का० सू० ४।२।३०। ११. का० सू० ४।४।३१। १२. का० उ० सू० ६।३७। १३. का० उ०सू० २।४। १४. दीव्यन्ति क्रीडन्ति प्राणिनोऽत्र दिवस इत्यपि। १५. का०उ०सू० ३।११। १६. "वास उपसेवायाम्" वासयति सूर्यालोकं प्राणिनं वा वासरः। विग्रहे "अत्र" इति पदमधिकम्। १७. नैतत्सूत्रम् का०उणादौ लब्धम्। तत्र "कृवाभ्यः सरक्" ३।६२। इति सूत्रम्। वातीति वासरः,वाधातोः सरक् प्रत्यय इत्युक्तम्। तत्रैव चतुर्थपादे ३३ तमपरमपि सूत्रम् "मद्यसिवशिवासिभ्यः सरः" इति वासिधातोः सरप्रत्यय उक्तः। वासयतीति वासरः। कौमुदीस्थमुणादिसूत्रम् "अर्तिकमिचमिभ्रमिदिविवासिभ्यश्चित्" ३।१२७। इति वासिधातोररप्रत्ययः।

तत्करश्च सः ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, अहस्करः, दिवसकरः, वासरकरः, इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायबन्धुः—

चक्रवाकश्च अब्जं च चक्रवाकाब्जे, तयोश्चक्रवाकाब्जयोः (परत्र) **बन्धु** शब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धुः । अब्जबन्धुः । पद्मबन्धुः । कमलबन्धुः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां (परत्र) **विप्रियशब्दे** प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रियः । कुमुदविवल्लभः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनकः । यमजनकः । [1]**कानीनजनकः । सविता । मतः कथितः ।**

वाहोऽश्वस्तुरगो वाजी हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।
सप्तिरर्वा हरी रथ्यः—

एकादशाश्वे । वाह्यते गम्यतेऽश्ववाहैर्वाहः । तथाऽनेकार्थ[2] (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

"वाहो युग्यं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।
वाहो मानविशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥"

"अशू व्याप्तौ ॥ अश् । अश्नुते व्याप्नोति वेगेनाभीष्टस्थानमित्यश्वः । अथवा "अश् भोजने" अश्नाति भक्षयति मुद्गादीनित्यश्वः । "[3]अशिलटिखटिविशिभ्यः क्वः" । वमात्रः । "घोषवत्योश्च[4] कृति" नेट् । [5]उरो (रसा) गच्छतीति **उरगः** । "डोऽ[6]संज्ञायामपि" । पूर्वमश्वानां वाजा अभूवन्निति श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य वजतीत्येवंशीलो वा **वाजी** । इदन्तोऽपि, वाजिः । तथा हैमनाममालायाम्[7]—

"वाजं वाजस्तु पक्षेऽपि मुनौ निःस्वनवेगयोः ।"

हिनोति गच्छति वर्धते (वा) अनेन **हयः** । धुरि सङ्ग्रामे साधुर्**धुर्यः**[8]। "[9]यदुगवादितः" । तुरं (रेण) गच्छति तु (तो) तोर्त्ति त्वरते वा **तुरङ्गमः**[10]। "गमश्च[11]" नाम्न्युपपदे गमेश्च संज्ञायां खो भवति "धात्वादेः[12] षः सः" । सपत्यध्वानं गच्छतीति **सप्तिः** । "[13]सपेस्तिततितनः" सपेर्धातोस्ति तति तन् एते प्रत्यया भवन्ति । अर्वति गच्छति अनेन नान्तः, [14]**अर्वन्** । हरत्यनेन **हरिः** । रथे साधू **रथ्यः**[15]। गन्धर्वः, तार्क्ष्यः, ययुः, घोटकः, अर्दनिः[16], वीतिः, पीतिः ।

---

१. कानीनः कर्णः । कन्याऽवस्थायां कुन्त्याः कर्णादुत्पन्न इति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया । २. ११ श्लो०श्लोका० । ३.का०उ०सू० २।१। ४. का०सू० ४।६।८०। ५. भ्रान्तोऽयं पाठः । उचितस्तु तुरेण वेगेन गच्छतीति तुरगः । ६. का०सू० ४।३।४७। ७. अने०स० २।७८। ८. धुरं वहतीति धुर्यः । 'धुरो यड्ढकौ" इत्यन्यत्र । ९. का०सू०२।६।११। १०.तुरपूर्वकाद्गमेः "गमश्च" इति खे तुरङ्गमः । तोतोर्ति त्वरते वेति विग्रहे तत्सिद्धिप्रकारोऽन्यथा कल्पनीयः । ११. का० सू० ४।३।४५। १२. का० सू० ३।८।२४। १३. का० उ० सू० ५।३८। १४, "अर्व गतौ" बाहुलकात्कनिन् । १५. "रथं वहतीति सुवचः । "तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्" इति यत् । १६. अर्दनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाणं मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्दनिशब्दार्थश्चेत्थम्—"अर्दनी चार्दनिर्पि स्त्रियः स्युः प्रार्थनाऽर्थना" कल्प० को० १।१।२१। अर्वतीशब्दोऽश्विनीपर्यायस्तु सर्वसम्मतः । 'वीति" "पीति" शब्दयोरश्वार्थे प्रमाणमधस्तात् 'वीतिः सप्तिर्दधिकावा वातस्कन्धार्थ इत्यपि' कल्प० को० १।५। १९३। "पीतिः पाने सपूर्वा तु सहपाने हये पुमान्" विश्व० ।

सप्ताद्यश्वो मयूखवान् ॥ ५२ ॥

अश्वशब्दस्य (ब्दात्) पूर्वं यदि **सप्तादि** (सशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति। सप्तवाहः। सप्ताश्वः। सप्ततुरगः। सप्तवाजी। सप्तहयः। सप्तधुर्यः। सप्ततुरङ्गमः। सप्तसप्तिः। सप्तार्वा। सप्तहरिः। सप्तरथ्यः।

खं विहायो वियद् व्योम गगनाकाशमम्बरम्।
द्यौर्नभोऽभ्रोऽन्तरीक्षं च–

एकादश गगने। खनति शून्यत्वेन खन्यते वा [1]**खम्**। विजहाति सर्वं **विहायः**[2]। अवाय विहायसां पक्षिणां मार्गो विहं यच्छतीति **वियत्**। (अथवा वीनां पक्षिणां मार्गं यच्छति वियत्)। अमरेन्द्रभाष्ये— **"वियच्छति[3] विरमति वियत्।"** वायुना वीयते (व्ययति व्यय्यते वा) **व्योमन्**। "स्विव्यवि[4]मविज्वरित्वरामुपधायाः" एषामुपधाया वकारस्य चोट् भवति। "सर्वधातुभ्यो मन्[5]" (इति विपूर्वकाद्वेर्मन्)। गम्यते सर्वमनेन **गगनम्**[6]। क्लीबे वा। गच्छत्यनेन गगनं वा। आकाशन्ते सूर्यादयोऽत्राकाशम्। न काशते वा छान्दसो दीर्घः। अम्बते शब्दायते **अम्बरम्**। दीव्यन्ति पक्षिणोऽत्र **द्यौः**। स्त्रियाम्। नह्यति बध्नाति सर्वमात्मना सान्तम् **नभः**। नभम् इत्यदन्तम् नभसं च। न भ्राजतेऽभ्रम्। अन्तः ऋक्षाण्यत्र **अन्तरीक्षम्**। पृषोदरादित्वम्। द्यावाभूम्योरन्तरीक्ष्यते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च। मरुद्वर्त्मन्। तारापथः। पुष्करम्। विष्णुपदम्। त्रिदिवम्। नाकम्। अनन्तम्। सुरवर्त्म। महाव[7] (वि) लम्। देश्याम्।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

मेघशब्दाग्रे वायुशब्दाग्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति। मेघपथः। मेघमार्गः। घनपथः। घनमार्गः। पर्जन्यपथः। पर्जन्यमार्गः। मिहिरपथः। मिहिरमार्गः। नभ्राट्पथः। नभ्राण्मार्गः। तडित्पतिपथः। तडित्पतिमार्गः। सौदामिनीपतिपथः। सौदामिनीपतिमार्गः। वायुपथः। वायुमार्गः। वातपथः। वातमार्गः। अनिलपथः। अनिलमार्गः। मरुत्पथः। मरुन्मार्गः। समीरणपथः। समीरणमार्गः। गन्धवाहपथः। गन्धवाहमार्गः। श्वसनपथः। श्वसनमार्गः। सदागतिपथः। सदागतिमार्गः।

तच्चरः खेचरः–

तत्र आकाशे चरतीति **तच्चरः**। आकाशाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति। खचरः। विहायश्चरः। वियच्चरः। व्योमचरः। नभश्चरः। गगनचरः। अम्बरचरः। आकाशचरः। अन्तरिक्षचरः। मेघपथचरः। मेघमार्गचरः। वायुपथचरः। वायुमार्गचरः। घनपथचरः। घनमार्गचरः। घनाघनपथचरः। घनाघनमार्गचरः। जीमूतपथचरः। जीमूतमार्गचरः। अभ्रपथचरः। अभ्रमार्गचरः। बलाहकपथचरः। बलाहकमार्गचरः। पर्जन्यपथचरः। पर्जन्यमार्गचरः। इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि।

तद्गः,

तत्र गगने गच्छतीति **तद्गः**। गगनाग्रे "ग" शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति। खगः। विहायोगः। वियद्गः। व्योमगः। नभोगः। गगनगः। द्योगः। आकाशगः। अन्तरिक्षगः।

---

१. "खनु अवदारणे" डप्रत्ययः। "खर्व गतौ" खर्वत्यस्मिन्निति वा विग्रहः। अत्रापि डः। २. उक्तविग्रहे "ओहाक् त्यागे" हाधातोः "वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि" ४।२२। इत्यसुन् णित्वं च। णित्वाद्युक्। विशेषेण हाययति गमयति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम्। "हय गतौ" ण्यन्तादसुन्। ३. क्षीर०भा० १।२।२। ४. का० सू० ४।१।५७। ५. का० उ० सू० ४।२८। ६. "गमेर्गश्च" इति युच् गश्चान्तादेशः। ७. महाविलशब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोपमधस्तात्प्रमाणम्—"तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाध्वा च महाविलम्" १।२।२। क्षेपक।

मेघपथगः । मेघमार्गगः । इत्यादिनि ज्ञातव्यानि ।

पक्षी पत्री पतत्र्यपि ।

शकुन्तिः शकुनिर्विश्च पतङ्गो विष्किरोऽन्यथा ॥५४॥

सप्त पतङ्गे । पक्षाः सन्त्यस्य **पक्षी** । पत्राणि सन्त्यस्य **पत्री** । नान्तः । पततीति पत्रिः । त्रिप्रत्यये इदन्तः । पतत्राणि सन्त्यस्य **पतत्री** । नान्तः । पततीति पतेः परतोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रिः । हलायुध-भाष्यकारेण डाल्हणिकेन—पत्रिशब्दः पत्रिन् नकारान्तः पत्रिरिकारान्तश्च व्याख्यातः । अमरसिंह-[1] नाममालायाम्—

"पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजाः ।
नगौकोवाजिविकिरविविष्करपतत्रयः ॥"

इकारान्तः पत्रिशब्दः पठितोऽस्ति । भाष्यकर्त्रा क्षीरस्वामिना पतत्रिरिकारान्तो निषिद्धः । "पतेरत्रिरिति" भ्रान्त्या पतत्रिं ग्रन्थकृदिदन्तं [2]मन्यते । एवं कथितमस्ति श्रीमदमरकीर्त्तिना द्वयोर्वचनं प्रमाणम् । शब्दानां वैचित्र्यं वर्त्तते । नभसा गन्तुं शक्नोति शकुन्तः । **शकुन्तिः** । एवं **शकुनिः** । एवं शकुनी । शकुन्तः । शकुनः । द्वौ अदन्तौ । वयतीति विः । "वेञो डिः[3]" । पतेन वेगेन गच्छतीति **पतङ्गः**[4]। विकिरति पत्राणि **विष्किरः** ।

"[5]वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

सुडागमः । विकिरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांसं पलं पेशी च–

पञ्च मांसे । गल्यते अद्यते **जाङ्गलं** जङ्गलं च । पिश्यते रुधिरादिभिः पूर्यते **पिशितम्**[6] । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति **मांसम्** । "वृतॄ[7]वदिहनिमनिकस्यशिकषिभ्यः सः" । एभ्यः सः प्रत्ययो भवति । पलयते (पालयते) देहं **पलम्** । रुधिरादिभिः पिश्यते (पिंशति) शरीरम् **पेशी** । आमिषम् । रुच्यम् । तरसम् ।

तत्प्रियः ।

तस्य मांसस्य **प्रियः** । आमिषशब्दाग्रे प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । जाङ्गल-प्रियः । पिशितप्रियः । मांसप्रियः । पलप्रियः । पेशीप्रियः ।

यातुधानस्तथा रक्षो—

द्वौ यातुधाने । यातूनि यातना धीयन्तेऽस्मिन् **यातुधानः** । रक्षतीति **रक्षः**[8] । राक्षसः । कौणपः । क्रव्यादः । नैरृतः । नैकसेयः । नैकषेयश्च । विपुसेऽपि (कर्बुरः । अस्रपः) । कीनाशो नानार्थे ।

रात्र्यादिचर इष्यते ॥ ५५ ॥

---

१. अम० को० २।५।३४। २. क्षीर० भा० २।५।३४। ३. का० उ० सू० ४।७। रामाश्रमस्तु वातीति विः । "वातेर्डिच्च" इत्याह । ४. पतेन वेगेन गच्छतीति विग्रहे तत्साधुत्वं कल्पनीयम् । तादृशसूत्राऽनुपलम्भात् । पतत्युड्डयते इति पतङ्गः । "तृपतिभ्यामङ्गः" का० उ० सू० ५।२२। इत्यङ्गप्रत्ययस्तु युक्तः । "तृपतिभ्यामङ्गः"इत्यङ्गप्रत्ययः । ५. "पृषोदरादयः" २।२।१७२। शा० कारिका । ६. "पिश अवयवे" पिंशति पिश्यते स्म वा पिशितम् । "पिशेः किच्च" उ०सू० ३।६५। इतीतन् । अथवा क्तः । इति रामाश्रमः । ७. का० उ० सू०४।५३ । ८. रक्षन्त्यस्मादिति रक्षः । "सर्वधातुभ्योऽसुन्" । "भीमादयोऽपादाने" इत्यन्यत्र ।

रात्रिशब्दाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति। रात्रिचरः। निशाचरः। क्षणदाचरः। रजनीचरः। नक्तञ्चरः। दोषाचरः। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

आरभ्यते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्—

अदितिशब्दाग्रे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति। अदितिसुतः। अदितितनयः। अदितिपोतः। अदितिदारकः। अदितिनन्दनः। अदित्यर्भकः। अदितिस्तनन्धयः। अदित्युत्तानशयः।

तडिद्धन्वा सेन्द्रो देवः सुरोऽमरः।

पञ्च देवे। सह इन्द्रेण वर्त्तते इति सेन्द्रः। "दिवु क्री०"—। दिव्। दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्गेऽप्सरोभिः सह विलसन्ति देवाः। अचा सिद्धम्। अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे देवः। सुष्ठु राजते सुरः। तथा सुरन्ति सुराः।"सुर ऐश्वर्ये"सुरा एषामस्तीति वा। "अर्शआदिभ्योऽ[1]च्"। यतोऽब्धिजा सुरा तैः पीता। न म्रियते अमरः। आदित्याः। त्रिदशाः। सुमनसः। स्वर्गौकसः। देवताः। गीर्वाणाः। ऋभवः। मरुतः। वृन्दारकाः। निर्जराः। अस्वप्नाः। विबुधाः। त्रिविष्टपसदः। लेखाः। सुपर्वाणः। अमृताशनाः। अनिमिषाः। दैवतम्।

स्वर्द्यौः स्वर्गोऽथ नाकश्च,

चत्वारः स्वर्गे। मुदितो जनः स्वरति शब्दं करोत्यत्र रान्तमव्ययम्। स्वर्। "दिवु क्रीडादिषु"। दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्तः इति द्यौः। "दिवेर्डिविः[2]" प्रत्ययो भवति। असौ सुष्ठु अर्ज्यते स्वर्गः। "स्वृ[3] भृभ्यां गः" गप्रत्ययः। नास्त्यकं दुःखमत्र नाकः। उभयम्।

तद्वासस्त्रिदशो मतः ॥ ५६ ॥

तस्य स्वर्गस्य वासः,तद्[4]वासः—स्वर्गवासः। द्योवासः,स्वर्गवासः,इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति।

तत्पतिः

तस्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पतिः, तत्पतिः। देवपतिः, सेन्द्रपतिः, स्वर्गवासपतिः, स्वर्गपतिः, नाकपतिः, नाकेन्द्रः, इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य ज्ञेयानि।

शक्र इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतुः।
प्राचीनबर्हिः सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥
शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि।
वृत्रहा च सहस्राक्षो गीर्वाणेशः पुरन्दरः ॥ ५८ ॥
विडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहनः।
मरुतश्च मरुत्वाँश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५९ ॥
शतमन्युस्तुराषाट् च पुरुहूतश्च कौशिकः।
संक्रन्दनोऽथ मघवान् पुलोमारिर्मरुत्सखः ॥ ६० ॥

त्रयस्त्रिंशदिन्द्रे। पातुं शक्नोतीति शक्रः। "[5]स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिरुदिमदिचन्द्यु-

---

१. "अर्श आदेरः" जै० सू० ४।११।५०। २. का० उ० सू० ६।५३। ३. का० उ० सू० ५।६०। ४. तस्मिन् स्वर्गे वसतीति तद्वासः। णप्रत्ययः। स्वर्गपर्यायार्थात् परत्र वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनामानि भवन्तीत्यर्थः। ५. का० उ० सू० २।१४।

न्दीन्दिभ्यो रक्" । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवति **इन्द्रः** । रक् । शुन आदित्यः शीरो वायुस्तयोरपत्यमणो लुक्यभेदाद्वा, दीर्घे **शुनाशीरः** । तालव्यद्वयम् । शोभनं नासीरं कटकं वा यस्य स सुनासीरः । द्वौ दन्त्यौ । शु अव्ययं तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नासीरा अग्रेसरा अस्य, शुनासीरः । शुः पूजायाम्, श्वशुरवत्[1] । शुनासीरयोरपत्यमित्येके । शतं क्रतवो यज्ञा यस्य **शतक्रतुः** । प्राचीना प्राचीनमुखा बर्हिषी दर्भा यस्य सः । सुष्ठु त्रायते नान्तः **सुत्रामा** । वज्रं विद्यते यस्य स वज्री। आखण्डयति भिनत्त्यरी**नाखण्डलः** । ह्रियते शचीकटाक्षै**र्हरिः** ।

"शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि"–

बलशत्रुर्गोत्रशत्रुः पाकशत्रुर्नमुचिशत्रुः, इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । वृत्रं दानवं यज्ञं वा हतवान् **वृत्रहा** । क्विप् । "([2]क्विब्)ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु" क्विप् सहस्रमक्षीणि यस्य स **सहस्राक्षः** । गीर्वाणानां देवाना मीशः(गीर्वाणेशः) । विट्सु प्रजासु ओजो यस्य । पृषोदरादित्वाद् वृद्धिः । विड भेदने वा । विडं भेदकमोजो यस्य वा(विडौजाः[3])। अप्सरसां नाथोऽ**प्सरोनाथः** । वस्वपत्यं **वासवः** । हरिर्वाहनं[4] यस्य **हरिवाहनः** । पुण्यक्षये म्रियते च्यवते मरुत् । तान्तम् । मरुतो देवाः सन्त्यस्य **मरुत्वान्**[5] । वर्षति, नान्तम्,वृषा । ऐरावणानामधिपः (ऐरावणाधिपः) । शतं मन्यवः क्रतवोऽस्य **शतमन्युः** । "षह मर्षणे" । । षह् । "धात्वादेः[6] षः सः" । सहते कश्चित्तमपरः प्रयुङ्क्ते "धातोश्च[7] हेतौ" इन् । अस्योप० दीर्घः । साहि जाते । तुरपूर्वकः । तुरं त्वरितं साहयत्यभिभवत्यरीनिति तुराषाट् । "सहश्छन्दसि[8]" विण् । "कारितस्या०[9]" कारितलोपः । वेर्लोपः[10]। "नहि[11]वृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" क्विबन्तेषु प्राद्यकाराणां दीर्घः । तुरा जातम् । तुरासाह् निष्पन्नः । सिः । "व्यञ्जनान्ताच्च[12]"सिलोपः । "हशष[13]च्छान्तेजादीनां डः" हस्य डः । "सहेः साडः षः[14]" सस्य षत्वम् । रपरत्वात्परपदेऽपि सस्य षत्वम् । स्वमते अपिशब्दबलात् । अथवा तुरं वेगं सहते **तुराषाट्** । "सह[15]श्छन्दसि" विण् पूर्ववत् । पुरु प्रभूतं हूतं यज्ञे यज्ञेष्वा (ह्वे आ) ह्वानं यस्य **पुरुहूतः** । जातमात्रोऽदित्या कुशैराच्छादितत्वात् (कौशिकः) । तथा पुराणम्[16]—

"जातमात्रोऽथ भगवानदित्या स कुशैर्वृतः ।
तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥"

कुशैर्दर्भैश्चरति वा । अरिस्त्रीः सङ्क्रन्दयति **सङ्क्रन्दनः** । मङ्घ्यते पूज्यते नान्तो **मघवा** । "मङ्घे[17]र्नलुगवन्तश्च" मङ्घेः कनिः प्रत्ययो भवति, नलुगवन्तश्च । पुलोमस्या (म्नोऽ) रिः **पुलोमारिः** । मरुतां पवनानां सखा मित्रः (त्रं) **मरुत्सखः** । दुश्च्यवनः । वृत्रारिः । बलसूदनः । वृद्धश्रवाः । जिष्णुः । वज्रधरः । वास्तोष्पतिः । गोपतिः । पर्जन्यः । हरिहयः । पूर्वदिक्पतिः । स्वराट् । गोत्रभिद् । अग्रधन्वा । हरिमान् । पाकशासनः । दिवस्पतिः ।

---

१. शु पूजायाम् अश्नुते व्याप्नोति 'श्वशुरः' इति व्युत्पत्त्या "श्वशुर" शब्दो निष्पन्नः । तद्वच्छुनासीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थ इत्याशयः । २. का० सू० ४।३।८३। ३. वेवेष्टि व्याप्नोति विट् । "विष्लृ व्याप्तौ" क्विप् । विड् व्यापकमोजो यस्य स विडौजाः । पृषोदरादित्वादोकारस्यौकारः । इत्यप्यूह्यम् । ४. त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु । हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयसप्रभः । इति शालिहोत्रोक्तप्रकारोऽश्वो हरिः । ५. मरुतो देवाः शास्यत्वेन सन्त्यस्येति यावत् । ६. का० सू० ३।८।२४। ७. का० सू० ३।२।१०। ८. का० सू० ४।३।६०। ९. का० सू० ३।६।४४। १०. "वेरपृक्तस्य" पा० सू० ६।१।६७ । ११. पा०सू० ६।३।११६। १२. का० सू० २।१।४९। १३. का० सू० २।३।४६। १४. पा० सू० ८।३।५६। १५. का० सू० ४।३।६०। १६. श्लोकोऽयम् अभि० चि० २।८७। टीकायामप्येवमेवोपलभ्यते । १७. का० उ० सू० ५।४ ।

काष्ठा ककुब् दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरित् ।

षड् दिशायाम् । काशन्ते राजन्ते (नक्षत्रादयोऽत्र) **काष्ठा**[१] । कं स्कुम्नाति विस्तारयति **ककुप्**[२] । भान्तम् । दिशत्यवकाशं **दिक्** । "[३]ऋत्विग्दधृक् स्रग्दिगुष्णिहश्च' इति साधुः । आश्नुते **आशा** । दक्षः प्रजापतिः, तस्य कन्या, **दक्षकन्या** । हरत्यनया **हरित्**[४] ।

तत्पर्यायपरं योज्यं प्राज्ञैः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः **परं योज्यं प्राज्ञैः** विद्वद्भिः **पालगजाम्बरम्** । काष्ठापालः । ककुप्पालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । हरित्पालः । पालप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठागजः । ककुब्गजः । दिग्गजः । आशागजः । दक्षकन्यागजः । हरिद्गजः । अम्बरशब्दप्रयोगे दिगम्बरनामानि भवन्ति । काष्ठाऽम्बरः । ककुबम्बरः । दिगम्बरः । आशाऽम्बरः । दक्षकन्याम्बरः । हरिदम्बरः । तथा च—

"गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥"

एवंविधा मुनयो भव्यानां शरणं भवन्तु जन्मनि जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।
समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥
नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।
प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वायौ । पवते जगत् पवित्रीकरोति **पवनः** । युच् । "पूङ् पवने ।" पू । पवते **पवमानः** । "[५]पूङ्यजोः शानङ्" आनमात्रः । अन्वि०[६] अनिच०[७] नाम्यन्तगुणः । "ओ[८]अव् ।" "आन्मो[९]ऽन्त आने" मोऽन्तः । वातीति **वायुः** । "[१०]कृवापाजी"—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्खलितं वा वायुः । वाति अस्खलितं याति, **वातः** । "[११]मृगृवाहस्यमिदमिलूपूभ्यस्तः" । अनेन जगत् अनिति प्राणिति, न निलति वा **अनिलः** । "निल गहने" । क्षुद्रजन्तवो म्रियन्ते स्पर्शेनास्य **मरुत्** । तान्तम् । "[१२]मृग्रोरुतिः" उतिप्रत्ययः । समन्तादीरयति **समीरणः** । गन्धं वहति गन्धवहः । **गन्धवाहः** । गन्धवाही । श्वसन्त्यनेन श्वसनः । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स **सदागतिः** । नभ आकाशमस्यास्तीति **नभस्वान्** । मातरि रेतः श्वयति वर्द्धते नान्तो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवति [१३]**मातरिश्वा** । चराचरं याति चरे-

---

१. "काशृ दीप्तौ" "हनिकुशि" इत्यादि २।२। पा०उ० सूत्रेण क्थन् । २. कं वातं स्कुम्नाति विस्तारयति । क्विप् । पृषोदरादित्वात्सलोपः । केनादित्येन जलेन वा कुत्सितानि भानि नक्षत्राणि यस्यामिति "ककुभा" इत्याबन्तोऽपीति केचित् । ३. का०सू०४।३।७३। ४. हरन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग्ज्ञानेनैव कश्चित् कुतश्चित् कुत्रचिन्नयति । "दृसृरुहियुषिभ्य इतिः" इतीतिः । ५. का०सू० ४।४।८। ६. "अन्विकरणः कर्त्तरि" इति पूर्णं सूत्रम् । का० सू० ३।२।३२। इत्यन्विकरणः । ७. "अनि च विकरणे" का० सू० ३।५।३। ८. का० सू० १।२।१४। ९. का० सू० ४।४।७। १०. का० उ०सू० १।१। ११. का०उ० सू० ४।२७। १२. का०उ०सू० १।३०। १३. मातरि जनन्यां रेतः प्रसिक्तं यथा वर्धते, तथाऽन्तरीक्षे वर्धमानो वायुः 'मातरिश्वा" इत्याशयः । क्षीरस्वामी तु—"मातरि खे श्वयति" इत्याह । रामाश्रमस्तु—"मातरि जनन्यां श्वयति वर्धते सप्तसप्तकरूपत्वात्" इत्याह । आपन्नसत्त्वाया दितेर्निद्राऽवस्थायां तत्कुक्षिप्रविष्टेनेन्द्रेण कुलिशद्वारा तद्गर्भस्यैवोनपञ्चाशच्छकलीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्सप्तसप्तकत्वमुपपन्नम् । "टु ओश्वि गतिवृद्ध्योः ।" श्विधातोः "श्वन्नुक्षन्नि" ति कनिन्नन्तो निपातः सप्तम्या अलुक् च ।

[1]रण्युः । "केवयुभुरण्ववध्वयवादयः" केवय्वादयः शब्दा डुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये[2]—

"असूययाऽगम्य निशाम्य यां पुरो
विलज्जया ऽम्भःपरिणामिनीदशाम् ।
गता इवाभान्ति कुलाद्रिपेशला-
श्चरण्युलोलाः परिखा ऽम्बुवीचयः ॥"

"जु" इति सौत्रो धातुर्गतौ । सौत्रा धातवोऽपि भ्वादौ पठ्यन्ते । जवतीति **जवनः** । "[3]जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचपतपदाम्" एभ्यो युर्भवति । सर्वा दिशाः प्रभनक्ति **प्रभञ्जनः** । जगत्प्राणः । पृषदश्वः । स्पर्शनः । समीरः । हरिः । महाबलः । आशुगः ।

अस्य पर्यायपुत्रौ भीमाञ्जनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्य्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परत्र पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । पवनपुत्रः । पवनतनयः । पवमानतनयः । वायुपुत्रः । वायुतनयः । वातपुत्रः । वाततनयः । अनिलपुत्रः । अनिलतनयः । समीरणपुत्रः । समीरणतनयः । गन्धवाहपुत्रः । गन्धवाहतनयः । श्वसनपुत्रः । श्वसनतनयः । सदागतिपुत्रः । सदागतितनयः । नभस्वत्पुत्रः । नभस्वत्तनयः । मातरिश्वपुत्रः । मातरिश्वतनयः । चरण्युपुत्रः । चरण्युतनयः । जवनपुत्रः । जवनतनयः । चलपुत्रः । चलतनयः । प्रभञ्जनपुत्रः । प्रभञ्जनतनयः । भीमस्य हनुमतश्च नामानि ज्ञातव्यानि ।

तत्सखाऽग्निः,

तस्य वायोः सखा, **तत्सखः** । वायुशब्दाग्रे सखशब्दे प्रयुज्यमाने अग्निनामानि भवन्ति । पवनसखः । वायुसखः । अनिलसखः । वातसखः । मरुत्सखः । गन्धवाहसखः । समीरणसखः । श्वसनसखः । सदागतिसखः । नभस्वत्सखः । मातरिश्वसखः । चरण्युसखः । जवनसखः । चलसखः । प्रभञ्जनसखः । पवनेष्टः । पवमानेष्टः । इत्यादीनि अग्नेर्नामानि ज्ञातव्यानि ।

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुक्षणिः ।
हिरण्यरेता सप्तार्चिर्जातवेदास्तनूनपात् ॥ ६४ ॥
स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।
वैश्वानरः कृशानुश्च रोहिताश्वो विभावसुः ॥ ६५ ॥
वृषाकपिः समीगर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

एकविंशतिरग्नौ । "अक अग कुटिलायां गतौ ।" अगति वायुवशादूर्ध्वं गच्छतीत्यग्निः । शिखाऽस्त्यस्य **शिखी** । उह्यते **वह्निः**[4] । "[5]अगिश्रुश्रियुवहिभ्यो निः" एभ्यो धातुभ्यो निः प्रत्ययो भवति । पुनाति **पावकः** । आशु शोषयति रसान् [6]**आशुशुक्षणिः** । "[7]आशौ शुपेः सनिक्" । "शुप

---

१. चरण्युशब्दोऽयम्; न तु चरेण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एतत्साधकमुणादिसूत्रम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (३।४८३) उपलभ्यते; नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकोऽयं प्रयोगः । "चरण् वरण् गतौ" कण्ड्वादौ चरण् धातुर्यक् प्रत्ययान्तः । ततः "क्याच्छन्दसि" पा०सू० ३।२।७० । इत्युप्रत्ययः । सुम्नयु, तुरण्यु, भुरण्य, सपर्यु, आदिशब्दवदस्य सिद्धिः । विशेपस्तु "क्याच्छन्दसि" इत्यस्य तत्त्वबोधिन्यां द्रष्टव्यः । चरण्यतीति चरण्युः । २. स० १ श्लो० १९ । ३. का० सू० ४।४।३२ । ४. वहति हव्यं वह्निरिति व्युत्पत्तिरन्यत्र । ५. का० उ० सू० ३।५० । ६. आशोष्टुमिच्छतीति आङ्पूर्वकाच्छुपेः सन्नन्तात् "आङि शुपेः सनश्छन्दसि" पा०उ०सू० २।१०६ । अनिः । आशु शीघ्रम्, आशुं व्रीहिं वा शु सुष्ठु क्षणोतीति वा । "सर्वधातुभ्य इन्" इत्यन्यत्र । ७. का० उ० सू० ५।१५ ।

शोपे।" अन्तर्भूतकारितार्थोऽयम्। आशुपूर्वः। आशावुपपदे शुपेः सनिक् प्रत्ययो भवति। हिरण्यं रेतोऽस्य स **हिरण्यरेताः**। यत् स्मृतिः[1]—"अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्"। सप्तार्चिषो यस्य स **सप्तार्चिः**। भवन्ति "हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, प्रसुप्तभावाऽन्या। अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त सप्तार्चिषो जिह्वाः।" जाते जाते विद्यते शान्तो जातवेदस्। जाता वेदा अस्माद् वा **जातवेदाः**[2]। तनूं न पातयति [3]**तनूनपात्**। अपि तान्तो दान्तो वा। "स्वाहा" इत्यस्य (स्वाः) पतिः भर्त्ता **स्वाहापतिः**। हुतं वषट्कारकृतं वस्तु अश्नातीति **हुताशः**। हुतम् आशो भोजनं यस्य वा। ज्वलतीत्येवंशीलो **ज्वलनः**। दहतीत्येवंशीलो **दहनः**। अनिति प्राणित्यनेन **अनलः**। विश्वानरस्यापत्यं **वैश्वानरः**। कृशयति तनूकरोति [4]**कृशानुः**। रोहिताऽख्यो मृगोऽश्वो वाहनमस्य **रोहिताश्वः**। विभा वसुर्धनं यस्य स **विभावसुः**। वृषो धर्मः कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च तद्रूपात् **वृषाकपिः**। [5]पुराणम्—

"कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः॥"

हैमीनाममालायाम्[6]—

"वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽग्नौ च।"

शम्यां गर्भो यस्य स **शमीगर्भः**। हव्यं वहतीति **हव्यवाट्**। हुतमश्नातीति **हुताशनः**। बहुलः। वसुः। सितेतरगतिः। अर्चिष्मान्। धूमध्वजः। वह्निर्ज्योतिः। उषर्बुधः। चित्रभानुः। शुचिः। कृपीटयोनिः। दमुना। कृष्णवर्त्मा। अपांपित्तम्। वीतहोत्रः। बृहद्भानुः। आश्रयाशः। धनञ्जयः। तमोघ्नः। दमूना इत्येके। दमेरूनसि।

तदादिसूनुः,

अग्निसूनुः। वह्निपुत्रः। वृषाकपिसूनुः। वृषाकपिपुत्रः। इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति।

सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः॥ ६६॥
कार्त्तिकेयो विशाखश्च कुमारः षण्मुखो गुहः।
शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शरवणोद्भवः॥ ६७॥

द्वादश स्कन्दे। सेनां नयतीति **सेनानीः**। "सत्सू[7]द्विषद्रुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि" एषामुपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽपि नाम्न्यनाम्न्युपपदे क्विब् भवति। स्कन्दत्यरीन् **स्कन्दः**। स्कन्नं[8] शुष्कं रेतोऽस्य वा। शिखी मयूरो वाहनमस्य **शिखिवाहनः**। कृत्तिकानामपत्यं **कार्तिकेयः**। दानवबलौजस्तेजांसि श्यति विशेषेण तनूकरोति **विशाखः**[9]। विशाखासुतो वा। **कुमारो** ब्रह्मचारित्वात्।

---

१. अम. को० क्षीर० भा० १।१।५५। २. सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानत्वाद् वेदोत्पत्तिकारणत्वेन चाग्नेरुक्तत्वाच्च। जातं वेदो धनं (सुवर्णं) यस्मात्, जातं वेत्ति वेदयते वा इति व्युत्पत्तिरपि। ३. तनूं स्वस्वरूपं न पातयति दहतीत्यर्थः। क्विप्। "नभ्राण्नपात्" इति नलोपाभावः। तनूं न पाति रक्षति जाते जाते विनष्टत्वादिति वा। पातेः शतृप्रत्ययः। तन्वा ऊनं पाति रक्षतीति तनूनपं घृतं तदत्तीति। "आदोऽनन्ने" इति विट्। इत्यप्यूह्यम्। ४. कृशोऽप्यनिति वर्धते कृशानुरिति वा। ५. श्लोकोऽयम्, अभि० चि० २।१२९। टीकायामेवोपलभ्यते। ६. अनेका० सं० ४।२१८। ७. का० सू० ४।३।७४। ८. स्कन्नं रेतोऽस्येत्यर्थाभिप्रायेण। विग्रहस्तु स्कन्दति शुष्करेता भवतीति स्कन्द इत्येवंरूपः। ब्रह्मचारिणां शुष्करेतस्त्वमागमात्सिद्धम्। पचाद्यच्। ९. विपूर्वात् "शो तनूकरणे" इत्यस्माद् बाहुलकात्खप्रत्ययः, विशाखानक्षत्रे जातो वा। विशाखयति विशेषेण व्याप्नोति दानवबलमिति वा। "शाखृ व्याप्तौ।" पचाद्यच्।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः[1] । षण्मुखानि यस्य स षण्मुखः । गूहति रक्षति देवसैन्यं गुहः । "[2]नाम्युपधप्रीकृगृज्ञां कः ।" शक्तिर्विद्यतेऽस्य शक्तिमान् । क्रौञ्चं पर्वतं भिनत्तीति क्रौञ्चभेदी । स्वमस्त्यस्य स्वामी[3] । शराणां वनम्, शरवणम्, तस्मिन्नुद्भवः शरवणोद्भवः । गौरीपुत्रः । शक्तिपाणिः । तारकारिः । अग्निभूः । बाहुलेयः । गाङ्गेयः । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजाः । पार्वतीनन्दनः ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।
त्र्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिपः ॥ ६८ ॥
त्रिपुरारिर्विशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।
रुद्रेन्दुमौलिर्यज्ञारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥
उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्द्यपि ॥ ७० ॥

एकोनत्रिंशदीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुखं करोतीति शङ्करः । शम्भवती (त्यस्मादि) ति [4]शम्भुः । "भुवो[5]डुर्विशम्प्रेषु च ।" शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः[6] । जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठति स्थाणुः । महाँश्चासौ ईश्वरः महेश्वर । त्रीण्यम्बकानि अक्षीण्यस्य त्र्यम्बकः । त्रयाणां लोकानाम् अम्बकः पितेत्यागमः । धूर्भारभूता जटयो जटा यस्य, धूर्गङ्गा जटिषु यस्य वा धूर्जटिः । शृणाति दैत्यान् शर्वः । "[7]शर्वजिह्वाग्रीवा" एते क्वप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथाया [8]अधिपः, प्रमथाधिपः । त्रिपुरासुरस्यारिस्त्रिपुरारिः । विशाले विस्तीर्णे अक्षिणी यस्य विशालाक्षः । "[9]सक्थ्यक्ष्णी स्वाङ्गे ।" गिरीणामीशो गिरीशः । कालकूटभक्षणान्नीलं कृष्णं लोहितं यस्य स नीललोहितः[10] । "नीलः[11] कण्ठे लोहितश्च केशे इति नीललोहितः" इति पुराणम् । रोदयत्यरित्री रुद्रः । "स्फायितञ्चिवञ्चि-[12]शकिक्षिपिक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्युन्दीन्दिभ्यो रक् ।" इन्दुर्मौलिर्मुकुटं यस्य (सः) इन्दुमौलिः[13] । यज्ञानां पशुकारणलक्षणानाम् अरिः, यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवर्दो ध्वजायां यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्जति उग्र[14]: । शूलमस्त्यस्य शूली । कपालं मनुष्यकरोटिरस्त्यस्य कपाली । शिवः पिष्टो हतो अस्थिरूपो (विष्टे) मूर्ध्नि यस्य स शिपिविष्टः[15] । भवतीति भव[16]: । हरत्यघं हरः ।

---

१. "कुमार क्रीडायाम् ।" कुमारयतीति पचाद्यच् । कौ पृथिव्यां मारयति दुष्टानिति वा विग्रहो बोध्यः । २. का० उ० सू० ६।६८ । इतीन्प्रत्ययः । ३. स्वशब्दादामिन् प्रत्ययः । "स्वामिन्नैश्वर्ये" पा० सू० ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । "सावमेरिन् दीर्घश्च" का० उ० सू० ६।६८ इतीन् प्रत्ययः । ४. शम्भवति भावयतीत्यर्थो वा । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भवतिः । ५. का० सू० ४।४।५६। ६. उक्तविग्रहे शेतेर्बाहुलकाड्ड्विप्रत्ययः । शिवं करोतीति शिवयति, ततः पचाद्यचि शिवो वा । शिवमस्यास्त्यस्मिन्वेत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७. का० उ० सू० २।२। ८. प्रमथाया दुर्गायाः। परन्तु "प्रमथाः स्युः पारिषदाः" इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवपर्यायत्वेन प्रसिद्धेः, दुर्गात्वेनाप्रसिद्धेः प्रमथानामधिपः इति सुवचम् । ९. "राजादीनामदन्तता" का० सू० २।६।४१। वृत्तिः ५०। १०. नीलं कण्ठे लोहितं जटाया-मङ्गं यस्येति विग्रहार्थः । तदुक्तम्—"नीलं येन ममाङ्गन्तु रक्तं लोहितं त्विषा । नीललोहित इत्येव ततोऽहं परिकीर्तितः ॥ इति स्कान्दे" इति मुकुटः । ११. अम०को०क्षीर०भा० १।१।३३। १२. का० उ०सू० २।१४। १३. इन्दुर्मौलौ यस्येति विग्रहः सरलः । १४. उच्यति क्रुधा समवैति उग्रः । 'उच् समवाये' उच् धातुः । ततो रक् । गश्चान्तादेशः । ऋज्रेन्द्रादि उ० सू० । १५. शिवपिष्टशब्दयोरायक्षरोपादानेन शिपिशब्दोऽ । १६. भव्याय भवति कल्पते इत्यर्थः ।

उमायाः पतिः **उमापतिः**। विरूपाण्यक्षीण्यस्य **विरूपाक्षः**। विश्वेषु रूपं यस्य स **विश्वरूपः**। कपर्दोऽस्त्यस्य **कपर्दी**। कपर्दो जटाजूटः। कं शिरः पिपर्तीति कपर्दः। औणादिको दः। अपिशब्दात्–ईशानः। शशिशेखरः। पशुपतिः। शम्भुः। गिरिशः। श्रीकण्ठः। सर्वज्ञः। त्रिपुरान्तकः। भूतेशः। परमेश्वरः। अन्धकरिपुः। दक्षाध्वरध्वंसकः। स्रष्टा। वामदेवः। कामध्वंसी। व्योमकेशः। वह्निरेताः। भीमः। भर्गः। कृत्तिवासाः। वृषाङ्कः।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता।
मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गायाम्। भगीरथेन राज्ञाऽवतारितत्वात्तस्यापत्यं वा **भागीरथी**। त्रिभिः पथिभिर्गच्छति **त्रिपथगा**[1]। त्रिमार्गगा च। जह्नुना पीता श्रोत्रेण त्यक्ता **जाह्नवी**। जह्नोरपत्यं वा जाह्नवी। हिमवतो हिमाचलस्य सुता **हिमवत्सुता**। मन्दाका मन्दा गतिरस्त्यस्या [2]**मन्दाकिनी**। सुरसरित्। विष्णुपदी। सरिद्वरा। त्रिदशदीर्घिका। त्रिस्रोताः। भीष्मसूः। सुरनिम्नगा।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (तः परत्र) नदीपर्यायेषु गङ्गानामानि भवन्ति। खस्रोतस्विनी। विहायोधुनी। वियत्सिन्धुः। व्योमस्रवन्ती। नभोनदी। गगननिम्नगा। अम्बरापगा। द्योनदी। आकाशनदी। अन्तरीक्षनिर्झरिणी(?)रेफा। मेघपथसरित्। वायुपथतरङ्गिणी। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथ्यादिशब्दतः (परत्र) ईश्वरपर्यायेषु हरनामानि भवन्ति। भागीरथीराजः। त्रिपथगाधिपः। जाह्नवीपतिः। हिमवत्सुतास्वामी। मन्दाकिनीनाथः। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

विधिर्वेधा विधाता च द्रुहिणोऽजश्चतुर्मुखः।
पद्मपर्य्याययोनिश्च पितामहविरञ्चिनौ ॥७२॥
हिरण्यगर्भः स्रष्टा च प्रजापतिस्सहस्रपात्।
ब्रह्मात्मभूरनन्तात्मा कः

सप्तदश ब्रह्मणि। विधति[3] सृजति **विधिः**। विधत्ते वा विधिः। "उपसर्गे दः किः[4]।" विधति सृजति **वेधाः**। "[5]सर्वधातुभ्योऽसुन्।" "विध विधाने।" विदधाति धारयति भूतानीति **विधाता**। द्रुह्यत्यसुरेभ्यो **द्रुहिणः**। न जायतेऽजः। चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य **चतुर्मुखः**। "**पद्मपर्याययोनिः**"–पद्मपर्यायशब्दाग्रे **योनि**शब्दे प्रयुज्यमाने धातुर्नामानि भवन्ति। तामरसयोनिः। कमलयोनिः। नलिनयोनिः। पद्मयोनिः। सरोजयोनिः। सरसीरुहयोनिः। खरदण्डयोनिः। पुण्डरीकभवः। महोत्पलजः। अरविन्दयोनिः। शतपत्रयोनिः। पुष्करयोनिः। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि। दक्षमन्वादीनां लोकपितॄणां पिता **पितामहः**। आत्मनो भूतानि विरिङ्क्ते पृथक् करोति **विरिञ्चनः**। विरिञ्चः। विरिञ्चिश्च।

---

१. त्रयाणां पथां समाहारस्त्रिपथं तेन गच्छतीति वा। इत्थं च पूर्वं समाहारद्विगौ कृते तत्र समासान्तविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूपपाद्यं भवति। गंगायास्त्रिपथगामित्वे भारतोक्तं वचनम्–"क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागाँस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवाँस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥" २. मन्दमकितुं गन्तुं शीलमस्या इति वा। "अक कुटिलायां गतौ।" णिन्। ङीप्। ग्रन्थोक्तविग्रहे मन्दाकशब्दस्य मन्दगत्यर्थे प्रमाणं मृग्यम्। ३. "विध विधाने"। तुदादिः। सर्व धातुभ्य इन् कित्त्वं च। ४. का० सू० ४।५।७०। ५. का० उ० सू० ४।५६।

हिरण्यं गर्भे यस्य, हिरण्यं गर्भो वा यस्य **हिरण्यगर्भः**। [1]पुराणम्—

"हिरण्यगर्भमभवत्तत्राण्डमुदके तथा।
तत्र यज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूर्लोकविश्रुतः॥"

सृजतीत्येवंशीलः **स्रष्टा**। प्रजानां पतिः **प्रजापतिः**। "पद गतौ।". पद्। पद्यन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) प्राणिनः, तान् पद्यमानान् जन्तून् चरणा एव प्रयुञ्जते। "[2]धातोश्च हेतौ" इन्। अस्योप० दीर्घः। पादि जा०। पादयन्तीति पादः। क्विप् च। "[3]कारितस्या०" कारितलोपः। वेर्लोपः। पाद्। सहस्रं पादो यस्य स **सहस्रपाद्**। बृंहन्ति वर्धन्ते चराचराण्यत्र **ब्रह्म**। उभयम्। इदं ब्रह्म। अयं ब्रह्मा। अथवा बृंहन्ति व्रतानि यस्मिन्निति ब्रह्म। बृंहेः [4]मन् प्रत्ययो भवति. अच्च हकारात् पूर्वम्। आत्मना भवति **आत्मभूः**। न अन्तो विद्यते यस्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्य सः **अनन्तात्मा**। कायतीति [5]**कः**। परमेष्ठी। सुरज्येष्ठः। शतानन्दः। स्वयम्भूः। जगत्कर्ता। शतधृतिः। स्थविरः।

तत्पुत्रोऽथ नारदः॥७३॥

तस्य पुत्रस्तत्**पुत्रः**। ब्रह्मणः शब्दात् (परत्र) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने **नारदनामानि** भवन्ति। विधिपुत्रः। वेधःपुत्रः। विधातृपुत्रः। विरिञ्चिपुत्रः। द्रुहिणपुत्रः। अजपुत्रः। चतुर्मुखपुत्रः। पद्मयोनिपुत्रः। पितामहपुत्रः। हिरण्यगर्भपुत्रः। प्रजापतिपुत्रः। सहस्रपात्पुत्रः। ब्रह्मपुत्रः। आत्मभूसुतः। अनन्तात्मपुत्रः। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः।
केशवश्च हृषीकेशः शार्ङ्गी नारायणो हरिः॥ ७४॥
केशी मधुर्बलिर्बाणो हिरण्यकशिपुर्मुरः।
तदादिसूदनः शौरिः पद्मनाभोऽप्यधोऽक्षजः॥७५॥
गोविन्दो वासुदेवश्च—

एकविंशतिर्नारायणे। कर्षत्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा **कृष्णः**। "[6]इण्जिकृषिभ्यो नक्।" दाम उदरे यस्य स **दामोदरः**। यल्लक्ष्यम्[7]-बालो हि चापलाद्दाम्ना बद्धोऽभूत्। वेवेष्टि व्याप्नोति **विष्णुः**। "[8]सूविपिभ्यां यण्वत्।" उपगतमिन्द्रमुपेन्द्रः। इन्द्र उपगतोऽनुजत्वाद् वा **उपेन्द्रः**। पुरुषेषु उत्तमः **पुरुषोत्तमः**। केशाः सन्त्यस्य **केशवः**। हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशित्वाद् **हृषीकेशः**। शार्ङ्गं धनुरस्त्यस्य **शार्ङ्गी**। नारा आपः अयनं यस्य **नारायणः**[9]। यत्स्मृतिः[10]—

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥"

---

१. "पुराणम्" इत्यारभ्य "लोक विश्रुतः" इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् २।१२७। उपलभ्यते। २. का० सू० ३।२।१०। ३. का० सू० ३।६।४४। ४. "सर्वधातुभ्यो मन्" का० उ० सू० ४।२८। ५. "कै शब्दे" वेदध्वनिकर्तृत्वेन ब्रह्मणि कायतीति क इति विग्रहः। "कच दीप्तौ" कचते वा। "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" पा०सू० ३।२।१०१। सूत्रवार्तिकेन डः। ६. का०उ०सू० २।५१। ७. बालकृष्णो हि यशोदया तच्चापल्यनिवारणाय कटिप्रदेशे बद्ध इति पौराणिकी कथा "लक्ष्यम्" इति पदेन स्मार्यते ८. का० उ० सू० २।८। ९. नराणां समूहो नारम्; तदयनं यस्य, नराद् विराट्पुरुषाज्जातं तत्त्वं नारम्; तदयते जानाति वा, आययति प्रवर्तयति वा, "नारायणः" इत्यपि व्युत्पत्तिरत्र। १०. मनुस्मृतिः १।१०। तृतीयचरणे "ता यदस्यायनम्पूर्वम्" इति पाठो लभ्यते।

नरस्यापत्यं वा । नरानयते इति वाक्येन नारायणोऽपि । हरत्यत्रं हरिः । केशाः सन्त्यस्य केशी । [1]मन्यते जनैः मधुः । "[2]मनिजनिनमां मधजतनाकाश्च" एषामुप्रत्ययो भवति मधजतनाकाश्च यथासंख्यमादेशा भवन्ति । "बल वल्ल च ।" बलतीति बलिः । "इः[3]सर्वधातुभ्यः ।" बण्यते बाणः । तदादिसूदनः । तदादीनां केश्यादीनां सूदनो नाशकर्ताऽरिः । केशी, मधुः, बलिः, बाणः, हिरण्यकशिपुः, मुरः, एभ्यः शब्देभ्यः परत्रारिशब्दे प्रयुज्यमाने नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केश्यरातिः । केश्यमित्रः । केशिद्विट् । केशिसपत्नः । मधुवैरी । मध्वरातिः । मध्वमित्रः । मध्वरिः । मधुद्विट् । मधुसपत्नः । मधुरिपुः । बलिवैरी । बल्यरातिः । बल्यमित्रः । बलिद्विट् । बलिसपत्नः । बलिरिपुः । बाणवैरी । बाणारातिः । बाणामित्र । बाणारिः । बाणद्विट् । बाणसपत्नः । बाणरिपुः । हिरण्यकशिपुद्विट् । हिरण्यकशिपुसपत्नः । हिरण्यकशिपुरिपुः । मुरवैरी । मुरारिः । मुरारातिः । मुरद्विट् । मुरसपत्नः । मुररिपुः । मधुशत्रुः । बाणशत्रुः । मधुसूदनः । बलिसूदनः । बलिबन्धनः । बाणसूदनः । हिरण्यकशिपुसूदनः । केशिसूदनः । इत्यादि पर्यायनामानि । शूरस्तस्यादिपुरुषस्तस्यापत्यम्, शौरिः । सौरिर्वा । पद्मं नाभावस्य पद्मनाभः । "[4]संज्ञायां नाभिः ।" अधोऽक्षाणां जितेन्द्रियाणां जायते प्रत्यक्षीभवति, अधोक्षजः[5] । गां भुवं विन्दति गोविन्दः । वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः । [6]मञ्जुकेशः । श्रीवत्साङ्कः । श्रीपतिः । पीतवासाः । विष्वक्सेनः । विश्वरूपः । मुकुन्दः । धरणिधरः । सुपर्णकेतुः । वैकुण्ठः । जलशयनः । रथाङ्गपाणिः । दाशार्हः । क्रतुपुरुषः । वृषाकपिः । अच्युतः । इन्द्रावरजः । [7]बभ्रुः । विष्टरश्रवाः । वनमाली । सनातनः । जिनः । शम्भुः । इत्याद्यूह्यम् ।

लक्ष्मीः श्रीर्गोमिनीन्दिरा ।

चत्वारः श्रियाम् । "लक्ष दर्शनाकाङ्क्षयोः ।" लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं जनमिति लक्ष्मीः । "[8]लक्षेर्मोऽन्तश्च" अस्मादीप्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । "भज् श्रिञ् (सेवायाम्) ।" पुण्यकृतं श्रयतीति श्रीः । "[9]वचिप्रच्छिश्रिद्रुप्रुज्वां क्विब्दीर्घश्च" एभ्यः क्विप्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च स्वरस्य चैषाम् । गां मिनोतीति गोमिनी[10] । इन्दति परमैश्वर्य्ययुक्ता भवति इन्दिरा । कमला । पद्मा । पद्मवासा । हरिप्रिया । क्षीरोदतनया । माया । मा । ता[11] । ई । आ । रमा । सीता । वला (चला) । भर्भरी । अब्धिजाऽपि ।

तत्पतिः शैलभूम्यादिधरश्चक्रधरस्तथा ॥ ७६ ॥

तस्याः पतिस्तत्पतिः । लक्ष्मीपतिः । श्रीपतिः । गोमिनीपतिः । इन्दिरापतिः । इत्यादीनि हरिनामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतधरः । शैलधरः । दरीभृद्धरः । अचलधरः । शृङ्गिधरः । सानुमद्धरः । गिरिधरः । नगधरः । शिलोच्चयधरः । भूमिधरः । भूधरः । पृथ्वीधरः । गह्वरीधरः । मेदिनीधरः ।

---

१. मन्यते जनैः "खलत्वेन" इति शेषः । २. का० उ० सू० १।८ । ३. का० उ० सू० ३।१४ । ४. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः । ८ । ५. अधः कृतमक्षजमैन्द्रियकं ज्ञानं येन, अधो न क्षीयते जातु इति वा विग्रहोऽधिकोऽन्यत्र । ६. "मञ्जुकेश" शब्दस्य "विष्णु" पर्यायत्वे कल्पद्रुरपि प्रमाणम्—"मञ्जुकेशः कौस्तुभोराः सोमगर्भो धराधरः ।" ३।२।७ । ७. बभ्रुशब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । "विपुले नकुले विष्णौ बभ्रुः स्यात्पिङ्गले त्रिषु ।" ३।३।१७० । ८. का० उ० सू० ३।३५ । ९. का० उ० सू० २।२३ । १०. "गोमिनी" शब्दस्य लक्ष्म्यर्थे प्रमाणं मृग्यम् । अत्रत्यविग्रहोऽपि चिन्त्यः । मत्वर्थे गोशब्दान्मिनिप्रत्यये ङीपि गोपालिकार्थे तस्य प्रसिद्धौ कोशान्तरसंवादः । ११. ता, ई, आ, एषां लक्ष्म्यर्थे प्रमाणम्—"लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता धी कमलेन्दिरा" अभि० चि० २।१४० । "या" इत्यत्र ई आ इति च्छेदः । "लक्ष्म्यान्तु भर्भरी विष्णुशक्तिः क्षीराब्धिमानुषी ।" इति तट्टीकायाम् ।

महीधरः । धराधरः । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्ष्माधारः । वसुमतीधरः । विश्वम्भराधरः । अवनीधरः । धरणीधरः । क्षमाधरः । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (भ्रः) । कुम्भिनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधरः । उर्वीधरः । गोधरः । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेर्नामानि ज्ञातव्यानि । तथा **चक्रधरो**ऽपि ।

तत्पुत्रो मन्मथः कामः सूर्पकाराति (कारि) रनन्यजः ।
कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

षट् कामे । **तत्पुत्रः** । कृष्णपुत्रः । दामोदरपुत्रः । विष्णुपुत्रः । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूनुः । केशवपुत्रः । हृषीकेशपुत्र । हृषीकेशतनयः । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणोद्वहः । हरिसूनुः । गोविन्दतुक् । इमानि मदनस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । मथ्नाति चित्तं [१]**मन्मथः** । कामयते जनः (अनेन) **कामः** । [२]**सूर्पकारातिः** । मनसोऽन्यस्मान्न जायते **अनन्यजः** । **कायपर्यायरहितः** । विदेहः । अकायः । अनङ्गः । अनपघनः । अवपुः । असंहननः । अकलेवरः । अमूर्त्तिः । इत्यादि (दीन्यपि तस्य) पर्यायनामानि । जनं मदयतीति **मदनः** । मकरो ध्वजे यस्य स **मकरध्वजः** । प्रद्युम्नः । मनसिजः । सङ्कल्पजन्मा । अङ्गजः । पञ्चेषुः । श्रीनन्दनः । हृच्छयः । मधुसखः ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।
इषुः काण्डं क्षुरप्रं च नाराचं तोमरं खगः ॥ ७८ ॥

द्वादश बाणे । शिलीव सूक्ष्माग्रं मुखं यस्य [३]**शिलीमुखः** । "शॄ हिंसायाम्" । शृणन्त्यनेनेति **शरः** । [४]"पुंसि संज्ञायां घः" घप्रत्ययः । बणति [५]**बाणः** । [६]"व्यञ्जनाच्च" घञ् । मार्गयति अन्वेषयति **मार्गणः** । रोप्यते देहे निखन्यते **रोपणः** । कणति [७]**कणः** । "इष गतौ" । इष्यते गम्यते शत्रुसम्मुखमिति [८]**इषुः** । जन्तुमिष्यति हिनस्तीति वा **इषुः** । "[९]इषिधृषिभिदिगृधिमृदिपृभ्यः कुः" । काम्यते रिपुवधाय [१०]**काण्डम्** । उभयम् । खनति भिनत्ति [११]**क्षुरप्रम्** । नारं नरसमूहम् अञ्चतीति [१२]**नाराचम्** । स्तोम्यते श्लाघ्यते **तोमरम्**[१३] । खमाकाशं गच्छतीति **खगः** । कङ्कपत्रः । चित्रपुङ्खः । विशिखः । कलम्बः । कदम्बोऽपि । सायकः । प्रदरः । पृषत्कः । रोपः । गार्ध्रपक्षः । [१४]खरुः । भल्लिः । भल्लः ।

---

१. विग्रहे चित्तस्थाने मनःशब्दपाठो योज्यः । मनसष्टिलोपार्थं पृषोदरादिगणपाठायासो ऽपि तस्य कार्यः । क्षीरस्वामिरामाश्रमौ तु मननं मत् चेतना । मथ्नातीति मथः । पचाद्यच् । मतश्चेतनाया मथः "मन्मथः" इत्याहतुः । २. छन्दोभङ्गभयाच्छूर्पकारिरिति पाठो बोध्यः । शूर्पको नाम कश्चिद् दानवस्तस्य नाशकारित्वात्कामः शूर्पकारिः । तदुक्तम्– अभि० चि० २।१४२ । "पुष्पाण्यस्त्रेषुचापास्त्राण्यरी शम्बरशूर्पकौ ।" ३. शिली नाम गण्डूपदः । "केचुवा" इति लोके ख्यातः । ४. का० सू० ४।५।९६ । ५. बणति शब्दायते पुङ्खोऽस्मिन्निति पूर्णो विग्रहः । ६. का० सू० ४।५।९९ । ७. कणति शब्दायते कणः । पचाद्यच् । ८. इषति गच्छति शत्रुसम्मुखमिति वा । ९. का० उ० सू० १।१० । १०. कनति दीप्यते काण्ड इति रामाश्रमः । "कनी दीप्तौ" । "क्षादिभ्यः कित्" उ० ११२ । इति डः । अनुनासिकस्येत्युपधादीर्घश्च । अमरकीत्युक्तविग्रहे "कमु कान्तौ" कमधातोः स एव प्रत्ययः । कणत्यनेनाहतः काण्ड इति हेमचन्द्रः । "कण शब्दे" इत्यतो डः । ११. क्षुरं तैक्ष्ण्येन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुराभं लोहं प्राति गच्छति वा । १२ नारमाचामतीति रामाश्रमः । नरमञ्चतीति नराची, नराच्यास्तुल्यो नाराच इति हेमचन्द्रः । १३. "तु गतौ" सौत्रः । तौतीति तौः । क्विप् । म्रियतेऽनेनेति मरः । पुंसि संज्ञायां घः । तौश्चासौ मरश्चेति तोमर इत्यन्यत्र । १४. खरुर्बाणः । तदुक्तं कल्पद्रुकोशे १।५।२६९ । "विदर्यः पत्रवाहश्च चित्रपुङ्खः शरः खरुः ।" इति ।

कार्मुकं धन्व चापं च धर्म कोदण्डकं धनुः ।
शिलीमुखादेरसनम्—

पद् धनुषि । कर्मणे शत्रुवधलक्षणाय प्रभवतीति [1]**कार्मुकम्** । दधन्ति मारयत्यनेन [2]**धन्वन्** । अदन्तम् धन्वम् । चपस्य वेणोर्विकारश्चापम् । उभयम् । धरति [3]**धर्मन्** । धर्मं च । "कुट अनृतभाषणे" । कोदयत्यनेन [4]**कोदण्डम्** । शत्रुवधार्थं धन्यते अर्थ्यते धार्यते वा **धनुः** । उभयम् । उणादौ दधन्तीति धनुः (नृः) । "[5]कृपिचमितनिधनिवधिधर्निलर्जिभ्य उः" । **शिलीमुखादेरसनम्** । शिलीमुखासनः । शरासनः । मार्गणासनः । रोपणासनः । कणासनः । इष्वासनः । काण्डासनः । क्षुरप्रासनः । नाराचासनः । तोमरासनः ।

तत्कोटिमटनीं विदुः ॥ ७९ ॥

तस्य धनुषः **कोटिम**ग्रभागम् । कार्मुककोटिः । धन्वकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटिः । धनुष्कोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासनकोटिः । बाणासनकोटिः । रोपणासनकोटिः । मार्गणासन-कोटिः । इत्यादिकमटनीति कथ्यते । अटति गच्छति भूमिम**टनिः** । ङ्याम् । **अटनी** । द्वौ स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रसवोद्गमौ ।
प्रसूनं कुसुमं ज्ञेयम्—

पद् (अष्ट) पुष्पे । पुष्यति विकसति **पुष्पम्** । सुष्ठु मन्यन्ते आभिः **सुमनसः**[6] । स्त्रीत्वबहुत्वे । "ञिफला विशरणे ।" फल् । फलति स्म फुल्लः । **फुल्लं** वा । "[7]गत्यर्थाऽकर्मक-" तः । "[8]आदनुबन्धाच्च" इति नेट् । "[9]अनुपसर्गात्फुल्लक्षीवकृशोल्लाघाः" निष्ठातकारस्य लत्वम् । "[10]चरफलोरुदस्य" तकारादावगुणे उत्वम् । षिः । रेफः । लताया अन्तं पतितं **लतान्तम्** । प्रसू (य) ते **प्रसवम्** । उद्गच्छति प्रादुर्भवति **उद्गमः** । श्रियं प्रसूते **प्रसूनम्** । सूनं सूनकं च । एता उभयम् । कौ शोभां सूते [11]**कुसुमम्** । सुमं च । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।

तदाद्यस्त्रशरः स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पपर्यायतो (तः परत्रा) स्त्रपर्यायेषु तथा बाणपर्यायेष्वपि **स्मर**नामानि भवन्ति । पुष्पेषुः । पुष्पबाणः । पुष्पशिलीमुखः । पुष्पशरः । पुष्पमार्गणः । पुष्परोपणः । पुष्पकाण्डः । पुष्पकणः । पुष्पक्षुरप्रः । पुष्पनाराचः । पुष्पतोमरः । सुमनःक्षुरप्रः । सुमशिलीमुखः । सुमनोनाराचः । लतान्तेषुः ।

---

१. "कर्मण उकञ्" पा० सू० ५।१।१०३ । इति प्रभवत्यर्थे उकञ् । टिलोपः । २. "धन धान्ये" जुहोत्यादिः । वनप्रत्ययः । धातूनामनेकार्थत्वान्मारयतीत्यर्थः । धात्वर्थानुरोधे तु दधति धान्यमर्जयत्यनेने-त्यर्थो बोध्यः । वीराणां धनधान्यार्जनसाधनत्वाद् धनुषः । धन्वति गच्छति धन्वेति क्षीरस्वामिरामाश्रम-हेमचन्द्राः । कनिन्प्रत्ययः । ३. धरती रक्षत्यापन्नस्त्वानित्यर्थः । मनिन्प्रत्ययः । अकारान्तधर्मशब्द-स्य धनुर्वाचित्वे मेदिनी प्रमाणम्—"धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ । अहिंसोपनिषन्न्याये ना धनुर्यमसोमपे ॥" मान्तव० १६ श्लो० ॥ ४. बाहुलकाद्दण्डप्रत्ययः । रामाश्रमस्तु "कुट अनृतभाषणे" कोटती विग्रहमाह । स एव प्रत्ययः । पृषोदरादित्वाद्दृस्य दः । कदिः सौत्रः । कद्यतेऽनेनेति हेमचन्द्रः । "कु शब्दे" कौतीति कौः । कौः शब्दायमानो दण्डोऽस्येत्यप्यन्यत्र । ५. का० उ० सू० १।३१ । ६. सुप्रीतं मन आभिरिति मुकुटः । ७. का०सू० ४।६।४९। ८. का०सू० ४।५।९१। ९. का०सू० ४।६।११५। १०. का० सू० ४।१।७६। ११. कुस्यति कुसुमम् । "कुस संश्लेषणे" दिवादिः । "कुसेरुम्भोमेदेताः" पा०उ० सू० ४।१०६। इत्युमप्रत्ययः । इति रामाश्रमः ।

लतान्तकाण्डः। लतान्तक्षुरप्रः। लतान्तनाराचः। लतान्ततोमरः। प्रसवमार्गणः। प्रसवरोपणः। प्रसवकणः। प्रसवेषुः। प्रसवकाण्डः। प्रसवक्षुरप्रः। प्रसवनाराचः। प्रसवतोमरः। उद्गमशिलीमुखः। उद्गमशरः। उद्गमबाणः। उद्गममार्गणः। उद्गमरोपणः। उद्गमकणः। उद्गमेषुः। उद्गमक्षुरप्रः। उद्गमनाराचः। उद्गमतोमरः। प्रसूनशिलीमुखः। प्रसूनशरः। प्रसूनबाणः। प्रसूनरोपणः। प्रसूनकणः। प्रसूनकाण्डः। प्रसूनेषुः। प्रसूनक्षुरप्रः। प्रसूननाराचः। प्रसूनतोमरः। कुसुमशिलीमुखः। कुसुमशरः। कुसुमबाणः। कुसुममार्गणः। कुसुमरोपणः। कुसुमकणः। कुसुमेषुः। कुसुमकाण्डः। कुसुमक्षुरप्रः। कुसुमनाराचः। कुसुमतोमरः। पुष्पशब्दाग्रे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति। पुष्पकार्मुकः। पुष्पधन्वा। पुष्पचापः। पुष्पधर्मा। पुष्पकोदण्डः। पुष्पधनुः (न्वा)। लतान्तकार्मुकः। लतान्तधनुः (न्वा)। लतान्तचापः। लतान्तधर्मः (र्मा)। लतान्तकोदण्डः। लतान्तधन्वा। प्रसवचापः। प्रसवकोदण्डः। प्रसवधनुः (न्वा)। प्रसूनकार्मुकः। कुसुमधन्वा। कुसुमचापः। कुसुमधर्मः (र्मा)। कुसुमकोदण्डः। कुसुमधनुः (न्वा)। इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः।

हृदयं विशिखाऽकूतम्–

नव चित्ते। "स्यम स्वन ध्वज शब्दे।" आङ्पूर्वः। स्वनति स्म, आस्वनति स्म इति **स्वान्तम्**, आस्वान्तम्। "गत्यर्था०"[1] निष्ठा क्तः। "वा [2]रुष्यमत्वरसंघुषाऽस्वनाम्" एभ्यः क्ते विभाषयेड् भवति। वेट्। "पञ्चमो०"[3]। "मनोरनुस्वारो[4] धुटि"। मनोऽर्थे "क्षुभिवाही"[5] त्यादिना क्ते नेट्। कथितत्वकथनेऽपि परत्वात्पूर्वोक्तपरोक्तयोः परोक्तविधिर्बलवान् इति वचनात्। अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो भवति। मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव [6]विधिर्भवति। चेतति **चित्तम्**[7]। चेतति जानाति अनेनात्मा **चेतस्** सान्तम्। अन्तः निश्चयः क्रियतेऽनेन, **अन्तःकरणम्**[8]। मन्यते बुध्यतेऽनेन सान्तम् **मनस्**। बुद्ध्याऽर्थं हरति **हृदयम्**। "हृञो[9] दोऽन्तश्च"। दान्तं च हृद्। विगतं (ता) नष्टं (ष्टा) शिखं (खा) यस्य तत्, **विशिखम्**[10]। आ समन्तात् कूयते आकूयते (**आकूतम्**)। तथा चाण्साहस्याम्[11]— "जाताकूतेनाकारेणेति मानसम्"।

मारस्तत्रोद्भवो मतः॥ ८१॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मतः कथितः। स्वान्तसम्भवः। स्वान्तजः। आस्वनितजः। चित्तसम्भवः। चित्तजः। चेतस्सम्भवः। चेतोजः। अन्तःकरणसम्भवः। हृदयसम्भवः। हृदयजः। विशिखसम्भवः। विशिखजः। आकूतसम्भवः। इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या–

षड् गुणे। मूर्वति हिनस्त्यनया मूर्वा। तदाख्यस्य तृणस्य विकारो **मौर्वी**। धनुरनया जीवतीति

---

१. का० सू० ४।६।४९। २. का० सू० ४।६।९७। ३. का० सू० ४।१।५५। 'पञ्चमोपधाया धुटि चागुणे" इति पूर्णं सूत्रम्। ४. का० सू० २।४।४४। ५. का० सू० ४।६।९३। ६. आस्वनितमित्यत्र मनोऽर्थेऽपि परत्वात् "वा रुष्यमत्वरे" ति वेट्। आङ्पूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र "क्षुभिवाही" त्यादिनेट्प्रतिषेधः। तेन स्वान्तमित्येकमेव रूपम्। आङ्पूर्वकत्वे तु आस्वनितमास्वान्तमित्युभयमित्याशयः। ७. "ञ्यनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क्तः" इति का० ४।४।६६। सूत्रेण ज्ञानार्थत्वाद्वर्तमाने क्तः। ८. अन्तःशब्दस्याऽत्राधिकरणशक्तिप्रधानरेफान्ताव्ययत्वेनान्तो निश्चय इति व्युत्पत्तिर्न युक्ता। अन्तर्गतं करणम्, करणानामन्तर्गतं वेति व्युत्पत्तिर्बोध्या। ९. का० उ० सू० २।२६। १०. विशिखशब्दस्य हृदयार्थे न किमप्यन्यत्र प्रमाणमुपलब्धम्। अधोमुखपुण्डरीकाकारत्वाद्धृदयस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नेयम्।

जीवा । गुण्यते अभ्यस्यतेऽनेन **गुणः** । पुंसि । गोभ्यो हिता **गव्या**[1] । जीयतेऽनया **ज्या**[2] । बाणासनम् । द्रुणा ।

अलिर्भृङ्गः शिलीमुखः ।

भ्रमरः षट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

सप्त भृङ्गे । अलति मण्डयति पुष्पजातीः **अलिः**[3] । मधुना बिभर्त्यात्मानं **भृङ्गः** । [4]"भृङ्ग-भृङ्गाङ्गानि" एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीसदृशं शिलासदृशं वा मुखमस्य **शिलीमुखः** । भ्रमन् रौतीति निरुक्त्या **भ्रमरः** । "शकन्ध्वादयः[5]" शकन्धुप्रभृतीनाम् अकारस्य लोपो भवति । आदिशब्दात् नकारस्य लोपः । उणादौ "भ्रमु चलने" । भ्रमतीति **भ्रमरः** । "देवि[6]वटिजठिभ्रमिवासिभ्योऽरः" । षट् पदानि चरणा अस्य **षट्पदः** । द्वौ रेफौ यस्य **द्विरेफः**[7] । मधु व्रतयति भुङ्क्ते **मधुव्रतः** । मधुकरः । पुष्पलिड् । इन्दिन्दिरः । षट्चरणः । षडङ्घ्रिः । चञ्चरीकः । भसलः । रोलम्बः । देश्याम् ।

मौर्व्यादिप्रान्तमल्यादिकन्दर्पस्यैक्षवं धनुः ।

इक्षोर्विकार **ऐक्षवम्** । अलिमौर्वी (कम्) । भृङ्गमौर्वी (कम्) । शिलीमुखमौर्वी (कम्) । भ्रमरमौर्वी (कम्) । षट्पदमौर्वी (कम्) द्विरेफमौर्वी (कम्) । मधुव्रतमौर्वी (कम्) । अलिजीवा (वम्) । भृङ्गजीवा (वम्) । शिलीमुखजीवा (वम्) । भ्रमरजीवा (वम्) । षट्पदजीवा (वम्) । द्विरेफजीवा (वम्) । मधुव्रतजीवा (वम्) । अलिगुणः (णम्) । भृङ्गगुणः (णम्) । शिलीमुखगुणः (णम्) । भ्रमरगुणः (णम्) । षट्पदगुणः (णम्) । द्विरेफगुणः (णम्) । मधुव्रतगुणः (णम्) । अलिज्या (ज्यम्) । भृङ्गज्या (ज्यम्) । द्विरेफज्या (ज्यम्) । मधुव्रतज्या (ज्यम्) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनुः) नामानि ज्ञेयानि ।

हेतिरस्त्राऽयुधं शस्त्रम्—

चत्वारः शस्त्रे । हिनोति अनया **हेतिः**[9] । स्त्रियाम् । "[10]सातिहेतिजूतियूतयश्च" । एते क्तिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अस्यते क्षिप्यतेऽनेनेति **अस्त्रम्** । आयुध्यतेऽनेन **आयुधम्** । उभयम् । शस्यतेऽनेन **शस्त्रम्** ।[11] "नीदाप्शसुयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदंशनहां करणे" ष्ट्रन् । त्रमात्रः । "व्यञ्जनम्[12]" इति सपरगमनम् । ननु अस्येट्प्रतिषेधाभावात् ष्ट्रनि प्रत्यये इडागमः कथं भवति । आगमशास्त्रमनित्यमिति वचनात् शसुधातोः ष्ट्रनि प्रत्यये इट् न भवति । "युग्यं[13] पत्रे" इति ज्ञापकादेव (द्वा) ।

पुष्पाद्यस्त्रः स्मरो मतः ॥ ८३ ॥

पुष्पपर्यायतः अस्त्रपर्यायेषु शरपर्यायेषु तथा चापपर्यायेष्वपि **स्मरनामानि** भवन्ति । पुष्प-

---

१. गोभ्यो बाणेभ्यो हितेत्यर्थः । २. जिनाति जीयतेऽनया । "ज्या वयोहानौ" । "अन्येष्वपि दृश्यते" इति डः । ३. अल भूषणादौ । सर्वधातुभ्य इन् । ४. का० उ० १।४८ । ५. का० सू० वृ० । ६. कातन्त्रोणादौ नोपलब्धम् । ७. भ्रमरपदे रेफद्वयसत्त्वाद् द्विरेफः । ८. कन्दर्पस्य धनुरैक्षवम् । इक्षुदण्ड-निर्मितम् । अत एव काम इक्षुधन्वेत्युच्यते । मौर्व्यादयः शब्दा अन्ते यस्य, अलिः अलिपर्याय आदौ यस्येदृशं तद्धनुरिति यथाश्रुतपाठार्थः । अस्मिन्नर्थे धनुर्विशेषणतया अलिमौर्वीकम् भृङ्गमौर्वीकम् इत्यादि टीकायां वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु मौर्व्यादिप्रोक्तमल्यादिरिति पाठो युक्तः । तत्र पदार्थयोजनाऽपि साधु संगच्छते । अल्यादिः कन्दर्पस्य मौर्व्यादि धनुश्च ऐक्षवम् इत्यर्थः । तदुक्तम्—"मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतोः" इति साहित्यदर्पणे । टीकैषा तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९. "हि गतौ वृद्धौ च" । इयं व्युत्पत्तिरग्निशिखार्थे बोध्या । शस्त्रार्थे "हन् हिंसायाम्" हन्यतेऽनयेति सुवचम् । १०. का० सू० ४।५।७३ । ११. का० सू० ४।४।६१ । व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्" । १२. का० सू० १।१।२१ । इति सकारस्य परगमनम् । १३. का० सू० ४।२।३३ ।

हेतिः । पुष्पास्त्रः । पुष्पायुधः । पुष्पशस्त्रः । सुमनोहेतिः । सुमनोऽस्त्रः । सुमनआयुधः । सुमनश्शस्त्रः । लतान्तहेतिः । लतान्तास्त्रः । लतान्तायुधः । लतान्तशस्त्रः । प्रसवास्त्रः । प्रसवायुधः । प्रसवशस्त्रः । उद्गमहेतिः । उद्गमायुधः । उद्गमशस्त्रः । प्रसूनहेतिः । प्रसूनास्त्रः । प्रसूनायुधः । प्रसूनशस्त्रः । कुसुमहेतिः । कुसुमास्त्रः । कुसुमायुधः । कुसुमशस्त्रः । इत्यादिकानि नामानि ज्ञातव्यानि ।

ध्वजं पताका केतुश्च चिह्नं तद्वैजयन्त्यपि ।

पञ्च पताकायाम् । ध्वजते (ति) धूयते **ध्वजः**[1] । तथाऽमरसिंहे—"[2]**ध्वजमस्त्रियाम्** ।" ध्वजिश्च । पताकादण्डे ध्वज इत्यन्यः । पत्यते क्षिप्यते वातेन **पताका** । बलाकादयः[3]—'बलाकापिनाकपताकाश्यामाकशलाकाः" एते अकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पटाका च । स्त्रियाम् । कीयते सैन्यमनेन **केतुः** । [4]केत्वादयः—"केत्वृतुक्रत्वाप्तुपीत्वेधतुवहतुजीवातवः" एते तुनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । चह परिकल्कने । चहयति (अनेन) **चिह्नम्** । विजयतेऽनया **वैजयन्ती**[5] । जयन्ती च । स्त्रीत्रो: । वैजयन्तः । जयन्तः ।

[6]तत्तदन्तो झषाद्यादिः शम्भोर्विघ्नकरः स्मरः ॥ ८४ ॥

झषध्वजः । झषपताकः । झषकेतुः । झषचिह्नः । झषवैजयन्तिः । षडक्षीणध्वजः । षडक्षीणपताकः । षडक्षीणकेतुः । षडक्षीणचिह्नः । षडक्षीणवैजयन्तिः । सफरध्वजः । सफरपताकः । सफरकेतुः । सफरचिह्नः । सफरवैजयन्तिः । अनिमिषध्वजः । अनिमिषपताकः । अनिमिषकेतुः । अनिमिषचिह्नः । अनिमिषवैजयन्तिः । तिमिध्वजः । तिमिपताकः । तिमिकेतुः । तिमिचिह्नः । तिमिवैजयन्तिः । मीनध्वजः । मीनपताकः । मीनकेतुः । मीनचिह्नः । मीनवैजयन्तिः । पाठीनध्वजः । पाठीनपताकः । पाठीनकेतुः । पाठीनचिह्नः । पाठीनवैजयन्तिः । **शम्भोर्विघ्नकरः** । हरविघ्नकरः । इत्यादीनि स्मरनामानि ज्ञातव्यानि ।

कौक्षेयकासिनिस्त्रिंशकृपाणाः करवालकः ।
तरवारिर्मण्डलाग्रं खड्गनामावलिं विदुः ॥ ८५ ॥

अष्टौ खड्गे । कुक्षौ भवः **कौक्षेयकः**[7] । कौक्षेयः । अस्यते क्षिप्यतेऽसिः । निष्क्रान्तस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो **निस्त्रिंशः** । तालव्यान्तः । शत्रून् हन्तुं कल्पते याचते **कृपाणः**[8] । "कृपेः काण[9]:" । करे वलते **करवालः**[10] । करपालः । तरति (तरं) प्लवमानं वारि यत्रेति निरुक्त्या **तरवारिः** । मण्डलं वर्तुलमग्रं यस्य तन्**मण्डलाग्रम्** । खण्डति परमर्माण्यनेन खड्गः । "खण्डेर्गक्"[11] । स्त्रीत्रोः । ऋष्टिः । चन्द्रहासः ।

अक्षौहिणी बलानीकं वाहिनी साधनं चमूः ।
ध्वजिनी पृतना सेना सैन्यं दण्डो वरूथिनी ॥ ८६ ॥

द्वादश सेनायाम् । अक्षाणां रथानामूहिनी **अक्षौहिणी** । "अक्षस्यौत्वमूहिन्याम्[12]" औत्वम् । अथवा धात्वर्थेन साध्यते भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना । अशू व्याप्तौ । अश्नुते व्याप्नोतीति अक्षः । "[13]वृ-

---

१. "ध्वज गतौ" । पचाद्यच् । २. अम० को० २।८।९९। ३. का० उ० ३।४०। ४. का० उ० १।२८। ५. विजयते विजयन्तः, विजयशाली पुरुषः । औणादिको झच्प्रत्ययः । झस्यान्तादेशः । विजयन्तस्येयं पताका वैजयन्तीति । ६. ते ते ध्वजपर्य्याया अन्ते यस्य झषादिर्मीनपर्यायश्चादौ यस्य ईदृशस्तथा शम्भुविघ्नकरश्च स्मरः कामः । तेऽपि स्मरपर्य्यायाः । तद्यथा झषध्वजेत्यादि । ७. कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वाऽस्यलङ्कारेषु" पा०सू० ४।२।९६। इति खड्गार्थे ढकञ् । ८. कृपां नुदति कृपाण इत्यपि । ९. का०उ०सू० ५।१७। १०. "वल वेष्टने"। ज्वलादित्वाण्णः । वलनं वालो वेष्टनम । करे वालो यस्य, करेण वल्यते वोभयमप्यन्यत्र । ११. का० उ० सू० ५।५२। १२. का०सू० वृ० १।२।७। १३. का०उ०सू० ४।५३।

वदिहनिमनिकम्यशिकपिभ्यः सः" स प्रत्ययः । "छशोश्च[1]"प । "पढोः कः[2]से" अक् प । "[3]कपसंयोगे त्तः" । अक्ष इति जातः । ऊहनं ऊहः । ऊहो विद्यते यस्याः सा ऊहिनी । अक्षाणामूहिनी अक्षौहिणी । "समासान्तसमीपयोरसुवादेः" अस्यार्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्थात् निमित्तात् (परस्य) णो भवति वा । इदानीम् अक्षौहिणीप्रमाणं क्रियते । यद्भारतम्—

"[4]एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥
पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥
अनीकिनी"

पत्तेस्त्रिगुणं सेनामुखम् । गजाः ३, रथाः ३, अश्वाः ९, पदातयः १५ इति सेनामुखम् । गजाः ९, रथाः ९, अश्वाः २७, पदातयः ४५ इति गुल्मम् । गजाः २७, रथाः २७, अश्वाः ८१, पदातयः १३५, इति गणः । गजाः ८१, रथाः ८१, अश्वाः २४३, पदातयः ४०५ इति वाहिनी । गजाः २४३, रथाः २४३, अश्वाः ७२९, पदातयः १२१५, इति पृतना । गजाः ७२९, रथाः ७२९, अश्वाः २१८७, पदातयः ३६४५ इति चमूः । गजाः २१८७, रथाः २१८७, अश्वाः ६५६१, पदातयः १०९३५ इत्यनीकिनी । **दशानीकिन्योऽक्षौहिणी** । गजाः २१८७०, रथाः २१८७०, अश्वाः ६५६१०, पदातयः १०९३५० । वलते संवृणोति परभूमिं वलम् । उभयम् । अनिति प्राणिति तूर्यस्वनैः न नीयते पराभवं वा अनीकम् । वाहा अश्वाः सन्त्यस्यां वाहिनी । साध्यते (अनेन) साधनम् । परान् शत्रून् चमति ग्रसते चमूः । "[6]कृपिचमितनिधनिवधिसर्जिखर्जिभ्य ऊः ।" चमुश्च । ध्वजाः सन्त्यस्यां ध्वजिनी । नायकं पिपर्ति पृतना । अङ्गैः सिनोति बध्नाति सेना । "सिनोतेर्नः[7]"। सेनायाः स्वार्थे यणि सैन्यम् । दाम्यति दण्डः । वरूथो रथगुप्तिरस्त्यस्या वरूथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । [8]गूढः । तन्त्रम् ।

कदनं समरं युद्धं संयुगं कलहं रणम् ।
संग्रामं सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । कद्यते **कदनम्**[9] । समियृति प्रतिविकला भवन्त्यत्र नराः **समरम्** । युध्यतेऽ(त्रा)रिभिर्**युद्धम्** । भटाः संयुज्यन्ते मिलन्त्यत्र **संयुगम्** । कलं मधुरं वाक्यं हन्त्यत्र **कलहः** । रणन्ति दुन्दुभयोऽत्र **रणम्** । संग्रस्यन्ते सत्वान्यनेनेति **संग्रामः**[10] । पुंसि । संपरैति मृत्युरत्र **सम्परायः** । भटा अज्यन्ते क्षिप्यन्तेऽत्र **आजिः** । स्त्रीत्रोः । संयतन्तेऽत्र तान्तं **संयत्** । महाँश्चासौ आहवः[11] **महाहवः** । तम् आहुः

---

१. का० सू० ३।६।६०। २. का० सू० ३।८।४। ३. "कपयोगे त्तः" । का० रू० पू० २५६ सू० । ४. प्रथमः श्लोको महाभारत उपलभ्यते । तस्योपलब्धिस्तु द्वितीयाध्याये पञ्चदशश्लोकत्वेन । इतरस्तत्र नोपलभ्यते । तत्र "एको रथः" इति श्लोकानन्तरम् —"पत्तिन्तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः । स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥ चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी । अनीकिनीं दशगुणां प्राहुः सेनामुखं बुधाः ॥ इति । श्लो० १६, १७,१८ । ५. अभि० चि० २।४१३। ६. का० उ० सू० १।३१। ७. का० उ० सू० ६।३६। ८. गूढशब्दस्य सेनार्थेऽन्यत्र प्रमाणं मृग्यम् । ९. "कद वैक्लव्ये" । कद्यते विक्लूयतेऽनेनास्मिन्वा । करणेऽधिकरणे वा ल्युट् । १०. सङ्ग्राम युद्धे" । सङ्ग्रामयन्तेऽत्रेति । हेमचन्द्रः । सङ्ग्रामणं सङ्ग्राम इति रामाश्रमः । ११. आदूयन्ते योद्धारोऽत्रेत्याहवः ।

म्रुवन्ति । आयोधनम् । जन्यम् । प्रधनम् । प्रविदारणम् । मृधम् । आस्कन्दनम् । संख्यम् । समीकम् । अनीकम् । विग्रहः । समुदायः । अभ्यागमः । संस्फोटिः (टः) । समितिः । समित् । द्वन्द्वम् । सम्मर्दः । संगरः ।

गजो मतङ्गजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।
दन्ती स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितङ्गमाः ॥ ८८ ॥
शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।
करेणुः सिन्धुरः–

विंशतिर्गजे । गजति माद्यति **गजः**[1] । अच् । मतङ्गादृषेर्जातो **मतङ्गजः** । [2]सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्डः[3] । हस्तो विद्यतेऽस्य **हस्ती** । "जातौ तु दन्तहस्ताभ्यां कराच्चैव इनेव हि" । वारयति परान् शत्रून् **वारणः** । न एकेन पिबत्यनेकपः । करोऽस्त्यस्य **करिन्** । इदन्तोऽपि करिः । दन्तो विद्यतेऽस्य **दन्ती** । स्तम्बे तृणे रमते **स्तम्बेरमः** । "[4]स्तम्बकर्णयो रमिजपोः" खच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य **कुम्भी** । द्वौ रदौ यस्य **द्विरदः** । एति गच्छति शत्रुसम्मुखमितीभः । "इणो[5] यण्वत्" भप्रत्ययो भवति स च यण्वत् । मितं गच्छतीति **मितङ्गमः** । "गमेरच्[6]" खप्रत्ययः । "ह्रस्वा रुपोमोन्तः[7] ।" शुण्डां लाति गृह्णातीति, **शुण्डालः**[8] । साम्नः[9] सामवेदाज्जातः **सामजः** । नगे पर्वते भवो **नागः** । मन्यते जनेन **मातङ्गः** । पुष्करं विद्यतेऽस्य **पुष्करी** । द्वाभ्यां पिबति **द्विपः** । करोति कार्यं **करेणुः** । "हृक्रुभ्यामेणुः"[10] आभ्यामेणुः प्रत्ययो भवति । स्यन्दते स्रवति मदं **सिन्धुरः**[11] । दन्तावलः । पद्मी[12] । पीलुः । कालिङ्गः ।

तेषु यन्ता याता निषाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपके । यच्छतीति **यन्ता** । यातीति **याता** । निषीदति इत्येवंशीलो **निषादी** । गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । अपिशब्दात्—आधोरणः । हस्तिपः । हस्त्यारोहः । गजाजीवः । महामात्रः ।

नागाद्यरिः कण्ठी[13] (ण्ठि) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिंहे । नागारिः । गजरिपुः । मतङ्गवैरी । हस्तिद्विट् । वारणवैरी । अनेकपसपत्नः । करिरिपुः । दन्तिवैरी । स्तम्बेरमरिपुः । क्वचिद्दृश्यते ईदृशः पाठः । कुम्भिवैरी । इभवैरी । मतङ्गशत्रुः । शुण्डालरिपुः । सामजद्वेषी । नागारिः । पुष्कररिपुः । द्विपवैरी । करेणुरिपुः । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि पर्यायनामानि सिंहस्य ज्ञातव्यानि । कण्ठे रवो ध्वनिर्यस्य **कण्ठीरवः** ।

---

१. गजति माद्यति गर्जति वा गजः । २. का० सू० ५।३।९१। ३. का० सू० २।६।१५। वृत्तिः । ४. का० सू० ४।३।१६। ५. का० उ० सू० २।२६। ६. का० सू० ४।३। ४५। ७. का० सू० ४।१।८२। ८. शुण्डाऽस्त्यस्येत्यपि । "प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्" पा०सू० ५।२।९६। इति मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः । ९. सामवेदो हि गीतपरः । तत्स्वरेण समाकृष्टा हस्तिनो वद्धा अभवन् । बद्धाश्चाकृष्य जनपदे समानीताः । गीतमूढा यतो बद्धसमानीताः । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति सङ्गतिः । प्रमाणान्तरमपि मृग्यम् । सामवेदमुच्चारयन् विधिर्गजान् ससर्ज । साम्ना सह जातत्वात्सामजा इति । १०. का० उ० सू० २।६। ११. स्यन्दधातोरकर्मकत्वात्स्रवति मदमित्यर्थश्चिन्तनीयः । १२. अत्र कल्पद्रुकोषः१।५।१४४। प्रमाणम्— "करी मतङ्गजः पद्मी सूर्पकर्णो लतारसः" । इति । १३. छन्दो भङ्गभियात्र कण्ठिरव इति पाठः प्रतिभाति । वर्णागमो गवेन्द्रादावित्येकारस्य इकार ईकारश्च विधेयः ।

"[1]वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

इत्यनेन एकारस्य ईकारः। मृगाणां चतुष्पदानां मध्ये इन्द्रः **मृगेन्द्रः**। केसराः स्कन्धकेशाः सन्त्यस्य **केसरी**। क्रमप्राणे हरति [2]**हरिः**। पञ्चाननः। हर्यक्षः। नखरायुधः। मृगरिपुः। सिंहः।

व्याघ्रश्चमूरः शार्दूलः–

त्रयो व्याघ्रे। व्याजिघ्रति प्राणान् उपादत्ते **व्याघ्रः**। चमति अत्ति परान् **चमूरः**। परान् शृणाति हिनस्ति [3]**शार्दूलः**। द्वीपी। पुण्डरीकः। तरक्षुः। चित्रकायः। मृगारिः।

शरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ९० ॥

त्रयोऽष्टापदे। शृणाति हिनस्ति **शरभः**। "[4]कृशृशलिगर्दिरासवलिवल्हिभ्योऽभः"। अष्टौ पदान्यस्य **अष्टापदः**। अष्टौ पादा यस्यासौ **अष्टपात्**।

क्रोडो वराहो दंष्ट्री च घृष्टिः पोत्री च शूकरः।

अष्टौ (षट्) शूकरे। पल्वलं संक्रमति **क्रोडः**[5]। वरानाहन्ति **वराहः**[6]। दंष्ट्राः सन्त्यस्य **दंष्ट्री**। घर्षतीति **घृष्टिः**। गृष्टिश्च। पूङ् पवने। पू। भ्वा०। पूञ् पवने वा। क्र्या०। उभयपदी। पूयतेऽनेनेति पोत्रम् "[7]हलशूकरयोः पुवः" ष्ट्रन्। त्रमात्रः। नाम्यन्तगुणः। सि० नपुं०। पोत्रमस्त्यस्य **पोत्री**। सूते प्रचुरापत्यानि, स्वयति वर्धते वा पीनत्वेन **सूकरः**[8]। शूकरश्च। दन्त्यतालव्यः। कोलः। किरः। किरिश्च।

उष्ट्रो मयः शृंखलिकः करभः शीघ्रगामुकः ॥ ९१ ॥

पञ्चोष्ट्रे। उष्यते दह्यते मरौ **उष्ट्रः**[9]। "[10]सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्"। मयते गच्छति **मयः**[11]। मर्यते इत्येके। शृङ्खलं बन्धनमस्य **शृङ्खलिकः**[12]। कं शिरो रभते उन्नमयतीति **करभः**। करभश्च। शीघ्रं गच्छतीति **शीघ्रगामुकः**। दासेरकः। दीर्घजङ्घः। ग्रीवी। रवणः। धू प्राकोः (धूपकः)।

कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः।
जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुक्कुरो रात्रिजागरः ॥ ९२ ॥

नव सारमेये। कुले गृहे भवः **कौलेयः**[13] (यकः)। सरमाया अपत्यं **सारमेयः**। मण्डं लाति **मण्डलः**। चौरादीन् श्वयति गच्छति **श्वा**। श्वानोऽदन्तोऽपि। पुरो गच्छति **पुरोगतिः**। [14]जिह्वां शरीरं

---

१. "पृषोदरादयः" इति शा० सू० २।२।१७२। कारिका। २. प्राणान् हरतीत्येतावानेवान्यत्र। ३. यद्वा शारयतीति शार्। क्विप्। दूयते इति दूलः। अन्तर्भावितणिजर्थो दूङ्। शार् चासौ दूलश्चेति विग्रहः। ४, का०उ०सू० ३।१२। ५. "क्रुड घनत्वे"। क्रोडनं घनत्वं सोऽस्यास्तीति क्रोडः। "अर्श आद्यच्" इति रामाश्रमः। ६. वरमाहन्तीति, वर आहारो यस्येति वा पृषोदरादित्वात्। ७. का०सू० ४६।६२। ८. सुवं प्रसवं करोतीति। शूकोऽस्त्यस्य शूकरः खररोमत्वात्। शूकं राति वा। शू इतिध्वनिं करोति वा। ९. वष्टि इच्छति कण्टकिवृक्षादनं मरुभूमिं वा इति उष्ट्रः। "सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्" इति का० उ० ४।२६। अत्र दुर्गसिंहः—"वश कान्तौ"। वष्टीति उष्ट्रः करभः। अस्य ष्ट्रन्नन्तस्य सम्प्रसारणं निपातनात्षत्वं च"। इत्याह। १०. का०उ०सू० ४।३३। ११. मीनात्यहीन् मयः। "मीञ् हिंसायाम्"। पचाद्यच्। इति वा। १२. शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे" पा० सू० ५।२।७९। इति कन्। तेन शृङ्खलक इति साधुः। "स तु शृङ्खलकः काष्ठमयैः स्यात्पादबन्धनैः"। इति अभि० चि०। १३. "कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वाऽस्यलङ्कारेषु" पा० सू० ४।२।९६। इति श्वार्थे ढकञ्। १४. जिह्वया रसनया पिबतीति विग्रहः सुवचः। जिह्वया शरीरं पातीत्यपि सम्भवति।

पाति रक्षति **जिह्वापः** । ग्रामाणां शार्दूलो व्याघ्रः **ग्रामशार्दूलः** । कुक् शब्दं करोतीति **कुक्कुरः**[1] । कुर् शब्दे । कुकुरश्च । रात्रौ जागर्ति **रात्रिजागरः** । लेड्वहः । बुक्कणः । भषणः । मृगदंशः । शालावृकः ।

हेम चाष्टापदं स्वर्णं कनकार्जुनकाञ्चनम् ।
सुवर्णं हिरण्यं भर्म जातरूपं च हाटकम् ॥ ९३ ॥
तपनीयं कलाधौतं कार्तस्वरशिलोद्भवम् ।

पञ्चदश स्वर्णे । हिनोति वर्धतेऽनेन **हेमन्** । नान्तम् । अदन्तं हेमं च । अष्टसु लोहेसु पदं प्रतिष्ठाऽस्य **अष्टापदम्** । "अष्टनः[2] संज्ञायाम्" इति दीर्घः । शोभनो वर्णोऽस्य **स्वर्णम्** । उकारलोपः । अथवा समासे वर्णस्य वा वलोपमाहुः । यथा पञ्चार्णो मन्त्रः । कनति दीप्यते **कनकम्** । "कनिचनिभ्यामकः[3]" । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । अर्ज सर्ज अर्जने । **अर्जतीत्यर्जुनम्**[4] । "ऋकृतॄवृञ्यमि[5]दार्यर्जिभ्य उनः" । काञ्चति शोभां बध्नाति **काञ्चनम्** । शोभनो वर्णो यस्य **सुवर्णम्** । उभयम् । पुण्यं जिहीते **हिरण्यम्** । अथवा ओहाक् त्यागे । हीयते हिरण्यम् । "हो[6] हिरश्च" अस्मादन्यः प्रत्ययो भवति हिरादेशश्च । भ्रियते धार्यते नान्तम् **भर्मन्** । अदन्तं च भर्मम् । जातं रूपं यस्य **जातरूपम्**[7] । क्लीबे । तथा च [8]यशस्तिलके—"असङ्गस्पृहोऽपि जातरूपस्पृहः ।" हटति **हाटकम्**[9] । हट दीप्तौ । अग्निना तप्यते **तपनीयम्** । कला धावति गच्छति **कलधौतम्**[10] । कृतस्वराकरे भवं **कार्तस्वरम्** । शिलायाः पाषाणादुद्भवो यस्य **शिलोद्भवम्** । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । कर्बुरम् । चामीकरम् । महारजतम् । रुक्मम् । रुम्मम् । जम्बूनदम् । कल्याणम् । गिरिकं । चन्द्रवसु च ।

रूप्यं रजतं गुलिका-

त्रयो रूप्ये । रूप्यते जना मुह्यतेऽनेन **रूप्यम्**[11] । जनं रजति **रजतम्** । रज्यते हेम्ना रजतं वा । गुड रक्षायाम् । गुडति रक्षति आपदः सकाशाद् **गुलिका** । गुडिका च । कलाधौतम् । तारम् । सितम् । दुर्वर्णम् । खर्जूरम् । श्वेतम् ।

शुक्तिजं मौक्तिकं तथा ॥ ९४ ॥

द्वौ मौक्तिके । शुक्त्या जलादियानोपकरणद्रव्यविशेषाज्जातम् **शुक्तिजम्** । मुक्तानां समूहो **मौक्तिकम्** । समूहेऽर्थे इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वार्थं रा द्रविणं धनम्-
कस्वरं

दश धने । विन्दति पुण्यकृतं **वित्तम्** । धात्वर्थेन व्युत्पत्तिः क्रियतेऽमरकीर्तिना । 'विद्लृ लाभे । विद् । विद्यते स्म भुज्यते (स्म) वित्तम् । निष्ठाक्तः । "भित्तर्णवित्ताः[12] शकलाधमर्णभोगेषु" वित्तमिति

---

१. कुक् इति शब्दं कुरति उच्चारयतीति विग्रहः । इगुपधत्वात्कप्रत्ययः । यद्वा कोऽस्ति ऽस्थ्यादिकमादत्ते कुक् । "कुक् आदाने" । क्विप् । कुरति शब्दायते कुरः । कुक् चासौ कुरश्चेति विग्रहः । २. पा० सू० ६।३।१२५ । ३. का० उ० सू० ३।४९ । ४. अर्ज्यते पुण्यैरर्जुनम् । ५. का० उ० सू० २।६० । ६. का० उ० सू० ३।३ । ७. अकृतकरूपमित्यर्थः । अथवा प्रशस्तं जातं जातरूपम् । प्रशंसायां रूपप्रत्ययः । ८. सुदत्तमुनिवर्णने आ० । ९. हाटकाकरप्रभवत्वाद् वा हाटकम् । १०. कला सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यस्मादिति कलधौतम् । ११. रूप रूपक्रियायाम् । ण्यन्तः । अचो यत् । १२. का० सू० ४।६।११४ ।

निपातः । निपातस्येड् न भवति । "दाद्दस्य[1] च" तो नो न भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । "कमि[2]-मनिजनिवसिहिभ्यश्च" एभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवति । वसति सुखमनेन वसु । "पय्य[3]सिवसिहनिमनि-त्रपीन्दिकन्दित्रभिवह्यणिभ्यश्च" एभ्य एकादशभ्यः उः प्रत्ययो भवति । द्रूयते गम्यते द्रव्यम् । परं स्यति अन्तं नयति अथवा पुण्यं स्वनति स्वः[4] स्वम् । उभयम् । पुण्यकृतमियर्त्ति अर्थम् । गुणान् राति रैः । "राते[5]र्डैः ।" स्त्रीत्रोः । द्रूयते गम्यते द्रविणम् । दधाति धारयति सारत्वं धनम् । कश गतौ । कशतीत्येवं शीलं कस्वरम् । "[6]कसिपिसिथासीशस्थाप्रमदां च" वरप्रत्ययः । द्युम्नं । सारम् । स्वापतेयम् । ऋ-क्थम् । रिक्थम् । हिरण्यम् । विभवः ।

तत्पतिं प्राहुः कुबेरं चैकपिङ्गलम् ॥ ९५ ॥
वैश्रवणं राजराजमुत्तराशापतिं तथा ।
अलकानिलयं श्रीदं धनपर्यायदायकम् ॥ ९६ ॥

सत कुवेरे । तस्य पतिः तत्पतिः तं कुबेरं प्राहुर्ब्रुवन्ति । वित्तपतिः । वसुपतिः । वस्तुपतिः । द्रव्यपतिः । स्वपतिः । अर्थपतिः । रा(रै)पतिः । द्रविणपतिः । धनपतिः । कस्वरपतिः । इत्यादिपर्यायनामानि कुबेरस्य ज्ञातव्यानि । कुत्सितो वेरो देहः कुब्जत्वाद्यस्य स कुबेरः । पिङ्गलैकनेत्रत्वादेकपिङ्गलः । विश्र-वसोऽपत्यमणि शिवादित्वात् । णादेशो वैश्रवणः । राज्ञां यक्षाणां राजा राजराजः । उत्तराशायाः पतिः उत्तराशापतिः । अलका निलयो गृहं यस्य अलकानिलयः । श्रियं दयते श्रीदः । धनपर्यायदायकः । धनदायकः । धनदः । वित्तदायकः । वित्तदः । वसुदायकः । वसुदः । द्रव्यदायकः । द्रव्यदः । स्वदायकः । स्वदः । रैदायकः । रैदः । द्रविणदायकः । द्रविणदः । कस्वरदायकः । कस्वरदः ।

राष्ट्रं जनपदो निर्गो जनान्तो विषयः स्मृतः ॥

पञ्च जनपदे । राजते राष्ट्रम् । तथा च सोमनीतौ[7]—"पशुधान्यहिरण्यसंपदा राजते शोभते इति राष्ट्रम्" । जनी प्रादुर्भावे । जन् । जायते कश्चित्तमन्ये प्रयुञ्जते ।"धातोश्च[8]हेतौ"इन् प्रत्ययः । अस्योप० दीर्घः । जानिरिति जातम् । [9]जनिवध्योश्च" ह्रस्वः । जनि जातम् । जनयन्ति प्रजां धनमिति जनाः । "अच्[10] पचादिभ्यः"अच् प्रत्ययः ।"कारितस्याना०[11]"कारितलोपः । पद गतौ । पद् । जनैर्वर्णाश्रम-लक्षणैः पद्यते गम्यते प्राप्यते आश्रीयत इति जनपदः ।"अच् पचादेः[12]"अच् प्रत्ययः । जनपद इति जातः । तथा च सोमनीतौ—"[13]जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा स्थानमिति जनपदः ।" निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गः । "निर्गो[14] देशेऽधिकरणे" इति डप्रत्ययः । देशादन्यत्र—निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो गिरिः । जनानामन्तो निकटे जनान्तः । षिञ् बन्धने । "धात्वादेः[15] षः सः" सि० विपू० । विषिण्वन्ति अस्मिन्निति विषयः । "पुंसि संज्ञायां[16] घः "नाम्यं०[17]" गुणः । "ए[18] अय्" तथा । च सोमनीतौ—"[19]विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्मनि गजान् वाजिनश्च सिनोति बध्नातीति विषयः ।"

पूः पुरी नगरं चैव पट्टनं पुटभेदनम् ॥ ९७ ॥

---

१. का० सू० ४।६।१०२। २. का० उ० सू० १।२७। ३. का० उ० सू० १।६। ४. "षोऽन्त-कर्मणि" । वप्रत्ययः । "स्वन शब्दे" डप्रत्ययो वा । ५. का० उ० सू० २।२७। ६. का० सू० ४।४।५७। ७. जन० समु० १। ८. का० सू० ३।२।१०। ९. का० सू० ३।४।६७। १०. का० सू० ४।२।५८। ११. का० सू० ३।६।४४। १२. घञर्थे कविधानम्, पुंसि संज्ञायां घः इति कर्मणि कप्रत्ययो घप्रत्ययो वा वक्तव्यः। न तु पचाद्यच्; तस्य कर्तरि विधानात् । १३. जन० समु० ५। १४. हे०श० ५।१।१३३। १५. का०सू० ३।८।२४। १६. का० सू० ४।५।६६। १७. का० सू० ४।५।१। १८. का० सू० १।२।१२। १९. जन० समु० ३।

षट् (पञ्च) नगरे। पॄ पालनपूरणयोः। पॄ। क्र्यै०। पृणातीत्येवंशीला **पूः**। "[१]क्विब्भ्राजिपॄधुर्वि-भासाम्" क्विप्। "[२]उरोष्ठ्योपधस्य च" उर्। पुर् जातम्। "[३]नामिनोर्वोर०" पूर्। वेर्लोपः[४]। सिः। "व्यञ्जनाच्च[५]" सिलोपः। "[६]रेफसोर्विसर्जनीयः" रस्य विसर्गः। पूः। अदन्तः। पुरं **पुरी** च। इदन्तोऽपि पुरिः। नगाः सन्त्यत्र, ग्राम्यत्वं नश्यत्यत्र वा **नगरम्**[७]। क्लीबे। नगरी च। नानादिग्देशागतानां वणिजां भाण्डानि पतन्त्यत्र **पत्तनम्**। पट्टनं च। अत्र स्मृतिभेदः—

> "पट्टनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा।
> नौभिरेव तु यद्गम्यं पत्तनं तत्प्रचक्षते॥"

पुटा वासा भिद्यन्तेऽत्र **पुटभेदनम्**। क्लीबे। अधिष्ठानम्। निगमः। द्रङ्गः। स्थानीयम्।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम्।

षण्मुखे। वच परिभाषणे। उच्यतेऽनेन **वक्त्रम्**। "सर्वधातुभ्यः[८] ष्ट्रन्"। रप् लप् जल्प् व्यक्तायां वाचि। लप्यतेऽनेन **लपनम्**। युट्। अस्यतेऽस्मिन्न**आस्यम्**[९]। "[१०]कृत्यल्युटो बहुल"मिति ण्यच्। वद व्यक्तायां वाचि। उद्यतेऽनेन **वदनम्**। महति मुह्यति स्तोत्रेण वा **मुखम्**[११]। खन्यते वा मुखम्। उणादौ। सुख दुःख तत्क्रियायाम्। चौरादिकत्वादिन्। सुखयति अन्नादिखादनेनेति मुखम्। "सुखेः[१२] को मुखिश्च"। सुखेः कः प्रत्ययो भवति धातोर्मुखिश्च। इकार उच्चारणार्थः। आ अनिति श्वसित्यनेन **आननन्**। तुण्डम्।

श्रवणं श्रोत्रं श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुतिं विदुः॥ ६८॥

पञ्च कर्णे। श्रूयतेऽनेन **श्रवणम्**। श्रूयतेऽनेन **श्रोत्रम्**। क्लीबे। शृणोत्यनेन सान्तम् **श्रवः**। क्लीबे। करोति शब्दावधानं **कर्णः**[१३]। कर्णयति वा कर्णः। छिद्रः कर्णभेदे। श्रूयतेऽनया **श्रुतिः**। स्त्रियाम्। **विदुः** कथयन्ति।

दृगक्षि चक्षुर्नयनं दृष्टिर्नेत्रं विलोचनम्।

सप्त नेत्रे। दृश्यतेऽनया **दृक्**। तालव्यान्तः। अशू व्याप्तौ। अश्नुते व्याप्नोत्यनेनात्मा घटादीनर्थानिति **अक्षि**। "[१४]अशिकुषिभ्यां सिक्"। चष्टे हृदयाकूतं सान्तम् **चक्षुः**। "[१५]अपूर्वपिचक्षिजीवतनिधनिभ्य उस्"। नीयते चित्तं विषयेषु अनेन **नयनम्**। दृश्यते प्रकटार्थोऽनया **दृष्टिः**। नीयतेऽनेन दृश्यं **नेत्रम्**। उभयम्। विशेषेण लोच्यते अवलोक्यतेऽनेन **विलोचनम्**। अक्षम्। तारका। ज्योतिः।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम्॥ ६९॥

तस्य नेत्रस्य वैकृते षट् (पञ्च)। कटयतीति [१६]**कटाक्षम्**। उभयम्। के (शिरसि)

---

१. का० सू० ४।४।५७। २. का०सू० ।३।५।४३। ऋकारस्योत्वम्। ३. का०सू० ३।८।१४। इति दीर्घः। ४. का० सू० ४।१।३४। ५. का० सू० २।१।४६। ६. का० सू० २।३।६३। ७. "नगपांसुपाण्डुभ्यश्चेति" पा० सू० ५।२।१०७। वार्तिकेन मत्वर्थीयो रः। अथवा नश् धातोरौणादिकोऽरप्रत्ययः शस्य गत्वे च। ८. का० उ० सू० ४।३१। ९. आस्यन्दतेऽम्लादिना प्रस्रवत्यत्रेति। १०. "कृत्यल्युटोऽन्यत्रापि" इति का० सूत्रम्। ४।५।९२। टीकोक्तयथाश्रुतसूत्रन्तु पाणिनीयम् ३।३।११३। ११. खन्यतेऽवदार्यते फलादिकमनेनेत्यपि। "दित्खनेर्मुट् चोदात्तः" उ० अच् स च डित् मुडागमश्चेत्यन्यत्र। "मुदितानि खानीन्द्रियाण्यत्रेत्येके" इति क्षीर० स्वा०। १२. का०उ०सू० ६।६५। १३. टीकोक्तविग्रहे करोतेरौणादिको णप्रत्ययः। कीर्यते शब्दग्रहणाय क्षिप्यते, कीर्यते शब्दोऽस्मिन्निति वा, किरति शरीरे मलमिति वा। १४. का० उ० सू० ६।५७। १५. का० उ० सू० २।४६। १६. कटेऽतिशयितेऽक्षिणी यत्र, कटं गण्डमक्ष्णाति व्याप्नोति वेति रामाश्रमः। कटे आक्षिपतीति क्षीरस्वा०।

किरति विक्षेपं क्षिपतीति (कर्पतीति) **केकरः**। न पाति कामिनम**पाङ्गः**[1]। उभयम्। विभ्रमणं **विभ्रमः**। विकृतस्य भावो **वैकृतम्**।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्ठे वर्णितो दशनच्छदः।

चत्वारश्चतुर्थे ओष्ठे। दन्तानां वासो **दन्तवासः**। अवति शोभाम**धरः**। "अधो[2] भवोऽधरो वा। ओष्ठाभ्यां सहितावधरौ वा। अधरोऽप्योष्ठमात्रे वर्तते"। उषति दहति सपत्नीहृदय**मोष्ठः**। उष्यते तीक्ष्णाहारेणौष्ठो वा। **वर्णितः** कथितः। दशनस्य छदो [3]**दशनच्छदः**।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धमः॥ १००॥

षड् गले। शिरो धरति **शिरोधरः**। शिरोधरा च। गलति भोजनं **गलः**। गृणाति गिरति वा **ग्रीवा**। उणादौ गृशब्दे गृणातीति ग्रीवा। "शर्वजिह्वाग्रीवाः[4]" एते क्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। कणति **कण्ठः**। "कण्ठः[5]" अस्माट्ठप्रत्ययो भवति। धमः सौत्रो धातुः। धम्यतेऽनया **धमनिः**। इदन्तः। स्त्रियामीः। **धमनी**। धमति **धमः**। मन्या। कन्धरा।

दोर्दोषा च भुजो बाहुः—

चत्वारो बाहौ। दम्यते विनीयते परोऽनेन **दोः**। सान्तम्। "[6]दमेर्डोस्"। दूषयति दुष्टं वा इति **दोषा**। आदन्तः। अव्ययः। न व्ययते। भुज्यतेऽनेन **भुजः**। निपातनात् चजोः कगत्वं न भवति। नामिन इति गुणश्च न भवति। "भुजन्युब्जौ[7] पाणिरोगयोः" इत्यस्मिन्नर्थे निपातनात्। भुजा च। वहत्यनेनेति **बाहुः**। "वहिस्वदि[8] (रहि) तलि पंशिभ्य उण्"। प्रकोष्ठः।

पाणिर्हस्तः करस्तथा।

त्रयो हस्ते। पणायते व्यवहरत्यनेन **पाणिः**। "[9]अजिजन्यतिरशिपणिभ्यः" एभ्य इञ् भवति। हसते **हस्तः**। [10]हसेस्तः। कीर्यते क्षिप्यतेऽनेन **करः**। शयः। शम[11]इत्यन्यः। पञ्चशाखः।

प्राहुर्बाहुशिरोंऽसश्च—

बाहुशिरसोः **अंस** इति संज्ञां **प्राहुः** कथयन्ति। अस्यते भारेणांसः[12]। स्कन्धश्च।

हस्तशाखा कराङ्गुलिः॥ १०१॥

द्वौ अङ्गुल्याम्। हस्तस्य शाखा इव **हस्तशाखा**। आकुञ्चनादिकर्माणि अङ्गति गच्छति **अङ्गुलम्**। स्त्रीक्लीबे। अङ्गुली। करस्याङ्गुलिः[13] **कराङ्गुलिः**। एवमङ्गुरम्। अङ्गुरी।

नासा घ्राणम्—

---

१. अपाङ्गतीत्यपाङ्गः। "अगि गतौ"। अच्। २. "अधो भवः" इत्यारभ्य "वर्तते" इत्यन्तं क्षीरस्वामिभाष्यमत्रोद्धृतम्। तद्भाष्ये "ओष्ठाधरौ तु" इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्यारूपम् "ओष्ठाभ्यां सहितावधरौ" इति वाक्यमन्धानुसरणेनात्रोद्धृतमप्रस्तुतमिति विवेकः। ३. दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति तदाशयः। पुंसि संज्ञायां घः। ४. का० उ० सू० २।२। ५. का० उ० सू० १।४२। ६. का० उ० सू० २।३१। ७. का० सू० ४।६।६४। ८. का० उ० सू० १।३। ९. का० उ० सू० ४।६। १०. का० उ० सू० ४।२७। "मृगृवाहस्यमिदमिलूपूभ्यस्तः" इति पूर्णं सूत्रम्। ११. अत्र प्रमाणम्—"पाणिः शयः शमो हस्तः" इत्यमरमाला। "पञ्चशाखः शयः शमः" इति अभि० चि०। १२. अस्यते समाहन्यते इत्यर्थः। "अंस समाघाते"। अंस धातुश्चुरादिः। यद्वा "अम गतौ" अमति अम्यते वा अंसः। औणादिकः सन्प्रत्ययः। १३. अङ्गुल इत्यत्र "अङ्गेरुलः" का० उ० सू० ६।४८। इत्यङ्गधातोरुलप्रत्ययः। अङ्गुलिशब्दे तु "अङ्ग्यतिभ्यामुलीयि" का० उ० ३।३०। इत्युलिप्रत्ययः। स्त्रियामीः। अङ्गुली इत्यपि।

द्वौ नासिकायाम् । नासते शब्दायते नास्यतेऽनया वा **नासा**[1] । नेस्ना[2] च । जिघ्रत्यनेन **घ्राणम्** । क्लीबे । सिङ्घनी । नासिका । घोणा ।

उरो वक्षः

द्वौ भुजमध्ये । अर्यते गम्यते **उरः**[3] । [4]"अर्तेरुश्च" अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति । ऋ गतौ । अस्य धातोः प्रयोगः । वक्ति वाणीं **वक्षः** । "वचेः[5] सोऽन्तश्च" अस्मादसन् प्रत्ययो भवति सोऽन्तः । अकार उच्चारणार्थः । [6]चवर्गस्य किः । "[7]निमित्तादि" त्यादिना षत्वं च ।

कुक्षिः स्याज्जठरोदरम् ।

त्रयो जठरे । कुषति (कुष्णाति) निष्कर्षत्याहारं **कुक्षिः**[8] । पुंसि । कुक्षम् । क्लीबे । जमति **जठरम्** । अथवा जठ सौत्रोऽयं धातुः । उणादौ निपातोऽस्ति । उनत्ति क्लेदयत्याहार**मुदरम्** । एते उभयम् । पिचण्डम् । तुन्दम् ।

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोज इति वर्णितः ॥ १०२ ।

चत्वारः कुचौ । स्तन्यते बालैः [9]**स्तनः** । पयो धरतीति **पयोधरः**[10] । कोचते स्त्री मृद्यमानेऽत्र, कुच्यते मर्दनेन आकुलीक्रियते वा **कुचः** । कूचश्च । वक्षसि जातो **वक्षोजः** । उरसिजः । वक्षोरुहः ।

कटिर्नितम्बं श्रोणी च जघनं–

चत्वारः कट्याम् । कट्यते वस्त्रैराच्छाद्यते **कटिः** । कटी । कटः । कटम् । नितरामतिशयेन तम्यते काङ्क्ष्यते[11] **नितम्बः** । आश्रीयते कामिभिः श्रोणः । नदादित्वादीः । **श्रोणी** । इदन्तोऽपि श्रोणिः[12] । स्त्रियामीः । श्रोणी । हन्ति चित्तमिति **जघनम्** । "[13]हनेर्जघश्च" । चकारात् काञ्चीपदम् । कलत्रम् । कडत्रम् । जघनम् । ककुद्मती । आरोहः । कटीरम् । त्रिकस्थानकम् । स्थानपदाभावेऽपि त्रिकम् । फलकं च ।

जानु जहु च ।

द्वौ जानौ । गन्तुं जायते **जानुः**[14] । "[15]कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूहृसनिजनिचरिचटिभ्य उण्" । जहाति [16]**जहुः** । अष्ठीवान् । जङ्घा[17] ।

चलनं चरणं पादं क्रमोऽङ्घ्रिश्च पदं विदुः ॥ १०३ ॥

---

१. "णास शब्दे" । नास् धातुः । अच् घञ् वा । २. नेदमतोऽन्यत्र समुपलब्धम् । ३. अर्यते गम्यते बलेनेति शेषः । अथवा उरस् बलार्थः कण्ड्वादिः । उरस्यति बलमाधत्ते उरः । क्विप् । ४. का० उ० सू० ४।६७। ५. का०उ०सू० ४।६२। ६. का०सू० ३।६।५५। "चवर्गस्य किरसवर्णे" । इति पूर्णं सूत्रम् । ७. का० सू० ३।८।२६। "निमित्तात्प्रत्ययविकारागमस्थः सः षत्वम्" इति पूर्णं सूत्रम् । ८. "कुष निष्कर्षे" "अशिकुषिभ्यां सिक्" का०उ०सू० ६।५७। ९. "स्तन गदी शब्दे" स्तनति कथयति यौवनोदयम् । स्तन्यते वर्ण्यते कामुकैर्वा स्तन इत्यन्यत्र । १०. धरतीति धरः । पचाद्यच् । पयसो धरः पयोधरः । इति बोध्यम् । टीकोक्तविग्रहे तु कर्मण्यणि पयोधार इति स्यात् । "११. तम्ब गतौ" नितम्बति गच्छतीति, निभृतं तम्यते कामुकैः निभृतं ताम्यति सुरतसम्मर्दाद्वा नितम्ब इति रामाश्रमः । १२. श्रूयते किङ्किणिध्वनिरत्र "श्रु श्रवणे" औणादिको णिः । इति हेमचन्द्रः । "श्रोणृ सङ्घाते" श्रोणति विविधशरीरावयवैः सङ्घातोभवतीति श्रोणिः । "सर्वधातुभ्य इन्" इति रामाश्रमः । १३. का० उ० सू० २।३७। १४. जायते ज्ञानेनाकुञ्चनादि जानुरिति हेमचन्द्रः । १५. का०उ०सू० १।१। १६. नात्र कोषान्तरप्रमाणमुपलब्धम् । १७. यद्यपि जानोरध आगुल्फान्तं जङ्घा, जङ्घाजघनयोः सन्धिर्जानुरिति भेदः । तथापि जङ्घासामीप्याद् भेदाविवक्षया जानुपर्यायो जङ्घेत्युक्तम् । तत्र भेदस्तु न विस्मर्तव्यः ।

पद् चरणे । चाल्यते **चलनम्**[१] । चरत्यनेन **चरणम्** । पद्यतेऽनेन **पादः** । घञ् । दान्तोऽपि पाद् । 'क्रमु पादविक्षेपे' । क्राम्यत्यनेनेति **क्रमः** । 'अहि गतौ'[२] । इदनुबन्धत्वान्नागमः : अंहत्यनेनेत्यंह्रिः । "[२]अंहेरिः" अंहेर्धातोरिप्रत्ययो भवति । अङ्घ्रिश्च । पद्यते **पदम्** । क्लीबे ।

शिरो मूर्धोत्तमाङ्गं कम्–

चत्वारो मस्तके । शॄ हिंसायाम् । शीर्यते हिंस्यते **शिरः** । "[३]उपिरंजिशॄभ्यो यण्वत्" एभ्योऽसन् प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । तेनागुणः । अनुपङ्गलोपः । 'मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः ।' मूर्छन्त्यन्याहताः प्राणिनो **मूर्धा** । [४]पृषादयः––"पूषन्नर्यमन्मनन्नुक्षन्श्वन्लीहन्मातरिश्वन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्यूषन्" एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । उत्तमं च तद् अङ्गम् **उत्तमाङ्गम्** । कै गै शब्दे । कायतीति **कम्** । शीर्षम् । मस्तकः । [५]कन्याङ्गं च नानार्थे ।

प्रारभ्यं प्रेरितेरितम् ।

त्रयः प्रेरणे । प्रारभ्यते **प्रारभ्यम्** । "[६]शकिसहिपवर्गान्ताच्च" यः प्रत्ययः । ईर गतौ कम्पने च । प्रेर्यते **प्रेरितम्** । **ईरितम्** । "नपुंसके भावे क्तः" ।

साम्प्रतं सरस्वतीनामानि प्रारभ्यन्ते आचार्यश्रीमदमरकीर्तिना–

वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती ॥ १०४ ॥

सत वाण्याम् । उच्यते **वाक्** । "[७]वचिप्रच्छिश्रिद्रुश्रुपुज्वां क्विब् दीर्घश्च" एभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति दीर्घश्चस्वरस्यैषाम् । वक्ति **वचः**[८] । "[९]सर्वधातुभ्योऽसन्" । उच्यते **वचनम्** । वाण्यते वाणिः[१०] । क्त्रियामीः । **वाणी** । बिभर्ति जगद् धारयति, भरतो ब्रह्मा तस्येयं **भारती** । तथा च—

"आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।
ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

गीर्यते उच्चार्यते रान्तं **गीः** । सरः प्रसरणमस्त्यस्याः **सरस्वतीः** । ब्राह्मी । तथाहि—

"गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति ॥"

सिंहद्विपघने गर्जः–

सिंहे कण्ठीरवे, **द्विपे** गजे, **घने** मेघे च **गर्जः**[११] शब्दः कथ्यते । गर्जनं **गर्जः** ।

हेषाऽश्वे

अश्वानां शब्दे **हेषा** । हेषणम् । हैषा हेषा च ।

बृंहितं गजे ।

गजशब्दे **बृंहितम्** । बर्हणम् ।

स्फीत्कृतं धेनुकलभे–

---

१. चलत्यनेनेति चलनमिति सुवचः । २. अत्राभिधानचिन्तामणिः प्रमाणम् –"चरणः क्रमणः पादः पदोऽङ्घ्रिश्चलनः क्रमः" । इति । ३।२८०। ३. का० उ० सू० ४।५९। ४. का०उ० सू० २।५। ५. अत्र प्रमाणान्तराभावः । वराङ्गं कमनीयाङ्गमिति वा स्यात् । ६. का०सू० ४।२।११। ७. का०उ०सू० २।२३। ८. उच्यते वच "इति कर्मणि विग्रहो युक्तः । ९. का० उ० सू० ४।५६। १०. "वण शब्दे" चुरादिः । ११. सिंहगजमेघध्वनौ गर्जशब्दः प्रयुज्यते । एवं वक्ष्यमाणतत्तद्ध्वनौ सर्वत्र योज्यम् ।

धेनुकलभे शिशुवत्से **स्फीत्कृतं**[1] स्फीत्‌शब्दः कथ्यते ।

स्तमितं जलदे तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेघे मेघानां शब्दे **स्तनितं** कथ्यते । स्तन्यते **स्तनितम्** ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटे च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे **चीत्कृतं** कथ्यते । **मन्त्रे भटे च** हुंशब्दः कथ्यते । हुं मन्त्रे, हुं परिप्रश्ने हुं सत्त्वं सुप्टु ते भयादौ राक्षसोऽयम् । कुत्सने हुं निर्लज्जा । अनिच्छायाम् हुं हुं मुञ्च ।

सीत्कृतं मणितं कामे—

कामे कन्दर्पभोगप्रस्तावशब्दे **सीत्कृतं मणितम्** । सीत्क्रियते सीत्कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खनत्कृतं शृङ्खलायुधे ॥ १०६ ॥

शृङ्खलाऽयुधे खनत्कृतम् । सुगमम् ।

मञ्जीरकं तुलाकोटिर्नूपुरं—

त्रयः स्त्रीणां चरणाभरणे । मञ्जिः सौत्रः । मञ्जत्याकर्षति चित्तं **मञ्जीरम्** । अथवा मञ्जु मधुरं नीरयति मञ्जीरम् । तुलाकृतेर्जङ्घाया कोटिरिव **तुलाकोटिः**[2] । स्त्रीगतिं नौतीति **नूपुरम्**[3] । शिञ्जिनी । पादकटकः । हंसकम् । पदाङ्गदम् । कलापो नानार्थे ।

तत्र संसृतम् ।

तत्र तस्मिन् मञ्जीरके तच्छब्दे **संसृतं** कथ्यते ।

झाङ्कृतं चाथ मरुति—

मरुति वायौ तच्छब्दे **झाङ्कृतं** कथ्यते ।

क्रेङ्कृतं क्रौञ्चहंसयोः ॥ १०७ ॥

क्रौञ्चश्च हंसश्च क्रौञ्चहंसौ तयोः **क्रौञ्चहंसयोः क्रेङ्कृतशब्दो मतः** कथितः । तथा[4] चामरसिंहः—

"निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥"

तथा च भरतनाटके[5]—

[6]"षड्जं मयूरा ब्रुवते गावस्त्वृषभभाषिणः ।
आजाविकं तु गान्धारं क्रौञ्चः क्वणति मध्यमम् ॥
पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् ।
धैवतं हेषते वाजी निषादं बृंहते गजः ॥
नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संस्पृशन् ।
षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः ॥"

---

१. नवप्रसूता गौ धेनुः त्रिंशदब्दो हस्तिशावकः कलभस्तयोः शब्दः स्फीत्कृतमुच्यते इति शब्दार्थः । टीकाकारस्यन्तु गोवत्सशब्दः स्फीत्कृतमित्येव प्रतिभाति । अत्र कोशान्तरप्रमाणाभावात्कविप्रयोगादर्शनाच्च मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २. तुलां तुलया वा कोटयति । कुट प्रतापने चुरादिः । अच इः । यद्वा तुलाकारः कोटिरग्रमस्येति रामाश्रमः । ३. नुवन नूयते वा नूः । णू स्तवने । क्विप् । नुवि पुरति नूपुरम् । पुर अग्रगमने । इगुपधेति कः । ४. शब्दभेदप्रसङ्गाद् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दभेदं स्वरभेदं चाह । ५. अम० को० १।७।१। ६. "षड्जं" इत्यारभ्य "इति स्मृतः" इत्यन्तः "तथा च भरतनाटके" इत्येवं टीकायामुपन्यस्तः पाठः "निषादर्षभगान्धार"—इति क्षीरस्वामिभाष्येऽनेकेऽविकल उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

षट् स्मृते । प्रतीयते **प्रतीतम्** । ष्टुञ् स्तुतौ । ष्टु । "धात्वादेः षः सः ।" स्तुः सम्पूर्वः । सम्यक्-प्रकारेण स्तूयते स्म **संस्तुतम्** । लभ्यते स्म **लब्धम्** । परिचीयते स्म **परिचितम्** । स्मर्यते स्म **स्मृतम्** ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासुं च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

चत्वारो मृते । संतिष्ठते स्म **संस्थितः** । सम्पूर्वकस्तिष्ठतिः । दशमीं तिष्ठतीति **दशमीस्थः** । तथा च—

"प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे भजते ज्वरम् ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे भुक्तं न रोचते ।
सप्तमे स्यान्महामूर्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥
नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यतेऽसुभिः ।
एतैर्वेगैः समाक्रान्तो जीवस्तत्त्वं न पश्यति ॥"

दशानां पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता असवोऽस्य **परासुः** । म्रियते स्म **मृतं विदुः** कथयन्ति ।

खेदो द्वेषोऽप्यमर्षश्च रुट्कोपक्रोधमन्यवः ।

सप्त क्रोधे । खिद परिघाते । तुदादौ खिन्दति । दैन्ये रुधादिपाठात् खिन्ते (ततः खेदनं) [1]**खेदः** । भावे घञ् प्रत्ययः । द्विष् अप्रीतौ अदादौ । द्वेषणं **द्वेषः** । मृष तितिक्षायाम् । चुरादौ । शक मृष क्षमायाम् । दिवादौ विभाषितः । मृषु सहने भ्वादौ परस्मैपदी । अमर्षणम् **अमर्षः** । कुप क्रुध रुष रोषे । रोषणं **रुट्** । सम्पदादित्वाद्भावे क्विप् । कोपनं **कोपः** । क्रोधनं **क्रोधः** । मन ज्ञाने । मन्यते[2] **मन्युः** । "[3]जनिमनिदसिभ्यो युः" । एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वाद्योरनादेशो न भवति ।

हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुत्तोषानन्दमुत्सवः ॥१०९॥

सप्त हर्षे । हर्षणं **हर्षः** । प्रहर्षश्च । प्रमोदनं **प्रमोदः** । मदी हर्षे । प्रमदनं **प्रमदः** । "[4]मदेः प्रसमोर्हर्षे" प्रसमोरुपपदयोर्मदेरल् भवति हर्षार्थे । मोदनं **मुद्** दान्तः स्त्रियाम् । तुष तुष्टौ । तोषणं **तोषः** । आनन्दनम् **आनन्दः** । पुंसि । टुनदि समृद्धौ । उत्सवनम् **उत्सवः** । प्रीतिः । उत्कर्षः । उद्धवः[5] ।

कृपाऽनुकम्पानुक्रोशोऽहन्तोक्तिः करुणा दया ।

षड् दयायाम् । क्रप कृपायाम् । क्रपणं **कृपा** । "[6]षानुबन्धभिदादिभ्योऽङ्" इत्यङ् । "क्रपेः[7] सम्प्रसारणम्" इति परसूत्रेणाङ् सम्प्रसारणं च । स्वमते[8] क्रप कृपायाम् इति ज्ञापकात् सम्प्रसारणम् । "स्त्रियामादा ।" अनुकम्पनम**नुकम्पा** । अनुक्रोशन्त्यनेन **अनुक्रोशः** । पुंसि । न हन्तोक्तिः **अहन्तोक्तिः** । **करोति** विषादं चित्तं किरति वा **करुणा** । उणादौ डुकृञ् करणे । क्रियते **करुणा** । "ऋकृतृवृञ्दमिदार्य-[9]

१. द्वेषपर्याये खेदपाठश्चिन्तनीयः । खेदपर्यायस्तु "शोकः शुक् शोचनं खेदः" इति अभि० चि० । क्रोधपर्यायस्तु—"कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ" इत्यमरः । २. मन्यते त्याज्यत्वेनेति शेषः । ३. का० उ० सू० ४।१। ४. का० सू० ४।५।४४। ५. उद्धवशब्दस्योत्सवार्थे प्रमाणम्—"उद्धवो यादवभिदि महे च क्रतुपावके" । इति मेदि० को० वा० व० ३२ श्लो० । ६. का० सू० ४।५।८२। ७. "क्रपेः सम्प्रसारणं च" पा०गण सू० ३।३।१०४। ८. कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादिसूत्रं परमतम् । ९. का० उ० सू० २।६०।

ञिम्य उनः" एभ्य उनः प्रत्ययो भवति । दयनं **दया** । दय दानगतिहिंसादानेषु । भिदाद्यङ् ।

शेमुषी धिषणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽशयः ॥ ११० ॥

षड् बुद्धौ । शे इत्यव्ययम् । मोहः । तं मुष्णाति शमयति इति **शेमुषी**[1] । धृष्णोत्यनया **धिषणा**[2] । प्रज्ञानं प्रज्ञा[3] । मनुते जानात्यनया **मनीषा** । मनस ईषा मनीषा वा । "हल[4]लाङ्गलयोरीषे मनसश्च" इत्यनेन अन्त्यस्वरादेर्लोपः । अत्र सलोपश्च । चकाराधिकाराल्लोकोपचाराद्वा सलोपः । स्मृ ध्यै चिन्तायाम् । ध्यानं **धीः**[5] । सम्पदादित्वाद्भावे क्विप्[6] । 'ध्याप्योः सम्प्रसारणम्"[7]अनेनैव सम्प्रसारणं दीर्घत्वं च । प्र० सिः । "[8]रेफसोर्विसर्जनीयः" । आशेते तिष्ठति सर्वमत्राशयः । तथा–प्रेक्षा । प्रतिभा । बुद्धिः । मतिः । मेधा । संख्या । संवित्तिः । उपलब्धिः ।

प्राज्ञमेधाविनौ विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।
पण्डितः सूरिराचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृतः ॥ १११ ॥

दश विदुषि । प्रजानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादित्वादण् **प्राज्ञः** । मेधास्त्यस्य **मेधावी** । [9]"माया-मेधास्रजो विन्" वाधिकारात्सर्वे एवैते विभाषया विभाषिताः । शेषेभ्यो मतुरिष्यते । मतिमान् । बुद्धिमान् । विद ज्ञाने । विद । वेत्ति जानातीति **विद्वान्** ।[10]"वर्तमाने श०। शतृङ् । "[11]अन्वि०" अदादि[12]। "वेतेः [13]शतुर्वसुः" । शतृङ् स्थाने वसुः । तदादेशास्तद्वद्भवन्ति इति वचनात् वसोः शतृङ्वद्भावेन सार्वधातुकत्वात् "अर्त्तीण्[14]धयेसैकस्वरातामिड्वसौ" अनेनैकस्वरत्वात्प्रात इड् न भवति । विद्वन् संजातम् । "सिः । [15]सान्तमहतोर्नोपधायाः" दीर्घः । विदुषोऽपि । अभिगतं रूपं येना**भिरूपः** । रूपं विद्या ।

"कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रता ।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ।"

चक्ष धातुर्विपूर्वः । विविधं चष्टे **विचक्षणः** । नन्दादेयुः । योरनः । [16]रषृ० णत्वम् । विचक्षणो विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपातः । निपातस्य फलं ख्यादेशो न भवति । पण्डा बुद्धिः । पण्डा संजाताऽस्येति **पण्डितः** । "[17]तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् ।" "[18]इवर्णावर्ण०" आकारलोपः । सिः । रेफः । पूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते बुद्धिं **सूरिः** । "[19]भूस्वदिभ्यः क्रिः" एभ्यः क्रिप्रत्ययो भवति । को यण्वदर्थः । [20]आचर्यते **आचार्यः** । "चरेराङि चागुरौ" । तथा चोक्तम्—[21]इन्द्रनन्दिनीतिशास्त्रे–

"पञ्चाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः ।
चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य यः स आचार्य इष्यते ॥"

---

१. शेते इति शेर्मोहः । विच् । तम्मुष्णातीति, मूलविभुजादित्वात्कः । गौरादित्वान्ङीप् । शमेः क्सौ एत्वाऽभ्यासलोपे उगितश्चेति ङीपि शशामेति शेमुषीति क्षी० स्वा० । २. "धिष शब्दे" । देधेष्टीति । क्षी० स्वा० । ३. प्रज्ञायतेऽनयेत्यन्यत्र । ४. का० रू० पूर्वा० २८ सू० । ५. ध्यायतेऽनया धीरित्यन्यत्र । ६. "सम्पदादिभ्यः क्विप्" का० रू० उ० ८०५ सू० । . का० रू० मा० ६५८ सू० । ८. का० सू० २।३।६३। ६. का० सू० २।६।१५। अत्र दुर्गवृत्तिः । १०. "वर्तमाने शन्तृङानशाव-प्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयोः" । का० सू० ४।४।२। ११. "अन्विकरणः कर्तरि" का० सू० ३।२।३२। १२. "अदादेलुग्विकरणस्य" का० सू० ३।४।९२। १३. 'शन्तुर्वसुः" । का० सू० ४।४।४। १४. का० सू० ४।६।७६। १५. का० सू० २।२।१८। १६. का० सू० २।४।४८। १७ का० रू० पू० ५०८ । १८. का० सू० २।६।४४। १९. का० उ० सू० ३।५३ । २०. का० सू० ४।२।१४ । २१. नीतिसा० १५ श्लो० ।

प्रशस्ता वागस्त्यस्य **वाग्मी**। न्याये विचारे नियुक्तो **नैयायिकः**। धीरः। लब्धवर्णः। विपश्चित्। वृद्धः। आप्तरूपः। सन्। मनीषी। ज्ञः। दोषज्ञः। कोविदः। प्रबुद्धः। सुधीः। कृती। कृष्टिः[1]। कविः। व्यक्तः। विशारदः। संख्यावान्। मतिमान्।

पारिषद्यो बुधः सभ्यः सदः संसत्सभोचितः।

षद् सभापुरुषे। परिषदि सभायां भवः **पारिषद्यः**। यण्। बुध अवगमने। बोधतीति **बुधः**। सभायां साधुः **सभ्यः**। कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते। सदसि उचितो योग्यः **सदउचितः**। **संसदुचितः, सभोचितः**। सभासद्। सभास्तारः। सामाजिकः।

परिषत्सभाऽस्थानपती—

त्रयः सभायाम्। परिषीदन्त्यस्यां **परिषद्**। सह भान्त्यस्यां सभा। आसमन्तात्स्थीयतेऽस्मिन् **आस्थानम्**।

([2]**अधिपति राजा**)**पतिः**—आस्थानं सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपतिः **पति**रित्यादिपर्यायशब्देषु सत्सु राज्ञो नामानि भवन्ति। परिषदधिपतिः। परिषत्पतिः। सभाधिपतिः। सभापतिः। आस्थानाधिपतिः। आस्थानपतिः।

राजसूयो नृपक्रतुः ॥ ११२ ॥

मण्डलेश्वरप्रजायां (प्रयाजे) द्वौ। षुञ् अभिषवे। षु। "[3]धात्वा०" सः। राजन्पूर्वः राज्ञा सोतव्यो राज्ञा सूयते वा यस्मिन्निति **राजसूयः**। "[4]राजसूयश्च"। क्यप्प्रत्ययान्तो निपातः। नृपाणां राज्ञां क्रतुः **नृपक्रतुः**। तथा च [5]स्मृतौ—

"गोसवे सुरभिं हन्याद्राजसूये तु भूभुजम्।
अश्वमेधे हयं हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥"

विष्टरं मल्लिकापीठमासन्दीमासनं विन्दुः।

षडासने। स्तृञ् आच्छादने। विपूर्वः। विस्तरणं **विष्टरः**। "स्वर[6]वृद्दगमिग्रहामल्।" अल्। नाम्यन्तगुणः। "वौस्तृणातेः"। संज्ञायां सस्य षत्वम्। "[7]तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः।" मल्ल्यते धार्यते **मल्लिका**। पेठतीति **पीठम्**। [8]पृषोदरादित्वाद्दीर्घः। आ समन्तात्सीदति तिष्ठत्यस्या**मासन्दी**[9]। आस्यते

---

१. अत्र प्रमाणम् अभि० चि० ३।५। "विद्वान् सुधीः कविविचक्षणलब्धवर्णा ज्ञः प्राप्तरूपकृतिकृष्ट्यभिरूपधीराः। मेधाविकोविदविशारदसूरिदोषज्ञाः प्राज्ञपण्डितमनीषिबुधप्रबुद्धाः ॥ व्यक्तो विपश्चित्सङ्ख्यावान् सन्," इति। २. "अधिपती राजा" इति प्रतीकमाश्रित्य व्याख्यादर्शनादयं मूलपद्यांश इति, न भ्रमितव्यम्। पूर्वापरपादयोर्मध्ये तत्समावेशासम्भवात् पङ्क्त्यन्तरत्वेन स्वतन्त्रपादत्वाभावात्, अत्र राजवर्णनस्याप्रसरत्वाच्च। एवं च सभाप्रसङ्गेन तदधिपते राजव्यपदेशार्थे-टीकाकर्तुर्विशेषवचनमित्येव युक्तं भाति। ३. का० सू० ३।८।२४। ४. का० सू० ४।२।४१। ५. 'स्मृतौ" इत्युक्तम्। परमविकलः श्लोको यशस्तिलके आ० ७ क० ३० श्लो० ३ उपलभ्यते। ६. का० सू० ४।५।४१। ७. का० सू० ३।८।५। ८. शा० सू० २।२।१७२। ९. "आस उपवेशने"। "अन्दाद्यः" पा० उ० सू० ४।९८। इति दप्रत्ययो भवति, अमागमष्टित्वं च। टित्वान्ङीप्। तथा चोक्तम्—"स्याद् वेत्रासनमासन्दी" इति ३।३४८। अभि० चि०।

उपविश्यतेऽस्मिन्नासनम् । "[1]कृत्ययुटोऽन्यत्रापि च" युट् । **विदुः** कथयन्ति ।

विष्टपं भुवनं लोको जगत्–

चत्वारो जगति । [2]विष्टपन्त्यत्र **विष्टपम्**[3] । भूतानि भवन्त्यस्माद्भुवनम् । लोक्यते **लोकः** । गच्छतीत्येवंशीलं **जगत्** । "[4]द्युतिगमोर्द्वे च" क्विप् । गमो द्विर्वचनम् । अभ्यासमकारलोपः । "[5]कवर्गस्य चवर्गः" गस्य जः । ज गम् जातम् । "[6]पञ्चमो०" । दीर्घः । "[7]यममनतनगमां क्वौ" पञ्चमलोपः । आत् अत् । "[8]धातोस्तोऽन्तः पानुबन्धे" तोऽन्तः । [9]वेर्लोपः । सिः । नपुंसकम् ।

तस्य पतिर्जिनः ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य **पतिर्जिनः** कथ्यते । अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति **जिनः** । "[10]इण्नशजिकृषिभ्यो नक्" । विष्टपपतिः । लोकपतिः । जगत्पतिः । इत्यादीनि जिनस्य पर्यायनामानिज्ञातव्यानि ।

वर्षीयान् वृषभो ज्यायान् पुरुराद्यः प्रजापतिः ।

ऐक्ष्वाकुः (कः) काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥११४॥

द्वादश वृषभे । अतिशयेन वृद्धो **वर्षीयान्** । "[11]प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः" । वृषेण अहिंसालक्षणोपेतधर्मेण भातीति [12]**वृषभः** । "[13]ऋषिवृषिभ्यां यण्वत्" । आभ्यामभः प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । अयमेषां मध्ये प्रकृष्टो वृद्धः प्रशस्यो वा **ज्यायान्** । "वृद्धस्य[14] च ज्यः" वृद्धशब्दस्य ज्यादेशो भवति । पॄ पालनपूरणयोः । पृणाति पालयतीति **पुरुः** । "[15]इषिधृषिभिदिगृधिमृदिपॄभ्य कुः" एभ्यः कुप्रत्ययो भवति । अस्मिन्नहनि **अद्य**[16] । इदमोऽद्भावो द्यश्च परविधिः "सद्योऽद्या[17] निपात्यन्ते" इति वचनात् । (आदौ भव **आद्यः**) प्रजानाम् इन्द्रधरणेन्द्रचक्रवर्त्यादीनां पतिः स्वामी **प्रजापतिः** । इषु इच्छायाम् । वाञ्छ्यते लोकैः **ऐक्ष्वाकः**[18] । तथा चार्षे महापुराणे—

"अङ्कनाच्च तदेक्षूणां रससंग्रहणे नृणाम् ।
इक्ष्वाकुरित्यभूद्देवो जगतामभिसम्मतः ॥"

काश्यं क्षत्रियतेजः पातीति **काश्यपः** । तथा च महापुराणे—

"काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात् ।"

बृंहतीति **ब्रह्मा** ।

---

१. का० सू० ४।५।९२। २. "ष्टप स्तप प्रतिघाते" अम० को० क्षी० स्वा० भाष्य एवोपलभ्यते, न तु पाणिनिधातुपाठे । ३. विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् जीवाजीवा इति हेमचन्द्रः । ४ का० सू० ४।४।४८। ५. का० सू० ३।३।१३ । ६. का० सू० ४।१।५५। ७. का० सू० ४।१।६१। ८. का० सू० ४।१।३०। ९. का० सू० ४।१।३४।" वेर्लोपोऽपृक्तस्य" इति पूर्णं सूत्रम् । १०. का० उ० सू० २।५।१। ११. पा०सू० ६।४।१५७। १२. वृषेण भातीति विग्रहे आतोऽनुपसर्गे कः । भा दीप्तौ । वर्षति धर्मामृतमिति विग्रहे "ऋषिवृषिभ्यां यण्वत्" इत्यभः । "वृषु सेचने" । १३. का०उ०सू० ३।१३ । १४. है०उ० ७।४।५।३ १५.का० उ० सू० १।१०। १६. अत्र आद्यशब्दो न त्वद्यशब्दः । तेनादौ भव आद्य इति पुनः प्रतिभाति । १७. का० सू० २।६।३७। १८. इक्षूणाम् आ (रसापकर्षणम्) करोतीति इक्ष्वाकुः । तत ऐक्ष्वाकः । तत्र प्रमाणमाह—"अङ्कनाच्चेति" सङ्गतिः ।

"आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।
ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

अतः परो ब्रह्मा नास्ति । गौतमो गोत्रोऽवताराद् **गौतमः** । आर्षे महापुराणे—

"गौः स्वर्गः स प्रकृष्टात्मा गोतमोऽभिमतः सताम् ।
स तस्मादागतो देवो गौतमश्रुतिमन्वभूत् ॥"

नाभेर्जातो **नाभिजः** । अग्रे जातोऽ**ग्रजः** । अदृष्टत्वात् ।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।
नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती समीचीना मतिर्यस्य स **सन्मतिः** । महापुराणे—

"तत्सन्देहे गते ताभ्यां चरणाभ्यां च भक्तितः ।
अस्तावि सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥"

(मह्यते पूज्यते इति महतिः) । महती पूजा यस्य स **महतिः** । विशिष्टाम् इन्द्राद्यसम्भाविनीम् ईम् अन्तरङ्गां समवसरणानन्तचतुष्टयलक्षणां लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति **वीरः** । वीर इति नाम कस्माज्जातम् ? जन्माभिषेके बालवृशरीरदर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्थ्यख्यापनार्थं पादाङ्गुष्ठेन मेरुसंचालनादिन्द्रेण वीरनाम कृतम् । महाँश्चासौ वीरः **महावीरः** । तथा च बृहत्प्रतिक्रमणभाष्ये—

"कुमारकाले आमलकीक्रीडायां क्रीडतः सङ्गमदेवेन विमानस्खलनाद्भगवत्परी(क्षा)र्थं महाफटाटोपोपेतं भयानकं सर्परूपं विकृत्य वृक्षो वेष्टितः । भगवाँस्तस्मान्मस्तकादिपादन्यासं कृत्वा वृक्षादुत्तीर्णः । ततस्तेन **महावीर** इति नाम कृतम् ।" अन्त्यं काश्यं तेजः पातीति **अन्त्यकाश्यपः** । ततः परस्तीर्थकरो नास्ति । नाथोऽन्वयो यस्य स **नाथान्वयः** । तथा च—

"चत्वारः पुरुवंशजा जिनवृषा धर्मोदयस्ते पुन-
र्नेमिश्रीमुनिसुव्रतौ हरिकुले वीरोऽथ नाथान्वये ॥
शेषाः सप्तदशाधिका जिनवरा इक्ष्वाकुवंशोद्भवाः
प्रोद्यन्मोहविनाशनैकनिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रियै ॥"

अव समन्ताद् ऋद्धं परमातिशयप्राप्तं मानं केवलज्ञानं यस्यासौ **वर्धमानः** ।

"वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥"

इत्यवशब्दस्याकारलोपः । तथा ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी—भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रेन्द्रादिविनिर्मितां विशिष्टां पूजां रत्नवृष्टिं स्वस्य च ऋद्धिवृद्ध्यादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम् । इह अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थे **यत्तीर्थम् साम्प्रतम्** अधुना वर्तते ।

सर्वज्ञो वीतरागोऽर्हन् केवली धर्मचक्रभृत् ।
तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृद्दिव्यवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जिनेन्द्रे । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा । **सर्वज्ञः** । सर्वं जानाति वेत्तीति सर्वज्ञः । "आतोऽनुपसर्गात्कः" अप्रत्ययः । "के यण्वच योक्तवर्जम्" इति यण्वद्भावात् आलोपः । विशिष्टा ई तां प्रति इतः प्राप्तो रागो यस्य स **वीतरागः** । अरिहननाद्रजोहनन (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मिता-

---

१. का० सू० ४।३।४ । २. का० सू० ४।१।७।

मतिशयवतीं पूजामर्हतीति **अर्हन्**। घातित्त्रयजमनन्तज्ञानादिचतुष्टयं विभूत्यार्च यस्येति वाऽर्हन्। त्रिकालं केवलज्ञानमस्त्यस्य **केवली**। जिनधर्मचक्रं सहस्रारयुक्तं तीर्थकृदग्रे निराधारतया विहारकाले गगने गच्छत् सर्वजीवदयासूचकं रत्नमयमायुधविशेषं बिभर्ति तद्वाऽनुभवतीति **धर्मचक्रभृत्**। तीर्थं द्वादशाङ्गशास्त्रं करोतीति **तीर्थङ्करः**। तीर्थं करोतीति तीर्थकृत्। दिव्यवाचाम्पतिः **दिव्यवाक्पतिः**। तथा चोक्तम्:—

"यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं
नो वाञ्छाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम्।
शान्तामर्षविषं समं पशुगणैः संकर्णितं कर्णिभि-
स्तद्वः सर्वविदः प्रनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥"

चेलं निवसनं वासश्चीरमम्बरमंशुकम्।

षड् वस्त्रे। चिल्यते वस्यतेऽनेन **चेलं** चैलं च। निवसत्यनेन **निवसनं**, विवसनं, वस्नं च। वस्यतेऽनेनाङ्गं **वासः**। सान्तम्। चिनोति उपार्जयति सारतां **चीरम्**, चीवरं च। अम्बते गच्छति शोभामनेन **अम्बरम्**। उभयम्। अंशून् कारयति **अंशुकम्**। क्लीबे। कर्पटम्। आच्छादनम्। वस्त्रम्। सिचयः। पटः, पटम्, पटी। पोतः। प्रावरः। प्रावारः। संव्यानं च।

वस्त्राद्यन्तः दिगाद्यादिसंज्ञितो वृषभेश्वरः।

वस्त्रादयः वस्त्रपर्याया अन्ते दिगादयो दिक्पर्याया आदौ यस्य **तत्संज्ञितो वृषभेश्वरः**। वस्त्रादिकं नाम अन्ते दिगादिकं नाम आदौ यथा—दिक्चेलः। दिग्वासाः। दिग्वसनः। दिगम्बरः। दिगंशुकः। दिग्वस्त्रः। काष्ठाचेलः। काष्ठानिवसनः। काष्ठावासाः। काष्ठाचीरः। काष्ठाम्बरः। काष्ठांशुकः। काष्ठावस्त्रः। ककुप्चेलः। ककुन्निवसनः। ककुब्वासाः। ककुप्चीरः। ककुबम्बरः। ककुबंशुकः। ककुब्वस्त्रः। आशाचेलः। आशानिवसनः। आशावासाः। आशाचीरः। आशाम्बरः। आशांशुकः। आशावस्त्रः। दक्षकन्याचेलः। दक्षकन्यावासाः। दक्षकन्याचीरः। दक्षकन्याम्बरः। दक्षकन्यांशुकः। दक्षकन्यावस्त्रः। हरिच्चेलः। हरिन्निवसनः। हरिद्वासाः। हरिच्चीरः। हरिदम्बरः। हरिदंशुकः। हरिद्वस्त्रः। इत्यादीनि वृषभेश्वरनामानि ज्ञातव्यानि।

कुङ्कुमं रुधिरं रक्तम्—

त्रयः कुङ्कुमे। काम्यते जनैः **कुङ्कुमम्**[1]। रुधिर् आवरणे। रुणद्धि **रुधिरम्**। "[2]तिमिरुधिमन्दिधिरुचिशुषिभ्यः किरः"। रज्यतेऽनेन **रक्तम्**[3]।

कस्तूरी मृगनाभिजम् ॥ ११७ ॥

द्वौ मृगमदे। के स्तूयते **कस्तूरी**[4]। मृगनाभेर्जातम् **मृगनाभिजम्**। मृगनाभीजं च।

कर्पूरं घनसारं च हिमं सेवेत पुण्यवान्।

कृपू सामर्थ्ये। कल्पते **कर्पूरः**। "[5]कृपेरूरप्रत्ययः। "[6]नाम्यन्तगुणः।" "कृपे[7] रोलः" कथम्.

१. कुक्यते आदीयते कुङ्कुमम्। कुक् आदाने। "कुदकुकोर्नुन् च" भो० उ० इति उमक् प्रत्ययो नुमागमश्च। इति रामाश्रमः। कुं कौतीति क्षीरस्वामी। २. का० उ० १।२३। ३. तथा चोक्तम्-मेदिन्याम् ता० व० श्लो० ४६। "रक्तोऽनुरक्ते नील्यादि रञ्जिते लोहिते त्रिषु। क्लीबन्तु कुङ्कुमे ताम्रे प्राचीनामलकेऽसृजि"। इति। ४. के शिरसि स्तूयते प्रशस्तधार्यत्वेन मन्यते इत्यर्थः। विकसति गन्धोऽस्या इति क्षी० स्वा०। "कस गतौ" कसति गच्छति गन्धोऽस्या इति रामाश्रमः। "स्वर्जनिष्ठादिभ्य उरोलचौ"। पा० उ० ४।९०। इत्यमरः। पृषोदरादित्वात्तुट्, गौरादित्वान्ङीष् च। ५. "खर्जिपिञ्जादिभ्य उरोलौ" इति का० उ० ३।६०। ६. नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोर्गुणः" का० सू० ३।५।२। ७. का० सू० ३।३।९७।

सत्यम् । उणादयो हि बहुलम्, तेन—

"[१]क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥"

घनस्येव सारोऽस्य **घनसारः** । हि गतौ । हिनोतीति **हिमम्**[२] । "[३]इन्धियुधिश्याधूहिभ्यो मक्" । चन्द्रसंज्ञः । सिताभ्रः । हिमवालुकः ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारो रागे । सम्यक् प्रकारेणालभ्यते [४]**समालम्भः** । अङ्गस्य रागोऽङ्ग**रागः** । प्रकर्षेण साध्यते मण्ड्यते **प्रसाधनम्** । विलिप्यते **विलेपनम्** ।

भूषणाभरणं रुच्यम्—

त्रय आभरणे । तसि भूष अलङ्कारे । भूष्यते मण्ड्यतेऽनेन **भूषणम्** । आ समन्ताद् भ्रियते शोभा धार्यतेऽनेन **आभरणम्** । रोचते **रुच्यम्** । अलङ्कारः । परिष्कारः । मण्डनम् ।

माल्यं मालागुणस्रजः ।

चत्वारः पुष्पमालायाम् । मालैव **माल्यम्** । चातुर्वर्ण्यादित्वात्ष्यण् । माल्यते धार्यते **माला** । अथवा मां लान्ति पुष्पाण्यत्र माला । स्त्रियाम् । गुणतीति **गुणः** । "नाम्युपधप्रीकृगृज्ञां[५] कः" । सृज्यते **स्रक्** । "ऋत्विग्[६]दधृक्स्रगिति" साधुः ।

मेखला रसना काञ्ची ।

त्रयः काञ्च्याम् । मेहनस्य खं तस्य मां लातीति निरुक्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति वा **मेखला**[७] । रसति शब्दं करोतीति **रसना**[८] । रस कान्तौ (शब्दे) सौत्रोऽयं धातुः । श्रोणी शोभां कचति(काञ्चते)[९] बध्नातीति काञ्चिः । स्त्रियामीः । **काञ्ची** । ततकी । कलापः । कटिसूत्रम् । सारसनम् । शिञ्जिनी[१०] च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमशब्दात्सूत्रशब्दे प्रयुज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । अष्टापदसूत्रम् । स्वर्णसूत्रम् । कनकसूत्रम् । अर्जुनसूत्रम् । काञ्चनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् । हाटकसूत्रम् । कलधौतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तस्वरसूत्रम् । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

श्रोणीबिम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिवाहितम् ।

त्रयः पट्टसूत्रे । श्रोण्याः कट्याः बिम्बं प्रच्छादकं **श्रोणीबिम्बम्** । कटीं सूत्रयति वेष्टयतीति

---

१. शा०सू० १।३।१४९। अत्र कारिकारूपेण पठितः । २. हिनोति गच्छतीत्यर्थः । कर्पूरस्याशूत्पतनस्वभावात् । हन्ति औष्ण्यमिति रामाश्रमः । ३. का० उ० १।५५। ४. आलभ्यते विलिप्यते इत्यर्थः । ५. का०सू० ४।२।५१। ६. का०सू० ४।३।७३। ७. मखं गतिं लातीति पृषोदरादित्वान्मेखलेति रामाश्रमः । मुहुः स्खलतीति हेमचन्द्रः । मीयते प्रक्षिप्यते इति क्षी०स्वा० । "मिञः खलच्चैच्च" २।३।१७। सर० क० । ८. अश्नुते कटिम्,अश्नाति कामिचित्तं वेति रामाश्रमहेमचन्द्रौ । 'अशो रश्च" इति यूरशादेशश्च। ९. "काचि दीप्तिबन्धनयो." । "सर्वधातुभ्य इन्" । १०. शिञ्जिनी नूपुरम् । मेखलापर्याये तत्पाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्—"नूपुरन्तु तुलाकोटिः पादतः कटकाङ्गदे । मञ्जीरं हंसकं शिञ्जिनी,—अभि० चि० ३।३३०।

कटीसूत्रम् । मानं प्रमाणीभूतं सूत्रयतीति **मानसूत्रम्** । केचिद् रागसूत्रं पठन्ति पट्टसूत्रं च ।

मदिरां मद्यमैरेयं शीधु कादम्बरीमिराम् ॥ १२० ॥
प्रसन्नां वारुणीं हालां मधुवारां सुरां विदुः ।

एकादश मद्ये । माद्यत्यनया **मदिरा** । मधिष्टा च । मद्यतेऽनेन **मद्यम्** । "यमिकदिगदां[1] त्वनुपसर्गे" । इरायां ग्रामसीमायाम् साधु **ऐरेयम्** । शेरतेऽनेन **शीधुः** । "[2]शीङो धुक्" । शीपो(धो)रित्येके पठितत्वात् शीधुप्रकृतेः[3] क इति व्याख्यत् । अथवा पीतेऽत्र जनः शेते शीधुः । उभयम् । तालव्यः । कुत्सितं नीलमम्बरं यस्य स कदम्बरो बलदेवः । तस्येयं प्रिया **कादम्बरी** । कुत्सितमम्बते यात्यनया वा कादम्बरी । एति परिभ्राम्यत्यनया **इरा** । आत्मा प्रसीदत्यनया **प्रसन्ना** । आदन्तः । वरुणस्यापत्यं **वारुणी** । जहति लज्जामनया **हाला** । स्त्रियाम् । मधु वारयतीति **मधुवारा** । सुवति सूते भवं **सुरा** । तथा द्विसन्धानभाष्ये—"अतिप्रलापभावेन समुद्रमथनान्निष्कासिता सुरैः सुरा ।"

"लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ॥
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः शङ्खो विषं चाम्बुधेः
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥

विदुः कथयन्ति । मधुः । आसवः । परिप्लुता । स्वादुरसा । शुण्डा[4] । गन्धोत्तमा । माधवकः । माधवः । कल्यं, कल्या । कश्यं, कश्या । परिश्रुत् । तान्तं स्त्रियाम् । तालव्यदन्त्यः । [4]हारहूरं । कापिशायनम् । मृद्वीकम् । माध्वीकम् ।

शुण्डासवः–

मद्यविशेषौ द्वौ । सुन्व(न)न्ति तृप्तिं गच्छन्त्यनया शुण्य (न्य) ते पातुमभिगम्यते वा शुण्डा[5] । स्त्रीत्वोः । शुण्डः । आसूते जनयति मदम् **आसवः** । पुंसि ।

तद्विधायी शौण्डो मद्येत मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्वौ कल्यपालके । शुण्डायां मद्ये भवः **शौण्डः**[6] । मद्यं पिबति पाययतीति वा **मद्यपः** ।

सक्तोऽक्षद्यूतपानेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

त्रयो मद्यासक्ते । अक्षेषु द्यूतेषु सक्तः अक्षसक्तः । द्यूतसक्तः । पानेषु सक्तः पानसक्तः । **विचित्रा** नाना प्रकारा शब्दानां पद्धतिः श्रेणिः **शब्दपद्धतिर्वर्तते** । अक्षशौण्डः । अक्षधूर्तः । अक्षकितवः । "[7]सप्तमी शौण्डैः" । व्याल, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, स्वेत्यादि शौण्डादिराकृतिगणः ।

सर्पिर्हैयङ्गवीनाज्यं–

त्रियः सर्पिषि । सप्त धातवः सर्पन्त्यनेन सान्तं **सर्पः** । क्लीबे । "[8]अर्चिशुचिरुचिहुसृपि-छादिछर्दिभ्य इसिः" । सृप्लृ गतौ । ह्यो गोदोहस्य विकारो **हैयङ्गवीनम्** । इदं हैयङ्गवीनं ह्यस्तनदिन-गोदोहे सञ्जातम् । उक्तं च—

"[9]तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् ।"

---

१. का० सू० ४।२।१३। २. का० उ० सू० २।३३। ३. सीधुरिति दन्त्योऽप्यन्यत्र पाठः । ४. "शुण्डा हाला हारहूरं प्रसन्ना वारुणी सुरा ।" अभि० चि० ३।५६७ ५. शुण्डाशब्दो मदिरानाम्नि पानमदस्थानमपि । तदुक्तम्–"शुण्डा हाला हारहूरम्" अभि० चि० ३।५६७। "शुण्डा पानमदस्थानम्" अभि० चि० ३।५७०। ६. शुण्डायां मदिरापानागारे भव इति रामाश्रमः । 'शुण्डा मदिरा तुल्यमस्येति अर्शो रत्नादित्वादण्' इति हेमचन्द्रः । ७. पा०सू० २।१।४०। ८. का०उ०सू० २।४४ । ९. अम० को० २।९।५२।

तथा चाशाधरमहाभिषेके—

"आयुः पीयूषकुण्डैः स्मृतिमणिखनिभिः शेमुषीवल्लिकन्दै-
र्मेधासस्याम्बुवाहैर्वरफलतरुभिर्नेत्ररत्नाधिदेवैः ।
निष्पत्तैर्घ्राणपेयप्रचुरमधुरिमस्नेहधूमोऽपि येषां
कुर्मो हैयङ्गवीनैः स्नपनमपनय ध्वान्तभानोर्जिनस्य ॥"

वीयते लिप्यते पित्तमनेनाज्यम् । तथा क्षीरस्वामिनि—"आ अञ्जनीयमाज्यम्" । "[१]आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायाम्" क्यप् । घृतम् । आधारः । स्पृह्यम् । याज्यम् । हविः ।

दुग्धं क्षीराऽमृतं पयः ॥१२२ ॥

चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुह्यते **दुग्धम्** । घस्लृ अदने । सौत्रोऽयम् । घस्यते **क्षीरम्** । 'घसेः[२] किच्च" ईरमात्रः । [३]गमहनजनेत्युपधालोपः । "[४]अघोषेष्वशिटां प्रथमः" कः । "[५]शासिवसिघसीनां च" षत्वम् । क्षप्[६]संयोगे क्षः । "व्यञ्जनमस्व[७]०" । उणादौ क्षिणु क्षणु हिंसायाम् । क्षणोतीति **क्षीरम्** । "[८]क्षीरोशीरगभीरगम्भीरा" एते ईरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । न म्रियतेऽनेन **अमृतम्** । अजरामरकारित्वात् । पीयते वा सरसत्वात् **पयः** । अमृत् । ऊधस्यम् । स्तन्यम् । पीयूषं, पयूषं च ।

उदश्विन्मथितं तक्रं कालशेयं पिबेद् गुरुः ।

चत्वारस्तक्रे । उदकेन श्वयति वर्धते **उदश्वित्** । तान्तस्तालव्यमध्यः । मथ्यते (स्म) **मथितं** घोलं च । तञ्चति द्रवं गच्छति तक्रम् । उभयम् । "तक्रं विभागभिन्नं तु केवलं मथितं स्मृतम्" इति धन्वन्तरिः । कलश्यां गर्गयां भवं **कालशेयं पिबेत् गुरुः** । तत्कालीनं गरिष्ठम् । अरिष्टम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्णं यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥
तारुण्यं यौवनं च

[९]अष्टौ तारुण्ये । प्रकर्षेण परलोकमेत्यनेन **प्रायः**[१०] पुंसि । सान्तोऽपि प्रायस् । वयते **वयः**[११] । दशति चुम्बति स्त्रीमुखं **दशा** । न ईहते[१२] चेष्टते **अनेहा** । "अनेहसोऽप्सरसोऽङ्गिरसः[१३]" एतेऽसन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । ईह चेष्टायाम् । पूरी आप्यायने दिवादौ आत्मनेपदी । अदन्तानां प्राक् तृ(क्ष)तीयः परस्मैपदी । पूर्यते कश्चित्, पूरयति कश्चित् । इन् चुराद्यपेक्षया वा । "[१४]कारित०" कारितलोपः । उभयथा पूरि जातम् । पूर्यते स्म **पूर्णः** । निष्ठाक्तः । "[१५]दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टछन्नज्ञाताश्चेनन्ताः" इत्यनेन पूर्णेति निपातः । यूनो भावो यौवनम् । स्वार्थे कः । **यौवनकम्** । [१६]युवादित्वाद्भावेऽण् । वृद्धौ । तरुणस्य

---

१. पा० सू० ३।१।१०९ । वार्तिकम् । २. पा० उ० सू० ४।३२ । ३. का० सू० ३।६।४३ । ४. का० सू० ३।८।९ । ५. का० सू० ३।८।२७ । ६. का० रू० पू० सू० २५६ । ७. "व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्" का० सू० १।१।२१ । ८. का० उ० सू० ३।४६ । ९. अत्र प्रायादयोऽनेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचकाः । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनकतारुण्ययौवनानीति त्रयः । एवं च सत तारुण्ये इति वक्तुं युक्तम् । १०. प्रकर्षेण शरीरस्य क्रमेणायते गच्छति इति हे० च० । ११. शरीरस्य क्रमेण वियन्ति वयः, बाल्यादीनि दश्यन्ते दशा इति हैमः । १२. नाहन्ति नागच्छति नाहन्यते नागम्यते वेति रामाश्रमः । "नञ्याहन एह च" इति साधुः । १३. का० उ० सू० ४।१८ । १४. का० सू० ३।६।४४ । १५. का० सू० ४।६।१०० । १६. हे० श० ७।१।६७ । युवादेरण् इति सूत्रम् ।

भावस्तारुण्यम् । भावार्थे यण् । यूनो भावो यौवनम् ।

अन्त्यो वार्द्धीनः स्थविरो मतः ।

त्रयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्त्यः । वृद्धे नियुक्तो **वार्द्धीनः**[1] । तिष्ठतीति **स्थविरः**[2] । गतिभङ्गान्**मतः** कथितः । प्रवयाः । यातयामः । दशमीस्थः । जरन् । जरठः । जीर्णः । वृद्धः ।

वंशोऽन्वयोऽन्ववायः स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥

षड् वंशे । उश्यते काम्यते जनेन **वंशः**[3] । पुंसि । अन्वयते सन्ततिरत्रा**न्वयः**[4] । अन्ववैत्यपत्यमत्रा**न्ववायः** । आम्नायते **आम्नायः**[5] । सम् सम्यक् प्रकारेण तनोति विस्तारयतीति **सन्ततिः**[6] । सन्तननं वा सन्ततिः । कु (कौ) लति सर्वं भवत्यत्र **कुलम्** । उभयम् । गोत्रम् । अभिजनः ।

ओघो वर्गश्च सन्तानः

त्रयः समूहे (वंशस्यावान्तरवर्गभेदे) । ओह्यते **ओघः**[7] । वृज्यते विजातीयेन पृथक् क्रियते **वर्गः** । सन्तन्यते **सन्तानः** । विकरः । निकायः । निवहः । विसरः । व्रजः । पुञ्जः । समूहः । सञ्चयः । समुदयः । समुदायः । सार्थः । यूथः । निकुरम्बः । कदम्बम् । पूगः । राशिः । चयः । समवायः । मण्डलम् । चक्रवालम् । जालम् । स्तोमः । व्यूहः ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वौ काव्ये । कवेर्भावः **काव्यम्** । तथा च यशस्तिलके—

"दुर्जनानां[8] विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।
मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदम्भवेत् ॥"

कवीनां स्थितिः **कविस्थितिः** ।

पक्षिवर्गः प्रारभ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

हंसो मरालश्चक्राङ्गः

त्रयो हंसे । विसं हन्ति खण्डयति, चारुगत्या हन्ति गच्छति वा **हंसः** । हन्तेः[9] सः । मरं मलं कमलमण्डिततडागमियर्ति गच्छतीति **मरालः** । चक्रमङ्गति चक्राण्यङ्गानि वा यस्य **चक्राङ्गः** । मानसौकाः । श्वेतच्छदः ।

हंसवाहः सनातनः ॥ १२४ ॥

हंसशब्दाद् वाहशब्दे प्रयुज्यमाने ब्रह्मणो नामानि भवन्ति । **हंसवाहः** । मरालवाहः । चक्राङ्गवाहः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो बर्हिणः केकी शिखी प्रावृषिकस्तथा ॥
नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

अष्टौ मयूरे । मह्यां रौति **मयूरः** । मीनाति वाऽहीन् मयूरः । उणादौ । मीञ् हिंसायाम् । मयते

---

१. अत्रान्यत्प्रमाणं नोपलब्धम् । २. यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति हे० च० । "अजिरशिशिरेत्यादि पा०उ० १।५३ इति किरप्रत्ययो थुगागमो ह्रस्वत्वं च । ३. "वश कान्तौ" घञ् । नुम् । वन्यते वन्दते जनेनेति स्वामी । ४. अन्ववैति अन्वीयते । अन्वयः । "इण् गतौ" । अच् । इत्यन्यत्र ५. अत्र प्रमाणम्— 'आम्नायः कुल आगमे उपदेशे" इति हैमः ।३।५।११। ६. सन्तन्यते सम्यग्विस्तारयतीति रामाश्रमः । ७. ओघ उच्यते । ऊह वितर्के । न्यङ्क्वादित्वाद् हस्य घः । ८. आ० १ श्लो० २५। ९. आ० उ० सू० ३।५। 'हन्तेर्दर-निमतिकत्यशिकपेभ्यः सः" । इति ।

इति मयूरः । "मयते[1] रुरो लौ" । बर्हमस्यास्ति बर्ही । "फल[2]बर्हाभ्यामिनच्" । केका वाणी अस्त्यस्य केकी । शिखाऽस्त्यस्य शिखी । प्रावृषि वर्षाकाले प्रयुक्तः प्रावृषिकः । नीलं कण्ठे यस्य स नीलकण्ठः । कलापोऽस्त्यस्य कलापी । शिखण्डोऽस्त्यस्य शिखण्डी । प्रचलाकी । सर्पाशनः । शिखावलः । श्यामकण्ठः । चन्द्रकी । शुक्लापाङ्गः ।

तत्पतिर्गुहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिर्गुहः कार्तिकेयः । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमाने कार्तिकेयपर्यायनामानि भवन्ति । मयूरपतिः । बर्हिणपतिः । केकिपतिः । शिखिपतिः । प्रावृषिकपतिः । नीलकण्ठपतिः । कलापिपतिः । शिखण्डिपतिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

वरटा वारली हंसी–

त्रयो हंसभार्यायाम् । वरं विशिष्टमटति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थेऽणि । वरला च । हन्तीति हंसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

अजादिकं कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मृगेष्वस्य ईहामृगः । ईहां मृगयते वा [3]ईहामृगः । वृक वृक आदाने । वर्कते [4]वृकः । अरण्यश्वा ।

हरिणो मृगश्च पृषतः–

त्रयो मृगे । गीतेन ह्रियते हरिणः । व्याधैर्मृग्यते मृगः । पर्षति सिंचति मूत्रेण पृषतः[5] । तान्तोऽपि पृषत् । एणः । कुरङ्गः । कुरङ्गमः । सारङ्गः। ऋश्यः । रिश्यः । ऋष्यश्च । रुरुः । न्यङ्कुः । वातप्रमी । शम्बरः । शबलः । कृष्णसारः । कालसारोऽपि ।

तदङ्कः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

हरिणपर्यायादङ्कपर्याये प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हरिणाङ्कः । मृगाङ्कः । पृषताङ्कः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विषधरो लेलिहानो भुजङ्गमः ॥
नागोरगौ फणी सर्पः–

नव सर्पे । पद्भ्यां न गच्छतीति पन्नगः[6] । नभ्राण्नपादित्यस्योपलक्षणत्वात् । अंहत्य (तेऽ) हिः । "अंहि[7]कम्योर्नलोपश्च" नलोपः । विषं धरति विषधरः । लिलेहेति लेलिहानः[8] । भुजाभ्यां गच्छति [9]भुजङ्गमः। न गच्छतीति [10]नागः। उरसा गच्छतीत्युरगः । "[11]उरो विहायसो रुरविहौ च" । उरो विहायसोरुपपदयोर्गमश्च संज्ञायां खो भवति तयोश्च उरविहौ यथासंख्यं भवतः । फणाऽस्त्यस्य फणी ।

---

१. का० उ० सू० ६।४७ । २. पा० ५।२।१२२ वार्तिकम्––"फलबर्हाभ्यामिनच्" । ३. ईहया महताऽयासेन मृग्यते आखेटीक्रियते इत्यन्यत्र। ४. वर्कतेऽजादिकमादत्ते, वृणोति वा वृकः । ५. रामाश्रमस्तु––"पृषता बिन्दवो बिन्दुसदृशलक्षणान्यस्य पृषतः । अर्श आद्यच् इत्याह । पृषतो बिन्दुचित्र इति क्षी० स्वा० । ६. पन्नं पतितं यथा स्यात्तथा गच्छतीति रामाश्रमः । सर्वपन्नयोरिति वार्तिकेन डः । ७. का० उ०सू०४।४। किप्रत्ययो नलोपश्च । अहि गतौ । अंहति वेगेन गच्छति । ८. भृशं लेढीत्येवंशीलो लेलिहानः । लिहेर्यङ्लुगन्तात्–"ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्" पा० सू० ३।२।१२९। इति चानश् । ९. भुजेन कौटिल्येन गच्छति, भुज इव गच्छति वेत्यन्यत्र । "गमश्च" का० सू० ४।३।४५। इति । "विहङ्गतुरङ्गभुजङ्गाश्च" का० सू० ४।३।४८। इति खचि, डे च, भुजङ्गमः, भुजङ्ग इति । १०. नगे पर्वते भवो नागः । अथवा न गच्छतीत्यगः, न अगः, नाग इत्यन्यत्र । ११. का० सू० ४।३।४६।

सर्पति गच्छति **सर्पः** । पृदाकुः । भुजगः । आशीविषः । चक्री । व्यालः । सरीसृपः । कुण्डली । गूढपात् । द्विरसनः । चक्षुःश्रवाः । काकोदरः । दर्वीकरः । दीर्घपृष्ठः । दन्दशूकः । विलेशयः । भोगी । जिह्मगः । पवनाशनः । गोकर्णः । कुम्भीनसः । कञ्चुकी । राजसर्पः । भुजङ्गभुक् । दृक्श्रुतिः ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पन्नगस्य **वैरी** शत्रुः **विनतात्मजः** गरुडः । पन्नगवैरी । अहिरिपुः । विषधरारातिः । लेलिहानरिपुः । भुजङ्गशत्रुः । नागद्विट् । भुजङ्गसपत्नः । फणिद्विट् । सर्पहृत् । सर्पद्वेषी । इत्यादीनि गरुडनामानि स्युः ।

सुपर्णो गरुडस्ताक्ष्र्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।
इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा वैनतेयो विपाशयः ॥ १२८ ॥

नव गरुडे । शोभनं स्वर्णमयं पर्णमस्य **सुपर्णः** । तथा च—"सुपर्णो[1] हेमपक्षत्वात् ।" डीङ् विहायसा गतौ । गरुत्पूर्वः । गरुद्भिः पक्षैर्डयते **गरुडः** ।

"[2]वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

इत्यनेन श्लोकेन गरुत्शब्दस्य तकारस्य लोपः । लत्वे गरुलः । गरुटश्च । तृक्षस्यापत्यं **ताक्ष्र्यः** । गरुतः पक्षाः सन्त्यस्य **गरुत्मान्** । शकुनीनां विहङ्गानामीश्वरः स्वामी **शकुनीश्वरः** । इन्द्रं जितवान् **इन्द्रजित्** । मन्त्रेण पूतः पवित्र आत्मा यस्य स **मन्त्रपूतात्मा** । विनताया अपत्यं **वैनतेयः** । विषं क्षयतीति **विषक्षयः** । काश्यपनन्दनः । विष्णुरथः । पन्नगाशनः । नागान्तकः ।

खमिन्द्रियं हृषीकं च श्रो (स्रो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

षडिन्द्रिये । स्वर्गमोक्षौ खनति विदारयतीति **खम्**[3] । इन्द्रस्यात्मनो लिङ्ग**मिन्द्रियम्**[4] । हृष्यति हर्षं प्राप्नोति विषयेषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु **हृषीकम्** । शृणोत्यनेन सान्तम् **श्रोतः**[5] । तालव्यादिः । अश्नोति विषयं व्याप्नोति **अक्षम्** । क्रियते मनोऽनेन विषयेषु **करणम्** । शेषं [विषयि] । कमलम्[6] ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं भागधेयं च सत्कृतम् ॥१२९॥

पञ्च पुण्ये । पुण शोभे । पुणति शोभते पवते वा [7]**पुण्यम्** । "[8]पर्जन्यपुण्ये" । भगस्यैश्वर्यादेरिदं [कारणम्] भागम् । भागमेव **भाग्यम्** । "भागाद्यच्" । सुष्ठु क्रियते **सुकृतम्** ।

"[9]ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इति स्मृतिः ॥"

---

१. क्षी० स्वा० भा० १।१।२९ । २. शा० सू० २।२।१७२ । अत्र कारिकारूपेण पठितः । ३. खन्यते; तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्य खातसदृशत्वदर्शनात्, खम् । 'खनु अवदारणे' । डप्रत्यय इत्यन्यत्र । ४. इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमित्यादिना घच् । घस्येयः । ५. तालव्यश्रोतश्शब्दः कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यस्रोतश्शब्द इन्द्रियवाची, सोऽत्र पठितव्यः । तदुक्तम्—"हृषीकमक्षं करणं स्रोतः खं विषयीन्द्रियम्" अ० नि० 'स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये ;" इत्यमरः ३।३।२३३। ६. नात्रान्यत्प्रमाणमुपलब्धम् । किन्तु समाधान-प्रकारस्तु—कमिति सुखार्थकमव्ययम्, तस्य बलं साधनमिन्द्रियमिति । ७. पुणतीति पुण । "पुण शुभे कर्मणि । इगुपधेति कः । पुणमर्हतीति पुण्यम् । "तदर्हति" । पा० सू० ५।१।६३ । इति यत् । पुनाति पवते वेत्यन्यत्र । ८. का० उ० सू० ३।४ । ९. श्लोकोऽयं विष्णुपुराणस्थत्वेनोल्लिखितः अम० क्षी० क्षी० स्वा० भाष्ये १।१।१३।

भगस्येदं भागं भागमेव **भागधेयम्** । 'नामरूपभागेभ्यो धेयः'[1] । सत्समीचीनं क्रियते (स्म) **सत्कृतम्** ।

अघमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किल्बिषम् ।

वृजिनं कलिलं ह्येनो दुष्कृतम्

दश पापे । न जहाति प्राणिनम् **अघम्**[2] । अंहति गच्छति नरकादिकमनेन **अंहः** । सान्तम् । **दुरितम्**[3] । दुर् सौत्रोऽयं धातुः । पाति सुगतेर्वारयति **पाप्मा** । पुंसि । "सर्वधातुभ्यो मन् ।" पाति सुगतेर्वारयति **पापम्** । [4]"पातेः पः" । निन्द्यत्वेन कल्यते मुहुर्मुहुः, किरति सद्गतिं वा **किल्बिषम्** । "किल्बिषा[5] व्यथिषौ" एतौ टिषप्रत्ययान्तौ निपात्येते । वृज्यतेऽपनीयतेऽनेन **वृजिनम्**[6] । कलयति **कलिलम्**[7] । "कलेरिलः" । एति गच्छति [सुखम्] अनेन **एनः** । सान्तम् । दुष्क्रियते स्म **दुष्कृतम्** । तमः । कल्कम् । कल्मषम् । अशुभम् । प्रतिकिट्टम् । पङ्कम् । किण्वम् । मलः । अनेकार्थे ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जयी **तज्जयी** । अघजयी । दुरितजयी । पापजयी । इत्यादीनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सद्म भवनं धिष्ण्यं वेश्माथ मन्दिरम् ।

गेहं निकेतनागारं निशान्तं निवृतं गृहम् ॥ १३२ ॥

वसत्यावसथावासं स्थानं धामास्पदं पदम् ।

निकायं निलयं पस्त्यं शरणं विदुरालयम् ॥ १३३ ॥

चतुर्विंशतिर्गृहे । जनाः सीदन्त्यत्र **सदनम्** । क्लीबे । सीदन्ति सुखं गच्छन्त्यत्र **सद्म** । "सर्वधातुभ्यो[8] मन्" प्रायेण । भवति भूतान्यत्र **भवनम्** । धिष शब्दे । देधेष्टि शब्दं करोत्यत्र **धिष्ण्यम्** । "[9]धिषेर्ण्यक्" प्रत्ययो भवति । विशन्त्यत्र **वेश्म** । नान्तम् । माद्यन्ति जना अत्र **मन्दिरम्**[10] । स्त्री-क्लीबे । मन्दिरा । गेह: सौत्रो निवारणग्रहयोः । गेहति शीतवातातपादिकं निवारयतीति **गेहम्** । गृह्णाति वा गेहम् । "गेहे [11]त्वक्" । सुखं निकितन्ति जानन्त्यत्र **निकेतनम्** । अङ्गन्ति गच्छन्त्यत्र **आगारम्**[12] । अगारं च । निशाम्यन्त्यत्र **निशान्तम्**[13] । निव्रियते आच्छाद्यते **निवृतम्** । गृह्णाति नरेणोपार्जितं धनं **गृहम्** । वसनं **वसतिः** । आवसन्त्यत्र जना **आवसथम्** । आ समन्तादुष्यतेऽत्रावास: । स्थीयते जनेनात्र **स्थानम्** । दधाति धनादि **धाम** । नान्तम् । अदन्तं च धामम् । क्लीबे । आस्प(प)द्यतेऽत्रास्पदम्[14] । पद्यते गम्यते **पदम्** । निचीयतेऽसौ **निकायः** । "[15]शरीरनिवासयोः कश्चादेः" घञ् । निलीयते आश्लिष्यते(अत्र) **निलयम्** । पसिः सौत्रो निवासे । जनाः पसन्ति वसन्त्यत्र **पस्त्यम्**[16] । वस्तौ वासे साधु वस्त्यम् । वस्तौ

---

१. पा० सू० ५।४।३५ ।वार्तिकम् । २. अङ्घते गच्छति दानादिनाऽघम् । "अघि गतौ" । पचाद्यच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न नुम् । ३. दुष्टमितं गमनमनेनेति रामाश्रमः । ४. का० उ० सू० २।५५। ५. "किल्विषाव्यथिषौ" का० उ० सू० १।२२। ६. "वृजी वर्जने ।" "वृजेः किच्चेतीनच् । वृज्यते वृजिनमित्यपि । ७. कलयति जनयति दुःखमिति शेषः । ८. का० उ० सू० ४।२८ । ९ का० उ० सू० ३।६० । १०. "तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुपिभ्यः किरः" का० उ० सू० १।२३ । ११. का० सू० ४।२।६०। इति निर्देशाद् गेह इति निपातः । १२. आ अङ्गति अङ्ग्यते वाऽत्र बाहुलक आरप्रत्ययः । "अगि गतौ" आङ्पूर्वः । नलोपश्च । १३. निशाया अन्तोऽत्रेत्यन्यत्र । निशायाम् अम्यते गम्यते स्मेति रामाश्रमः । "अम गतौ"। क्तः । १४. "आस्पदं प्रतिष्ठायाम्" पा० सू० ६।१।१४६। इति सुट् । १५ का०सू० ४।५।३५। १६. अपस्त्यायन्ति सङ्घीभवन्त्यत्र पस्त्यम् । "स्त्यै शब्दसङ्घयोः" ।

वासे साधु [1]वस्त्यमिति श्रीभोजः । शीर्यते हिंस्यते शीताद्यत्र **शरणम्** । आलीयते जनेनात्रालयः । पुंसि । **विदुः** कथयन्ति । पुरम् । कुलम् । संस्त्यायः ।

खेयं खातं च परिखा

त्रयः परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते **खेयम्** । "आत्खनोरिच्च[2]" यप्रत्ययो नकारस्येकारः । "[3]अवर्णइवर्णे ए" अवर्णेवर्णयोरेकारः । खन्यते [स्म] **खातम्** । परिखायते **परिखा** ।

वप्रं स्याद्धूलिकुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुल्कादिकं वपन्त्यत्र **वप्रम्** । धूल्याः कुट्टिमं **धूलिकुट्टिमम्** । वद्धभूमिकम् । धूलिकुट्टिमम् ।

प्राकारः परिधिः सालः

त्रयो दुर्गे । प्रकुर्वन्ति तमिति **प्राकारः**[4] । "अकर्तरि च[5] कारके संज्ञायाम्" घञ् । परि समन्ताद् धीयते **परिधिः**[6] । श्यति तनूकरोति स्वनगरपर्यंतं शालं **सालं**[7] च ।

प्रतोली गोपुराकृतिः ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जनः प्रतोल्यते परिमीयतेऽत्र **प्रतोली** । गोप्यते रक्ष्यते गोपुरं तस्याकृतिः **गोपुराकृतिः**[8] ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

त्रयः सौधे । प्रासादश्च सौधं च हर्म्यं च **प्रासादसौधहर्म्याणि** । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनांसीति **प्रासादः** । "अकर्तरि [9]च कारके संज्ञायाम्" । सुधायां लिप्तायां भवं [10]**सौधम्** । चन्द्रकरान् हरति **हर्म्यम्**[11] ।

निर्व्यूहो मत्तवारणः ।

द्वौ अगाश्रये । निर्व्यूह्यते **निर्व्यूहः** । मत्ताः प्रमादिनः पतन्तो वार्यन्तेऽनेन **मत्तवारणः** ।

वातायनं मतालम्बम्

द्वौ गवाक्षे । वातस्यायनं मार्गो **वातायनम्** । उभयम् । मतमभीष्टम् आलम्बम् **मतालम्बम्** । जालकम् । जालम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राज्ञामवष्टम्भे द्वौ । आलम्ब्यस्य अवलम्बनस्य सुखम् **आलम्ब्यसुखम्** । सुखेनास्यते **आसनम्** ।

समः सवर्णः सज्ञातिः सदृक्षः सदृशः सदृक् ।
तुल्यः सधर्मरूपश्च तुला कक्षोपमा विधा ॥ १३६ ॥

---

१. यद्यपि मूले वस्त्यशब्दो नास्ति, तथापि पाठभेदात् "निशान्तवस्त्यसदनम्" २।२।५। इत्यमरे वस्त्यशब्दपाठात् टीकाकृता तदपि विगृहीतम् । २. का० सू० ४।२।१२। ३. का० सू० १।२।२। ४. प्रक्रियते इति कर्मणि घञ् । इति रामाश्रमः । ५. का० सू० ४।५।४। ६ परितो धीयते वेष्ट्यते नगरमनेनेति रामाश्रमः । ७. दन्त्यपाठे तु सल्यते सालः । "षल गतौ" । घञ् । ८ पुरद्वारन्तु गोपुरं भटरक्षितम् । तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्यास्तत्सदृशीत्यर्थः । ९. का० सू० ४।५।४। १०. सुधया लिप्तः सौधः । शेषेऽण् । ११. हरति मनांसि हर्म्यमित्यन्यत्र । प्रासादसौधहर्म्याणामत्राविशेषेणोपादानम् । परं तद्विशेषो न विस्मर्त्तव्यः । तदुक्तम्-"हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम् । सौधोऽस्त्री राजसदनम्" २।२।१०। इत्यमरः ।

[1]एकादश समाने । समानं मातीति[2] **समः** । समानः सदृशो वर्णोऽस्य **सवर्णः** । समाना ज्ञातिः अस्य **सज्ञातिः** । समान इव दृश्यते **सदृक्षः** । "[3]समानान्ययोश्च" सक् प्रत्ययः । शस्य च षत्वम् । "षढोः[4] कस्से" षस्य कत्वम् । "कषयोगे[5] क्षः" । समान इव दृश्यते **सदृशः** । "[6]समानान्ययोश्च टक्प्रत्ययः । अमात्रः । कानुबन्धत्वाद्गुणनिषेधः । टानुबन्धत्वान्नदादौ पठ्यते । "दृक् [7]दृश" इति समानस्य सभावः । समान इव दृश्यते **सदृक्** । "[8]समानान्ययोश्च" क्विप् । तुलया सम्मितस्तुल्यः । समानो धर्मो यस्य **सधर्मः** । समानं रूपं यस्य स **सरूपः** । "[9]रूपनामगोत्रस्थानवर्णवयोवयस्सु" इति समानस्य सादेशः । तोलनं **तुला** । "[10]तोलेरच्च" अङ्प्रत्ययः । ओकारस्योकारश्च । कषति **कक्षा** । उपमा । विधा । प्रख्यः । प्रकाशः । प्रतिमः । सन्निभः । प्रकारः ।

वित्मान्यो विद्यमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।
सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् जोटयेत् । **पर्यायं** विशेषणम् **उपमानेषु** । वित्समः । वित्सवर्णः । वित्सज्ञातिः । वित्सदृक्षः । वित्सदृशः । वित्सदृक् । वित्तुल्यः । वित्सधर्मः । वित्सरूपः । वित्तुल्यः । वित्कक्षः । अनेन प्रकारेण मान्यविद्यमानगुरुस्थानाम्बुजाननसिंहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोजनीयाः ।

व्यपदेशो निभं व्याजः पदं व्यतिकरश्छलम् ।
छद्म

सत कैतवे । व्यपदेशनं **व्यपदेशः**[11] । पुंसि । निर् अतिशयेन भाति **निभम्**[12] । व्यज्यते[13] **व्याजः** । पुंसि । पद्यते गम्यते कैतवेन **पदम्** । व्यतिकरणं **व्यतिकरः** । छलति [14]**छलम्** । क्लीबे छादयति **छद्म**[15] । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कपटम् । कूटम् । उपाधिः । मिषम् । लक्ष्यम्[16] ।

वृत्तान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्यं च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

द्वौ वार्तायाम् । वृत्तस्य चरितस्यान्तो **वृत्तान्तः**[17] । उत्प्रेक्षणम् **उत्प्रेक्षा** । वार्ता । प्रवृत्तिः । उदन्तः ।

---

१. अत्र समादयः सरूपान्ता नव समाने । तुलाकक्षोपमा विधा इति चत्वारस्तुलायामिति पार्थक्येन वक्तव्येऽपि सदृशाऽभिप्रायेण तदाह । क्वचिदभिधेति पाठः । परन्तु तुलार्थकविधाशब्दोऽत्र युक्तः । एवं च त्रयोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे तु "उपमाऽभिधा" इत्यनयोरुपमावाचकत्वे सति "एकादश" इति सङ्गच्छते । २. मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावात्समानं मातीति विग्रहश्चिन्त्यः । "सम वैक्लव्ये" समति वैक्लव्यं करोतीति समः । समः समत्व वैक्लव्यं करोत्येव । पचाद्यच् । ३. "कर्मण्युपमाने त्यदादौ दृशष्टक् सकौ च" का० सू० ४।३।७५। अत्र वृत्तिः । ४. का० सू० ३।८।४। ५. का० रू० सू० २५६ । सू० ६. "समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्" इति वार्तिकरूपेणोपलभ्यते ३।२।६०। काशिकायाम् । कातन्त्रसूत्रन्तु नैतादृशमुपलब्धम् । वृत्तिरपीदृशी काऽपि नास्ति । काशिकायां टीकोक्तवचनसाम्येऽपि प्रत्ययस्वरूपसाम्यं नास्ति । ७. "दृग्दृशदृक्षेषु समानस्य सः" का० सू० ४।६।६५। ८. का० सू० ४।२।७५। वृत्तिः । ९. "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इति० पा० सू० ६।३।८५। १०. वाचनिकं नैतत्, अतुलोपमाभ्यामिति ज्ञापितमिति प्रतिभाति । ११. व्यपदिश्यते व्यपदेशोऽतद्रूपस्य ताद्रूप्यम् । १२. नि नितरां तदिव भाति निभम् इत्यन्यत्र । १३. व्यजन्ति विक्षिपन्ति अनेन व्याजः । "अज गतिक्षेपणयोः" । घञ् । १४. छ्यति छिनत्ति वस्तुतत्त्वमनेनेति वा । छो छेदने । कल प्रत्ययः । १५. छाद्यते रूपमनेन छद्म । मनिन् । ह्रस्वः । "छद अपवारणे" । चुरादिः । १६. लक्ष शब्दोऽप्ययम् । १७. वृत्तोऽनुष्ठानीयो गवेषणीयोऽन्तः समाप्तिर्यस्येति रामाश्रमः ।

व्रातः[1] पूगः समाजश्च समूहः सन्ततिर्व्रजः ।
व्यूहो निकायो निकुरो निकुरम्बं कदम्बकम् ॥ १३९ ॥
ओघः समुदयः सङ्घः सङ्घातः समितिस्ततिः ।
निचयः प्रकरः पङ्क्तिः

विंशतिस्समूहे । वृणोति छादयति **व्रातः**[2]। पूज्यते पूयते वा **पूगः**[3]। संवीयते **समाजः**[4]। घञ् । समूह्यते सम्यग् ढौक्यते **समूहः** । संतन्यते **सन्ततिः** । व्रजन्त्यत्र **व्रजः** । उभयम् । विशेषेण उह्यते **व्यूहः** । निचीयतेऽसौ **निकायः** । कायश्च । निकीर्यते **निकरः** । समन्तान्निकुरन्ति[5]वदन्ति (छिन्दन्ति) **निकुरम्बः** । कुत्सितम् अम्बते कदम्बम् । स्वार्थे के **कदम्बकम्** । द्वौ-क्लीबे । उह्यते **ओघः**[6]। "न्यङ्क्वादीनां[7] हश्च घः।" समुदीयतेऽत्र **समुदयः**[8] । समुदायश्च । संहन्यन्तेऽस्मिन्नवयवाः **सङ्घः**[9] । संहन्यते **संघातः** । हन्तेर्घः । इण् गतौ सम्पूर्वः । समयनं **समितिः** । स्त्रियां क्तिः । तननं **ततिः** । निचीयतेऽसौ **निचयः** । उचयः । प्रचयः । सञ्चयः । प्रक्रियते **प्रकरः** । पचि विस्तारवचने । पञ्च् । इदनुबन्धानां धातूनां नलोपो नास्तीति । पञ्चनं **पङ्क्तिः** । स्त्रियां क्तिः ।

पशूनां समजो व्रजः ॥ १४० ॥

पशूनां व्रजः समूहः **समजः** कथ्यते । अज क्षेपणे । अज् सम्पूर्वः । समजनं समजः । "समुदोरजः पशुषु[10]" अल् ।

समीपाभ्यासमासन्नमभ्यर्णं सन्निधिं विदुः ।
अविदूरं च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीपे । समाप्नोति **समीपम्**[11] । अभ्युपेत्य चास्यते **अभ्यासः** । घञ् । आसद्यते स्म **आसन्नम्** । अर्द गतौ याचने च । अर्द अभिपूर्वः। अभ्यर्दति स्म **अभ्यर्णम्**। निष्ठाक्तः।"सामीप्ये[12]ऽभे[?]:" नेट् । 'दाद्[13]स्य च" दकारतकारयोर्नत्वम् । "रषा०[14]"—धातोर्नकारस्य णत्वम् । "[?]तवर्गस्य०" निष्ठानस्य णत्वम् । सन्निधीयते **सन्निधिः**। अ(व)विदुनोतीति **अविदूरम्** । "दुनोतेर्दीर्घश्च[15]" दुनोतेरक् प्रत्ययो भवति दीर्घश्च। टुदु उपतापे । निकटति **निकटम्** । (नि) नास्ति कटोऽस्येति वा निकटः । कटे वर्षावरणयोः । अवलगति (स्म) **अवलग्नः** । न अन्तरम् **अनन्तरम्** । सनीडम् । समर्यादम् । आरात् । सदेशम् । उपक-

१. चेतनाचेतनसर्वसमूहे व्रातादयो विंशतिशब्दाः प्रयुज्यन्ते । ओघो वर्गश्च सन्तान इति वंशस्यावान्तरवर्गभेद इति द्रष्टव्यः । परन्तु व्यवहारे प्रयोगसाङ्कर्यमपि दृश्यते । २. "वृञ् वरणे" । आतच् प्रत्ययः । अन्यत्र तु व्रत्यते एकस्मिन् राशौ नियम्यते इति मुण्डमिश्र इति ण्यन्ताद्व्रतेर्घञ् । [?] निर्देशाद् दीर्घः । ३. पूज्यते राशित्वेन मन्यते, पूयते जनसमुदायात् राशिभेदेन निर्वाच्यते वा पूगः । "छापूखडिभ्यः कित्" । उ०सू० १२४। इति पूङः पूञो वा किद् ग प्रत्ययः । पूगयतेः [?] स्थानिवत्त्वेन ण्यन्तात्कुत्वं दुस्साध्यम् । ४. "अज गतिक्षेपणयोः" । घञ् । ५. "कुर् छेदने" । [?]लकादम्बच् । अस्योत्त्वे निकुरुम्ब इत्यपि । ६. आङ्पूर्वाद्वहतेर्घञ् । "उह [?]" । ७. का० सू० ४।६।५७ । ८. सम्-उद्पूर्वकः "इण् गतौ" इणधातुः । अलि समुदयः । घञि समुदायः । ९. "सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः" का० सू० ४।५।६४। इति हन्तेर्डप्रत्ययो घादेशश्च । १०. का० सू० ४।५।५६ । ११. [?] आपोऽस्मिन्निति विग्रहे समासः । अच्समासान्तः । "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" इतीत्वम् । [?]मपि समीपम् । १२. का० सू० ४।६।६७ । १३. का० सू० ४।६।६८। १४. का० सू० [?] १५. "तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः" का० सू० ३।८।५। १६. का० उ० सू० १।५ ।

ष्टम् । अभ्यग्रम् । सन्निकटम् । आसन्नम् ।

जित्या हलिर्हलं सीरं लाङ्गलम्

पञ्च हले । जि जये । जि । जीयते **जित्या** । "[1]जयतेर्हलौ क्यचेव" क्यप् । "धातो[2]स्तोऽन्तः पानुबन्धे ।" "[3]स्त्रियामादा" । हलति **हलिः** । महद्धलं हलिरुच्यते । भूमिं हलति विलिखति **हलम्** । सीयते बध्यते वरत्रया **सीरम्** । लङ्गति भूमिं गच्छति **लाङ्गलम्** ।

तत्करो बलः ।

हलपर्यायतः करपर्यायेषु बलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकरः । हलिकरः । हलकरः । सीरकरः । लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

त्रयो बलभद्रे । रेवत्या दयितो भर्ता **रेवतीदयितः** । नीलं कृष्णं वर्णं वसनं यस्य स **नीलवसनः** । केशवस्याग्रजः **केशवाग्रजः** । कालिन्दीकर्षणः । बलः । प्रलम्बघ्नः ।

अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः श्वेतवाजी कपिध्वजः ।
गाण्डीवी कार्मुकी सव्यसाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥
वृषसेनः सुनिर्मोको दैत्यारिः शक्रनन्दनः ।
कर्णशूली किरीटी च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

सप्तदशार्जुने । अर्ज सर्ज अर्जने । अर्जति (कीर्तिम्) **अर्जुनः** । "[4]ऋकृतॄवृञ्यमिदार्यर्जिभ्य उनः" फल निष्पत्तौ । फलतीति **फाल्गुनः** । "[5]पिशुनफाल्गुनौ" एतौ उनप्रत्ययान्तौ निपात्येते । जयतीत्येवंशीलो **जिष्णुः** । "[6]जिभुवोः स्नुक्" । श्वेता वाजिनो यस्य स **श्वेतवाजी** । कपिर्वानरो ध्वजे यस्य स **कपिध्वजः** । गां जीवतीत्येवंशीलो [7]**गाण्डीवी** । कार्मुकं धनुरस्तीत्यस्य **कार्मुकी** । सव्ये साचयतीति [8]**सव्यसाची** । मध्यमश्चासौ पाण्डवः **मध्यमपाण्डवः** । युधिष्ठिरभीमयोः सहदेवनकुलयोर्मध्येऽर्जुनः, तेन मध्यमपाण्डवः कथ्यते । वृषं सिनोति बध्नातीति **वृषसेनः** । सुनिर्मुच्यते शत्रुभिः **सुनिर्मोकः** । दुःसाध्यत्वात् । दैत्यस्यारिः शत्रुः **दैत्यारिः** । शक्रस्येन्द्रस्य नन्दनः **शक्रनन्दनः** अर्जुनः कथ्यते । यमस्य पुत्रो युधिष्ठिरः । वायोर्भीमः । इन्द्रस्यार्जुनः. अश्विनीकुमारयोर्नकुलसहदेवौ पुत्रौ । असत्यमेवं तत् । कर्णे शूलं विद्यते यस्यासौ **कर्णशूली** । किरीटं शेखरं विद्यते यस्यासौ **किरीटी** । शब्दभेदोऽस्त्यस्य **शब्दभेदी** ।

---

१. का० सू० ४।२।२६ । अत्र दुर्गवृत्तिः । २. का० सू० ४।१।३० । ३. का० सू० २।४।४६ । ४. का० उ० सू० २।६० । ५. का० उ० सू० २।६१ । "फल निष्पत्तौ" उनप्रत्ययो गोऽन्तश्च । फलति कर्मसिद्धिमयते इत्यर्थः । ६. का० सू० ४।४।१८ । ७. गां जीवयतीति बोध्यम् । विराट्नगरे पाण्डवानुसन्धानाय भीष्मकर्तृकगवाक्रमणेऽर्जुनद्वारारक्षणस्य महाभारतोक्तत्वात् । वस्तुतस्तु गाञ्जीवं गाण्डीवमिति अर्जुनधनुषो नाम, तदस्यास्तीति गाञ्जीवी इति मत्वर्थीय इन् । तदुक्तं कल्पद्रुकोषे— "गाण्डीवो गाण्डिवोऽस्त्रियाम् । गाञ्जीवो गाञ्जिवोऽप्यस्त्री" इति १।५।४४। मूले गाण्डीवीशब्दस्तु गाण्डी ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । "गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्" पा० सू० ५।२।११० । इति मत्वर्थीयो वः । तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इन् । ८. सव्येन वामपाणिनाऽपि सचते बाणान् वर्षतीति सव्यसाची ।

केचित् शब्दवेदीति पठन्ति इत्यपि स्यात् । जि जये । धनपूर्वः । धनं जितवान् **धनञ्जयः** । "नाम्नि[1]" खः । "[2]नाम्यन्त०" गुणः । "ए[3]अय्" । "ह्रस्वा[4]रुषोर्मोन्तः ।" धनञ्जयेति कवेर्नामाभिधानमपि ज्ञातव्यम् । स कथम्भूतः ? शब्दभेदी । अतः[5] परः कोऽपि नास्ति । पाण्डवनाम मिषेण स्वनाम कथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोर्वैरी वायुपुत्रो वृकोदरः ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुशत्रुः । कीचकशत्रुः । कुरुरिपुः । कीचकरिपुः । अनिलसुतः । पवनात्मजः । इत्यादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि। वृकोऽरण्यश्वा तद्वत् उदरं यस्य स **वृकोदरः**[6] ।

समवर्ती यमः कालः कृतान्तो मृत्युरन्तकः ।। १४५ ।।

षड् यमे । सर्वेषु समं तुल्यं वर्तते **समवर्ती** । नान्तः । रिपौ मित्रे च समं वर्तते इति वा । यमयति निगृह्णाति प्रजां **यमः** । यमलजातत्वाद्वा । कलयति जन्तून् विनाशहेतुत्वेन **कालः**[7] । कृतोऽन्तो विनाशो येन स **कृतान्तः** । म्रियतेऽनेनेति **मृत्युः** । "[8]भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ"। अन्तं करोतीति **अन्तकः**[9] । शमनः । प्रेतपतिः । पितृपतिः । कीनाशः । वैवस्वतः । कालिन्दीसोदरः । धर्मराजः । दण्डधरः । हरिः । दक्षिणापतिः । श्राद्धदेवः ।

तदात्मजो जातरिपुः कौन्तेयो भरतान्वयः ।
कौरव्यो राजयक्ष्माऽसौ सोमवंशो युधिष्ठिरः ।। १४६ ।।

सप्त युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्त**तदात्मजः** । समवर्तिपुत्रः । यमोद्वहः । कृतान्तपोतः । मृत्युनन्दनः । अन्तकदारकः । इत्यादीनि युधिष्ठिरपर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । जातस्य स्वगोत्रस्य रिपुः [10]**जातरिपुः** । कुन्त्या अपत्यं पुमान् **कौन्तेयः** । भरतोऽन्वयोऽस्य **भरतान्वयः** । कुरोरपत्यं पुमान् **कौरव्यः** । राजभिर्नरेन्द्रैर्यक्ष्यते पूज्यते **राजयक्ष्मा** । [11]"सर्वधातुभ्यो मन्" । राजलक्ष्मा चेति केचित्पठन्ति । सोमो वंशोऽस्य **सोमवंशः** । युधि संग्रामे तिष्ठतीति **युधिष्ठिरः** ।

श्वेतार्जुनो शुचिः श्वेतो वलक्षं सितपाण्डुरम् ।
शुक्लावदातं धवलं पाण्डुः शुभ्रं शशिप्रभम् ।। १४७ ।।

त्रयोदश श्वेते । श्वेतते **श्वेतः**[12] । अर्ज्यतेऽ**र्जुनः**[13] । शोचतीति **शुचिः**[14] । शुच शोके । श्यायते **श्येतः**[15] । अवलक्षयति **अवलक्षः** । वलक्षश्च[16] । सिनोति बध्नाति(मनः)**सितः** । पण्डते याति मनोऽत्र **पाण्डुरः** । अथवा"नगपांशुपाण्डुभ्यो रः" पाण्डुत्वमस्यास्तीति पाण्डुरः। पाण्डुः । पाण्डरः । शोकति मनोऽस्मिन् **शुक्लः** । शुक गतौ । अवदायते शोध्यते **अवदातः**[17] । धवति **धवलः**[18] । पण्डते याति

१. "नाम्नि तृभृवृजिधारितपिदमिसहां संज्ञायाम्" का० सू० ४।३।४४ । २. का० सू० ३।५।१। ३. का० सू०१।२।१२ । ४. का० सू० ४।१ ।२२ । ५. धनञ्जयात्परं कश्चिच्छब्दभेदवेत्ता नास्तीत्यर्थः । ६. वृको भीमजठराग्निः स उदरे यस्येत्यपि । ७. कलयतीत्यस्य स्थाने कालयतीति वक्तव्यम् । ८. का० उ० सू० २।३४ । ९. अन्तङ्करोत्यन्तयति, अन्तयत्यन्तक इति यावत् । १०. कोशान्तरप्रमाणान्महाभारतादिकथासंवादात् महाकविव्यवहाराच्च "अजातरिपुः" इतिच्छेदोऽत्र युक्तः । न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य "अजातशत्रुः" इति संज्ञा । तदुक्तम्—"अजातशत्रुः शल्यारिर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः" । अभि० चि० ३।३०८ । ११. का०उ०सू० ४।२८ । १२. "श्विता वर्णे" । भ्वादि० आत्मने० पचाद्यच् । १३. अर्ज्यते सङ्गृह्यते जनैः । १४. शुच्युज्ज्वलवस्तूनां सर्वस्वर्णादित्वं लोकानुभवसिद्धम् । शोचति निर्मलीभवति शुचिः । शुच दीप्तौ । इन् । १५. श्यैङ् गतौ । श्यायते गच्छति नीलादिवर्णविशुद्धत्वम् । "दृश्याभ्यामितन्" । पा० उ० सू० ३।९३ । इतन् । १६. अवलक्षयति अवलक्ष्यते वा अन्यवर्णापेक्षया उत्कृष्टत्वेनेति । वष्टि भागुरिरल्लोपमित्यल्लोपस्तद्वे । १७. अवदायते अव दैप् शोधने । कर्मणि क्तः । १८. धुनोत्यशोभाम् इति हेमचन्द्रः । धावति मनोऽत्र । धाव् गतिशुद्ध्योः कलच्, ह्रस्वश्चेतीति रामाश्रमः ।

मनोऽस्मिन् **पाण्डुः**[1] । शोभते **शुभ्रः** । शशिन इव प्रभा यस्य **शशिप्रभम्** । गौरः । हरिणः ।

कृष्णं नीलासितं कालम्

चत्वारः कृष्णे । वर्णान् कर्षति[2] **कृष्णः** । नीलति **नीलम्**[3] । उभयम् । न सितम् **असितम्** । कं सुखमालाति **कालः** । कालयति वा मनः[4] कालः । मेचकम् । श्यामलम् । श्यामं च । पालाशम्[5] । हरित् । शिखिकण्ठाभः इति दुर्गः ।

धूम्रं धूम्रमलिप्रभः ।

विशिष्ट[6]कृष्णे त्रयः । धूनोति **धूम्रः** । धूनोत्यभिभवति रागं **धूम्रः** । धूमलश्च । अलिवत्प्रभा यस्य सोऽ**लिप्रभः** ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतमसं तमम् ॥ १४८ ॥

ताम्यति मन्दीभवति चक्षुरत्र **तमः** । सान्तम् । क्लीबे । अन्धं दृष्टय् पवातं करोतीति **अन्धकारम्** । तिम्यते आच्छाद्यतेऽनेन **तिमिरम्** । कान्तारे ध्वन्यते **ध्वान्तम्**[7] । सम् सम्यक् प्रकारेण तमः **सन्तमसम्** । ताम्यतीति **तमम**मित्यदन्तम् । क्लीबे । अवतमसम् । अन्धतमसम् । तमिस्रम् । भूछाया । भूछायम् । दिगम्बरम् ।

लोहितं रक्तमाताम्रं पाटलं विशदारुणम् ।

पञ्च रक्ते[8] । रोहति जायते शोभाऽत्र **लोहितः**[9] । रज्यते **रक्तम्**[10] । आताम्यते काङ्क्ष्यते कर्णेषु **आताम्रः** । पाटयतीति **पाटलः** । पाटेरलः । विशीयते **विशदः** । ऋच्छति इयर्ति (र्ति वाऽ) **रुणः** ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

हरिद्रारक्तवर्णे त्रयः । पीयते मनोऽनेन **पीतम्**[11] । गाते गच्छति वर्णविशेषं **गौरः**[12] । तथा च नाममालायाम्[13]—"गौरः श्वेतेऽरुणे पीते विशुद्धे चन्द्रमस्यपि । विशदे" । हरिद्रावत् आभा छविर्यस्य **हरिद्राभः** ।

पालाशं हरितं हरित् ॥१४९॥

हरिद्वर्णे त्रयः । पलाशस्य वर्णस्यायं **पालाशः** । पलाश इत्याह[14]—"राक्षसे । किंशुके वर्णे पलाशाख्या । हरित्यपि" । हरति चित्तं **हरितम्** । **हरित्** ।

---

१. पन्यते स्तूयते पाण्डुः । "पनेर्दीर्घश्च" इति डुः । इति हेमचन्द्रः । २. कर्षति मन इति रामाश्रमः । कृषेर्वर्णे इति नक् । ३. "णील वर्णे" । नाम्युपधेति का० सू० कः । ४. कालयति मन इत्यन्यत्र । ५. अयं पाठोऽत्र न युक्तः । "पालाशं हरितं हरित्" इति पद्यस्य टीकायामग्रे द्रष्टव्यः । ६. कृष्णमिश्रितलोहिते धूम्रधूमलशब्दाविति वैशिष्यार्थः । तदुक्तम्—"धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इत्यमरः । १।५।१६ । ७. कान्तारप्रदेशादिषु तमसोऽविच्छिन्नदिवेशात्तदाह—"कान्तारे ध्वन्यते" इति । सर्वरोगहरतया ध्वन्यते ध्वान्तमिति हेमचन्द्रः । ८. अत्र द्वौ रक्ते, त्रयो विशदारुणे, इति वक्तव्यम् । विशदं च तद्रूपम्, श्वेतविशिष्टरक्तमित्यर्थः । तदेव पाटलम् । तदुक्तम्—"श्वेतरक्तस्तु पाटलः" इत्यमरः । ९. "रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे" । "रुहे रश्च लो वा" । पा०उ०सू० ३।३४ । इतीतन्, लत्वं च वा । १०. रज्जति स्म रज्यते स्म वा रक्तमित्यन्यत्र । ११. पीयते वर्णान् पीतः । "पीङ् पाने" । दि० । इत्यपि । १२. गूरते उद्युङ्क्ते मनोऽस्मिन् गौरः । "गूरी उद्यमने" । ऋज्रेन्द्र इत्युणादिसूत्रेण व्युत्पादितः । "गूयते गौरः" इति हेमचन्द्रः । "गूङ् संश्लेषणे । १३. अने० स० २।४२५ । १४. शा० को० ५२९ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्ग्यपि ।

षड् रक्तवर्णे[1] । "श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः[2]" अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारश्च । **हरिणी** । तथा च हलायुधे[3]—"शुकाभा हरिणी स्मृता ।" हरिता च । रोहति जायते शोभाऽत्र लोहितः । रलयोरैक्यम् । "श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः" अनेन ईस्तकारस्य च नकारः । लोहिनी जाता । हलायुधे[4]—

"जपाकुसुमसंकाशा लोहिनी परिकीर्तिता"

शोणते **शोणी** । गाते गौरः । नदादित्वादीः । **गौरी** । श्यायते गच्छति श्रियं **श्येनी** । हलायुधे[5]—"श्येनी कुमुदपत्राभा ।" श्येना च । पेशति पिशङ्गः । ईप्रत्यये **पिशङ्गी** ।

सारङ्गी शबरी काली कल्माषी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

षट्[6] पञ्च वर्णे । सारयति गमयति [बहुवर्णान्] **सारङ्गः** । ईप्रत्यये **सारङ्गी** । शबति याति वर्णान् शबरः शबलश्च । ईप्रत्यये **शबरी** । कालयति कालः । ईप्रत्यये **काली** । कलयति वर्णान् कल्माषः । ईः **कल्माषी** । नील गन्धे । नीलति नीलम् । ईप्रत्यये **नीली** । पिञ्जति **पिञ्जरः** । ईप्रत्यये **पिञ्जरी** ।

परागं मधु किञ्जल्कं मकरन्दं च कौसुमम् ।

पञ्च[7] कुसुमरेणौ । परं प्रकर्षमग्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु **परागः**[8] । उभयम् । मन्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु **मधु** । उभयम् । किं जल्पति **किञ्जल्कम्**[9] । मङ्क्यते मण्डयते पुष्पमनेन **मकरन्दम्**[10] । कुसुमस्येदं **कौसुमम्** ।

उपचाराद्रजः पांशुरेणुधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । रंज रागे । रजत्यनेन **रजः** । "उषिरंजिभ्यो यण्वत्[11]" । नष्क धष्क पशि नाशने । पंशयते **पांशुः** । "[12]बहिरहितलिपंशिभ्य उण् ।" रीङ् गतौ । रीयते **रेणुः** । 'दाभारीवृभ्यो नुः" । धूयते धुनोति दृष्टिं वा **धूलिः** । **उपचारात्** पुष्परजः । सुमनःपांशुः । पुष्परेणुः । लतान्तधूलिः । प्रसवरजः । प्रसूनरेणुः । इत्यादीनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्कावद्यमलिनं किञ्जल्कं लक्ष्म लाञ्छनम्
निबोधमधमं पङ्कं मलीमसमपि त्यजेत् ॥१५२॥

---

१. अत्र षट्स्त्रीलिङ्गवाचके तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम्, न तु रक्तवर्णे । तत्तद्वर्णभेदो यथा—हरिणी शुकाभा, लोहिनी जपाकुसुतङ्काशा, शोणी कोकनदच्छविः, गौरी हरिद्राभा, श्येनी कुमुदपत्राभा, पिशङ्गी पीतरक्ता । २. "श्येतैतहरितभरितरोहिताद् वर्णान्तो नः" हे०श० २।४।३६ । ३ "श्येनी कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमसङ्काशा रोहिणी परिकीर्त्तिता ।" इति पूर्णः श्लोकः । ३. हलायु० ४।५३ । ४. हला० ४।५३ । ५. हला० ४।५३ । ६. अत्र षट् स्त्रीलिङ्गवाचके तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तद्भेदो यथा—सारङ्गीशम्बरीकल्याण्यश्चित्रवर्णाः । काली नीलावर्णे । पिञ्जरी पीतरक्ता । ७. अत्र परागकिञ्जल्कशब्दौ पुष्परजोवाचकौ, मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परसवाचकौ, कौसुमशब्दस्तदुभयवाचकः, इति विवेकः । ८. परागच्छति परमुत्कर्षमगति वेति विग्रहः [illegible] । ९. किञ्चिज्जलति, "जल अपवारणे" । बाहुलकात्कः । किञ्चिज्जलति जडीभवति इति [illegible] । १०. मकरमपि द्यति कामजनकत्वान्मकरन्दः । "दो अवखण्डने" । कः । मकरमपि [illegible] [illegible] वा । "अदि बन्धने" । कर्मण्यण् । शकन्ध्वादिः । इति रामाश्रमः । ११. का०उ० सू० ४।५९ । १२. का० उ० सू० १।३ । १२. का० उ० सू०२।७ ।

दश कलङ्के । कल्यते लक्षणेन **कलङ्कः**[1] । न वद्यं समीचीनम् **अवद्यम्**[2] । मल्यते धार्यतेऽपयशोऽनेन **मलिनम्** । किं कुत्सितं जल्पति **किञ्जल्कम्** । लक्षयति परं नान्तम् **लक्ष्म** । लाञ्छ्यतेऽनेन **लाञ्छनम्** । निबुध्यते **निबोधम्**[3] । नञ् पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । "धर्मसीमाग्रीष्माधमाः[4]" । [5]पञ्च्यते **पङ्कम्** । मलिना कदर्येण मस्यते[6] परिमाणीक्रियते **मलीमसः** । तं त्यजेत् सत्पुरुषः ।

जनोदाहरणं कीर्तिं साधुवादं यशो विदुः ।

वर्णं गुणावलिं ख्यातिं

सप्त यशसि । जनानां लोकानामुदाहरणं, जनेन लोकेनोदाह्रियते वा **जनोदाहरणम्** । कृत संशब्दे । कृत्–"चुरादिश्च[7] ।" इन् । कृतः[8] कारिते इर् । किर्ति जातः । नामिनोर्वा[9] । कीर्ति जातम् । कीर्तनं कीर्तिः ।"कीर्तीपोः क्तिश्च[10]" क्तिप्रत्ययः । कारितलोपः । त्रिषु व्यञ्जनेषु सञ्जातेषु स्वजातीयानां मध्ये एकव्यञ्जनलोपः । एकस्तकारो लुप्यते । सिः । रेफः । साधूनां सत्पुरुषाणां वादः **साधुवादः** । कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते **यशः** । "[11]यजः शिश्च" अस्मादसन् प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । जस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । वर्ण्यते साधुजनेन **वर्णः** । गुणानामवलिः श्रेणिः **गुणावलिः** । ख्यायते **ख्यातिः** । श्लोकः । अभिख्या । समाख्या ।

अवधानं तु साहसम् ॥१५३॥

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवदानं च । साह्यते [12]**साहसम्** ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगाः शासनं तथा ।

षडादेशे । प्रेष्यते इति **प्रेष्यः** । आ समन्तात् दिशतीत्यादेशः[13] । निदिश्यते निदिशतीति वा **निदेशः** । आजानातीत्याज्ञा[14] । नियुज्यन्ते **नियोगाः** । शास्यते प्रतिपाद्यते **शासनम्** । शासु अनुशिष्टौ ।

सन्देशः प्रिययोः

स्त्रीपुरुषयोः मुखवार्तायां **सन्देशः** । सन्दिशति [15]**सन्देशः** । अमरसिंहनाममालायाम्[16]– "सन्देशवाग्वाचिकं स्यात् ।"

वार्ता प्रवृत्तिः किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिर्लोकवृत्तं विद्यतेऽस्या वार्ता । "[17]प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चावृत्तिभ्यो णः"

---

१. कं ब्रह्माणमपि लङ्घयति हीनतां गमयतीत्यन्यत्र । २. न वदितुं योग्यमित्यवद्यं गर्ह्यम् । "अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु" इति यत् । ३. नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । निबुध्यते निश्चयेन ज्ञायते कलङ्किजनोऽनेनेति करणे घञ् । कलङ्किनां राजशासनचिह्नितत्वदर्शनात् । ४. का० उ० सू० १५३ । ५. पञ्च्यते दुःखमनेन । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् । ६. "मसी समी परिमाणे" । पुंसि संज्ञायां घः । यद्वा मलोऽस्यास्तीति "ज्योत्स्नातमिस्रे" त्यादिना मत्वर्थीय ईयस् प्रत्ययः । टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्यः । तत्र मलिमस इत्यापत्तेः । ७. का० सू० ३।२।११ । ८. कीर्तीपोः क्तिश्चेति निर्देशात् कृतः कारिते इर् । ९. "नामिनोर्वोऽकुर्छुरोर्व्यञ्जने" का०सू० ३।८।१४ । १०. का०सू० ४।५।८६ । ११. का०उ० सू० ४।६० । १२. सहसि बले भवं साहसम् । १३. आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४. अत्रापि आज्ञायते आज्ञानं वेति विग्रहः । १५. सन्दिश्यते इति कर्मणि घञ् न्याय्यः । १६. अम० को० १।६।१७ । १७. पा० सू० ५।२।१०१ ।

स्त्रीक्लीबे वार्त्तं च । प्रवर्तते जनोऽनया **प्रवृत्तिः** । स्त्रियाम् । किं कुत्सितं वदत्यत्र किंवदन्ती[1] । वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

षड् दृढे । कठति कृच्छ्रेण जीवति **कठोरः**[2] । कठति **कठिनः** । स्तभ्नोति स्म **स्तब्धः** । कर्कः सौत्रोऽयं धातुः । कर्कति करोति निर्दयत्वं **कर्कशः** । परुष्यति कुप्यतीति **परुषः**[3] । कुप क्रुध रुष रोषे । दृह दृहि वृद्धौ । दृहति स्म **दृढः** । "[4]परिवृढदृढौ प्रभुबलवतोः ।" क्रूरः । कक्खटः । खरः । चण्डः । निष्ठुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एधितम् । सर्वे त्रिषु ।

अश्लीलं काहलं फल्गु

निस्सारे वचसि त्रयः । न श्लीयते न श्लिष्यते सतां चित्तम् **अश्लीलम्**[5] । वचनम् । कं शिरः आ समन्तात् हलति अशोभमानं करोतीति **काहलम्**[6] । लोहलञ्च । लुहः सौत्रः । फल निष्पत्तौ । फलति **फल्गुः**[7] । "[8]रज्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलघवः ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

त्रयः कोमले । कौ पृथिव्यां मलते **कोमलम्**[9] । मृद क्षोदे । मृद्नातीति **मृदु**[10] । पिंशति **पेशलम्**[11] । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

षड् नवीने । प्रत्यग्रगति **प्रत्यग्रम्**[12] । सम्प्रति भवं **साम्प्रतम्** । नूयते **नव्यम्**[13] । नौति **नवम्**[14] । नूयते **नूतनम्**[15] । अग्रे भवम् **अग्रिमम्**[16] । "पृथ्वादिभ्य इमन्वा" । अभिनवम् ।

---

१. कोऽपि वादः । किम्पूर्वाद् वदेरौणादिको झच् प्रत्ययः, झत्यान्तः । गौरादित्वान्ङीप् । इति रामाश्रमः । २ "कठिचकिभ्यामोरः" का० उ० सू० ४।३७ । "कठ कृच्छ्रजीवने" । ३. वष्टि-भागुरिरल्लोपमित्यपेरल्लोपो नत्वपस्येति टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्यः । रामाश्रमस्तु—"पिपर्त्ति पूरयति अलं बुद्धिं करोति । "पॄ पालनपूरणयोः" । "पॄनहि" इत्यादिना उ० सू० ४।७५ । उषच् । इत्याह ।" पृणाति पूरयति परं कोपेनेति हेमचन्द्रः । ४. का० सू० ४।६।९५ । ५. न श्रियं लातीति अश्लीलम् । कप्रत्ययः । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । इति रामाश्रमः । न श्रीरस्यास्तीति सिध्मादित्वान्म-त्वर्थीयो लः । ६. काहलोऽस्फुटवागिति हेमचन्द्रः । ७. फलति विशीर्यते इत्यन्यत्र । ८. का० उ० सू० १।९। इत्युप्रत्ययः गश्च । ९. कौ पृथिव्यां मलते धारयति श्रियम् इत्यर्थः । "मल मल्ल धारणे" पचाद्यच् । परमेवं कुमल इत्येव सिध्यति । वस्तुतस्तु "कोमल" शब्दस्य सिद्धिः प्रकारान्तरेणैव साधनीया । कौतीति कोमलः इति विग्रहोऽभिधानचिन्तामणौ । काम्यते जनैः इत्यन्यत्र । १०. मृद्यते इति कर्मणि कु-प्रत्ययो न्याय्यः । ११. पिंशत्येकदेशेन सर्वं करोतीति । औणादिकोऽलच् । रामाश्रमस्तु–'पिश समाधौ' पेशनं पेशः समाहितचित्तता, सोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वादलच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दक्षार्थो मुख्यः कोमलार्थो गौणः । तदुक्तम्—"दक्षे चतुरपेशलपटवः सूत्थान उष्णश्च" इत्यमरः । ३।१।१९ । "दक्षस्तु पेशलः ।" इति अभि० चि० ३।४८ । १२ "अग्र गतौ" । डः । प्रतिनवमग्रमस्येति टीकारामि-रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हेमचन्द्रः । १३. 'णु स्तवने" । अचो यत् । १४. नूयते नवम् । ऋदोरप् । एवं कर्मणि विग्रहो युक्तः । १५. नवमेव नूतनम् । "नवस्य नूरादेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्ययाः" वा० ५।४।३० । इति तनप् प्रत्ययो नूरादेशश्च । इत्यत्र । १६. 'अग्रादिपश्चाड्डिमच्" वा० इति डिमच् । नात्र पृथ्वादिभ्यः, इमन्, तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथ्वादौ पाठाभावाच्च । इत्यादि । [illegible] निष्टरूपापत्तेः ।

नूतनश्च । सर्वे त्रिषु ।

पुराणं जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् **पुराणम्** । जठ इति सौत्रोऽयं धातुः । जठतीति **जठरम्**[1] । जीर्यते **जीर्णम्** । प्राक् पूर्वं भवम् **प्राक्तनम्** । सुष्ठु चिरं भवं सुचिरन्तनम् । प्रतनम् । प्रत्नम् ।

भो रे हं हो ह्यामन्त्रे

एते शब्दा आमन्त्रणार्थे वर्तन्ते । भू सत्तायाम् । **भोः**[2] । रेपृ प्लवगतौ । **रे** । हनु हिंसागत्योः । **हं** । हु दाने । **हो** । हि गतौ । **हे** ।

कश्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देहार्थे[3] द्वौ शब्दौ वर्तेते । अविशेषाभिधाने चिचनशब्दौ अवगन्तव्यौ । तथा चोक्तम्—"किमः सर्वविभक्त्यन्ताच्चिचनौ ।" कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि । स्त्रियां काचित् काचन इत्यादि । क्लीबे किञ्चित् । किञ्चन । इत्यादि ।

[4]द्राक्क्षणेऽह्नाय[5] सपदि[6]

शीघ्रार्थे त्रयः शब्दा वर्तन्ते ।

निषेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

निषेधे चत्वारः शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुङ्गमुच्चमुन्नतमुच्छ्रितम् ।

षड् दीर्घे । उच्चीयते **उच्चैस्** । अव्ययः । उच्चं च अवचं च **उच्चावचम्** । तुजति दैर्घ्यमादत्ते **तुङ्गम्**[7] । उच्चीयते **उच्चम्** । उन्नमत्युन्नतम्[8] । उच्छ्रीयते **उच्छ्रितम्**[9] । प्रांशुः[10] तालव्यः । उदग्रम् दीर्घम् । आयतं च ।

नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर्ह्रस्वं नयेत्परम् ॥१५८॥

षड् ह्रस्वे । निचीयते नीचम्[11] । न्यञ्चतीति न्यक् । आतन्यते आतनम्[12] । कौति व्याधिं कुब्जः[13] ।

---

१. यद्यपि जरठशब्दो जीर्णे प्रसिद्धो जठरशब्दस्तूदरे, तथापि क्वचिज्जठरशब्दोऽपि जीर्णे पठितस्तदाशयेनाह–जठतीति जठरमिति । यदुक्तम्—"जठरः कुक्षिवृद्धयोः" अने० स० ३।५५१ । २. भातीति भोस् । डोस्प्रत्ययः । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । विच् । यथा रे चेटाः । हं, हो, इति पृथक्सम्बोधनद्वयमुक्तम् । परन्तु नाटकादौ 'हं हो' इत्यखण्ड एव सम्बोधने प्रयुज्यते । हं जुहोतीति हंहो । यथा हंहो तिष्ठ सखे । हिनोति हे । "हि गतौ वृद्धौ" । विच् । यथा हे हेरम्ब । ३. अविशेषार्थे इत्याशयः । ४. द्राति द्राक् । "द्रा कुत्सायां गतौ" । बाहुलकात्कः । अकार इत् । स चासौ क्षणो द्राक्क्षणः । ५. आह्ववनम् आह्नायः "ह्नुङ् अपनयने" । घञ् । पृषोदरादित्वाद् वस्य यः । ६. सम्पद्यते सपदि । "पद गतौ" । इन् । पृषोदरादित्वात्समोऽन्त्यलोपः । ७. तुञ्जति दैर्घ्यं पालयतीति । घञ् । कुत्वम् । ८. उन्नमति स्म उन्नतम् । ९. ऊर्ध्वं श्रयते उच्छ्रितम् । १०. प्राश्नुते दैर्घ्यं प्रांशु । "अशूङ् व्याप्तौ" । ११. निकृष्टामों लक्ष्मीं चिनोतीति । डः । इति रामाश्रमः । निम्नमञ्चति, नीचैरस्त्यस्य वा । अर्श आदित्वादच् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । १२. नात्र प्रमाणमुपलब्धम् । १३. कौति व्याधिविशेषं ब्रूते सूचयति । कौ पृथिव्याम् उब्जति ऋजूभवति । "उब्ज आर्जवे ।" अच् । शकन्ध्वादिः । कु ईषद् उब्जमार्जवमस्य वेति रामाश्रमः ।

न्युब्जश्च । निचीयते नीचैस् । ह्रसति ह्रस्वः ।

अमा सह समं साकं सार्द्धं सत्रा सजूः समाः ।

अष्टौ सार्धे । अमति **अमा**[1] । सह हन्ति गच्छति **सह** । सह मिनोति **समम्** । सह अकति गच्छति **साकम्** । सह ऋद्धम् **सार्द्धम्** । सह त्रायते **सत्रा** । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुष् सहपूर्वः । सह जुषते **सजूः** । क्विप् च वेर्लोपः । सिः । व्यञ्ज०[2] । सिलोपः । समन्ति **समाः**[3] । सह मान्ति वर्तन्ते ऋतवो यासां वा । स्त्रीबहुत्वे ।

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं सदा ॥१५९॥

षट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले **सर्वदा** । "काले किं[4] सर्वयदेकान्येभ्यः एव दा" । संतन्यतेस्म **सततं**[5] सन्ततम् च । नियच्छति **नित्यम्**[6] । श्वसतीति **शश्वत्**[7] । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपातः । सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य सभावश्च । सर्वस्मिन् काले **सदा** । सनातनं,[8] सदातनम् । ध्रुवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनश्वरम् । अविनश्वरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनावस्थां विरहं पल्लकं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोजनं **वियोगः** । मदनस्य कन्दर्पस्यावस्था **मदनावस्था** । विरहणं **विरहः** । मल मल्ल धारणे । मल्लस्थाने केचित्पल्ल इति पठन्ति । पल्लते पल्लः । स्वार्थे कः **पल्लकः**[9] ।

प्रेमाभिलापमालभ्यं रागं स्नेहमतः परम् ॥१६०॥

पञ्च स्नेहे । प्रियस्य भावः कर्म वा **प्रेमा** । प्रिय[10] °स्थिरेति प्रादेशः । अभिलप्यते ऽभिलापः । लप श्लेषणक्रीडनयोः । आलभ्यते **आलभ्यम्**[11] । "[12]शकिसहिपवर्गान्ताच्च" । रञ्ज रागे । रञ्ज् । रञ्जनं **रागः** । भावे घञ् । "[13]रञ्जेर्भावकरणयोः" पञ्चमलोपः । अस्यो० दीर्घः । "चजोः[14] कगौ धुट् घानुबन्धयोः ।" जकारगकारः । प्र०सिः । रेफः । अथवा रज्यतेऽनेन रागः । "व्यञ्जनाच्च[15]" । करणे घञ् । प्र० "रञ्जेर्भावकरणयोः" पञ्चमलोपः । अस्यो० दीर्घः । चजोः कगाविति जकारगकारः । स्निह्यते **स्नेहः** ।

संहितं सहितं युक्तं संपृक्तं संभृतं युतम् ।
संस्कृतं समवेतं च प्राहुरन्वीतमन्वितम् ॥१६१॥

---

१. न माति सह मापिनामनेकत्वान्मेयतां न गच्छति । डप्रत्ययः । कप्रत्ययो वा । २. "व्यञ्जनाच्च" का० सू० २।१।४६ । ३. "मसी समी परिमाणे" । सम धातुः । पचाद्यच् । समनिति मान्यमव्ययम् । सहार्थकमत्रोक्तम् । तद्भिन्नः समा शब्दो वर्षवाचको न तु सहार्थवाचकः । तदुक्तम्—"हायनोऽस्त्री शरत्समाः" इत्यमरः । अतोऽस्मिन्नर्थे एतस्य प्रामाण्यं चिन्त्यम् । सह मान्ति ऋतवो यासामिति विग्रहेऽपि वर्षवाचकसमाशब्द एव सङ्गच्छते । तत्रैव ऋतूनां सहमानात् । ४. का० सू० २।६।३४ । ५. "तनु विस्तारे" । क्तः । "समो वा हिततत्योः" इति नलोपः । ६. त्यब्नेर्ध्रुवे नित्यमिति वा० [illegible] । नियच्छति नियतं भवतीत्यर्थः । ७. अत्र शश्वतीति वक्तुं युक्तम् । [illegible] । ८. सनातनादिशब्दानां विशेष्यनिघ्नानां यथोक्तशश्वदादिशब्दसमानार्थतया [illegible] । ९. मल्लकपल्लकशब्दयोर्विरहार्थत्वे प्रमाणान्तरं नोपलब्धम् । १०. पा० सू० ६।४।१५७ । इति प्रादेशः । इमनिच्प्रत्ययः । पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा इति । ११. [illegible] संवादो नोपलब्धः । १२. का० सू० ४।२।११ । १३. का० सू० ४।१।६६ । १४. का० सू० ४।६।५६ । १५. का० सू० ४।५।९९ ।

दश सहिते । संधीयते **संहितम्**[1] । **सहितम्** ।

"[2]लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुमुकाममनसोरपि ।
समो वा हिततयोर्मांसस्य पचि युड्घञोः॥"

योजनं **युक्तम्**[3] । पृची सम्पर्के । पृच् । सम्पृणक्ति स्म **सम्पृक्तम्** । "गत्यर्थाकर्मक०[4]" इति कर्तरि क्तप्रत्ययः । "चजोः कगौ[5]"—चस्य कः । सम्भ्रियते स्म **सम्भृतम्** । यौतिस्म **युतम्** । संस्क्रियते स्म **संस्कृतम्** । समवेयते स्म **समवेतम्** । अन्वीयते स्म **अन्वीतम्** । **अन्वितम्** ।

वर्त्माऽध्वा सरणिः पन्थाः मार्गः प्रचरसञ्चरौ ।

सप्त मार्गे । वर्तन्ते प्रतिपद्यन्ते जना येन तत् **वर्त्म** । नान्तम् । "[6]सर्वधातुभ्यो मन्" । गच्छति अतति चलति अनेन नान्तोऽध्वा[7] । सरत्यनया **सरणिः** । दन्ततालव्यः । सृतिश्चास्त्रियाम् । द्वौ । पतन्ति गच्छन्ति अनेन **पन्थाः**[8] । नान्तः । इदन्तोऽपि । पथिः । पथः । पथानः । पन्थ इत्यपि । एते पुंसि । मार्जनं मार्गयन्त्यनेन वा **मार्गः**[9] । पुंसि । प्रकर्षेण चरत्यनेनेति **प्रचरः** । सञ्चरत्यनेनेति **सञ्चरः** । पद्धतिः । एकपदी । वर्तनी । अयनम् । पदवी । पद्या । निगमः ।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने **गङ्गानामानि** भवन्ति । त्रिवर्त्मा । त्र्यध्वा । त्रिसरणिः । त्रिपथा । त्रिप्रचरा । त्रिसञ्चरा ।

घोषो गोमण्डलं व्रजः ॥१६२॥

त्रयो गवां स्थाने । घोषन्ते [10]गावोऽत्र **घोषः** । गवां मण्डलम् **गोमण्डलम्** । गावो व्रजन्त्यत्र **व्रजः** । गोकुलम् । गोष्ठम् ।

शृङ्गी दृतिहरिर्नाथहरिस्तिर्यञ्च शृङ्गिणः ।

पञ्च महिषादिके । परं शृणाति हिनस्तीति **शृङ्गः**[11] (म्) । त्रिपु । हृञ् । हरणे । हृ **दृति**पूर्वः । दृतिं चर्मप्रसेवकं जलभाण्डं हरति वहति **दृतिहरिः** । "हरतेर्दृतिनाथयोः[12] पशौ" इप्रत्ययः । नाम्यन्तगुणः । नाथं स्वामिनं हरतीति [13]**नाथहरिः** । "हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ" । तिरोऽञ्चयतीति

---

१. संहीयते इति विग्रहो न युक्तः । सम्पूर्वस्य हाकत्त्यागार्थकत्वात्प्रस्तुतार्थाप्रतीतेः । अतः सन्धीयते स्म संहितम् । सम्पूर्वाद्धाञः क्तप्रत्यये धाञो हिरिति ह्यादेशः । २. ६।१।१४४ का० सू० । ३. युज्यते स्म युक्तम् । ४. का० सू० ४।६।४९ । ५. का० सू० ४।६।५६ । ६. का० उ० सू० ४।२८ । ७. अतति सन्ततं गच्छति जनोऽत्र अध्वा । "अत सातत्यगमने" । "वनिस्तस्य घः" का० उ० सू० ६।५९ । इति वनिप्रत्ययः, तकारस्य धकारश्च । "अत्ति बलं पथिकानाम् । अतेर्ध-श्चेति क्वनिप् धश्चान्तादेशः ।" इति रामाश्रमः । ८. "पत्लृ पतने" । पतेस्थश्चेतीति थोऽन्तादेशश्चेति अन्याशयः । पथन्तेऽनेन । "पथे गतौ" । पथन्तेऽनेन । "पथे गतौ" । पथिमथिभ्यामिनिः । इति रामाश्रमः । ९. मृज्यते वितृणीक्रियते पादैः । मृजू शुद्धौ । घञ् । वृद्धिः । कुत्वं च । मार्ग्यते इति वा । "मार्ग अन्वेषणे" । १०. वाशन्ते शब्दायन्ते इत्यर्थः "वाशृ शब्दे" । ११. "शृङ्गभृङ्गाङ्गानि" का० उ० सू० १।४।४८ । "शॄ हिंसायाम्" । अङ्गप्रत्यये निपातः । शृङ्गं गवादीनां विषाणमिति तत्रैव दुर्गः । ततः शृङ्गमस्यास्तीति अर्श आदिभ्योऽच् । एवं सति महिषादिसंज्ञा संगच्छते । अन्नभावे विषाण-मेवार्थः स्यात् । १२. का० सू० ४।३।२६ । १३. नाथं नासारज्जुं हरतीत्यन्यत्र ।

तिर्यञ्चः[1] । शृणातीति शृङ्गम् । "शृङ्गभृङ्गाङ्गानि" एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शृङ्गानि विद्यन्ते येषां ते शृङ्गिणः ।

गौश्चतुष्पात्पशुः

त्रयो[2] गवि । पूजां गच्छतीति **गौः** । चत्वारः पादा यस्यासौ **चतुष्पात्** । स्पश इति सौत्रो धातुः । स्पशते [बाधते] इति **पशुः** । [3]अपष्ट्वादयः—"अपष्टुदुष्टुसुष्टुहरिद्रुमितद्रुशतद्रुशंकुधनुमयुपशुदेवयुजटायुकुमारयुमृगयवः" एते शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र तस्मिन् मह्यते:[4] महिषः । नदादित्वादीः । **महिषी** । दिह्यते उपचीयते दुग्धेन **देहिका**[5] ।

कृती नदीष्णो निष्णातः कुशली निपुणः पटुः ।
क्षुण्णः प्रवीणः प्रगल्भः कोविदश्च विशारदः ॥१६४॥

एकादश कुशले । प्रशस्तं कृतं कर्मास्य **कृती** । नद्यां स्नातीति **नदीष्णः** । "निनदीभ्यां[6] स्नातेः कौशले" इति षत्वम् । नितरां संस्नाति स्म शुचित्वमाप्नोति स्म **निष्णातः** । कुत्सितं श्यति **कुशलः** । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति **निपुणः** । शोभनकर्मत्वात् । पटति जानातीति **पटुः** । क्षुणत्ति स्म **क्षुण्णः** । क्षुदिर् सम्पेषणे । प्रकृष्टा वीणास्य **प्रवीणः** इति मुख्यार्थं परित्यज्य निपुणे रूढा । तदाहुः—

"[7]निरूढा लक्षणा कैश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत् ।
क्रियतेऽद्यतनैः कैश्चित्कैश्चिन्नैव त्वशक्तितः ॥"

प्रगल्भते **प्रगल्भः** । गल्भ धाष्ट्र्ये । को वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते **कोविदः**[8] । विशेषेण पापं शृणाति **विशारदः**[9] । क्षेत्रज्ञः । कृतहस्तः । दृष्टसुखः । कृतकर्मा । दक्षः । शिक्षितः ।

विदग्धश्चतुरः

द्वौ चतुरे । विदह्यते [10]**विदग्धः** । पुरुषार्थान् चतते याचते **चतुरः** ।

धूर्तश्चाटुकृत् कितवः शठः ।

---

१. "तिर्यञ्च" इत्यकारान्तपाठश्चिन्त्यः । वप्रत्ययान्तेऽञ्चतावेव "तिरसस्तिर्यलोपे" इति तिर्यादेश इति चकारान्तस्यैव युक्तत्वम् । चकारान्तत्वे चाष्टाक्षरपादे एकाक्षरोनत्वेन मूले छन्दोभङ्गः । न च दकारान्तस्तिर्यञ्चशब्दः केनाऽप्यन्यकोषकारेण पश्वर्थेऽभिमतः । तदुक्तम्—'पशुस्तिर्यङ्चरिः' अ० चि० ४।२८१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वादेषां पर्यायत्वाभावात्त्रयो गवीति पाठश्चिन्त्यः । गोशब्दः पशुविशेषे बलीवर्दादौ । चतुष्पात्पशुशब्दयोः सर्वपशुवाचकत्वात्पर्यायत्वमिति विवेकः । ३. पा० उ० सू० १।१५ । ४. "महिङ् वृद्धौ" । मंहते वर्धते वा विशालकायत्वात् । औणादिकष्टिषच् । [illegible]स्यानित्यत्वान्न नुम् । इत्यन्यत्र । ५. नात्र कोषान्तरसंवादः । ६. पा० सू० ८।३।८९ । ७. [illegible] ध्वन्यालोकलोचने १६ कारिकाटीकायामेवमुपलभ्यते "निरूढालक्षणाः काश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत्" इति । उत्तरार्धस्तु न समुपगतः । ८. कौति प्रतिपादयति धर्मादि कोविदः । कुधातोर्विन्द् । [illegible] इति कः । कोविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येति रामाश्रमः । ९. [illegible] प्रत्ययो वा विशारदः । इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति [illegible] । १०. [illegible] मैर्वच्चित्तं दहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्ते। धूर्तति स्म हिनस्ति स्म सदाचारं **धूर्तः**। चाटु करोतीति **चाटुकृत्**। कितवोऽस्त्यस्येति **कितवः**। शठयतीति **शठः**। दाण्डाजिनकः। कुहकः। कार्पटिकः। जालिकः। कौसृतिकः[1]। व्यञ्जकः। मायावी। मायी।

क्वापि नागरिको ज्ञेयः

क्वापि कुत्रापि **ज्ञेयः** ज्ञातव्यः। नगरे भवो **नागरिकः**[2]।

गोत्रसंज्ञाङ्कनाम तत् ॥१६५॥

चत्वारो नाम्नि। गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रक्षति पालयति **गोत्रम्**[3]। संज्ञानं **संज्ञा**[4]। अङ्क च नाम च समाहारत्वादेकवचनम्। अङ्क्यते लक्ष्यते **अङ्कम्**[5]। नमनम् **नाम**[6]।

मुग्धो मूढो जडो नेडो मूको मूर्खश्च कद्वदः।

सप्त मूर्खे। धर्मकार्येषु मुह्यति संशयं प्राप्नोतीति **मुग्धः**। मुह वैचित्ये। मुह्यति स्म **मूढः**। गत्यर्थेत्यादिना क्तः। हो ढः[7]। [8]तवर्ग०। ढे ढो लोप०[9]। सिः। रेफः। जडति न पुण्यं गच्छति[10] **जडः**। जाल्मश्च। न ईड्यते न स्तूयते केनापि[11] **नेडः**। मूङ् बन्धने। मूयते **मूकः**। [12]मूकादयः–"मूकयूकअर्भकपृथुकवृकस्तकभूकाः" एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। मुह वैचित्ये। मुह्यति कार्येषु **मूर्खः**। "मुहे-[13]-मूर्च" । कुत्सितं वदति **कद्वदः**। विधेयः। बालिशः। वाडिशः। बालः। [14]बद्धरः। सलिः[15]। [16]नालीकः। पशुः।

स देवानां प्रियोऽप्राज्ञो मन्दः

त्रयो मन्दे। **देवानां प्रियः**[17]। ग्रथि (न्थि)ल इत्यर्थः। न प्राज्ञः **अप्राज्ञः**। कार्येषु मन्दते स्वपितीवेति **मन्दः**।

---

१. कुसृत्या चरतीति कौसृतिकः। तेन चरतीति ठक्। २. धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थः। ३. वचसा आचारेण च स्वस्य रूपं रक्षयते। नामाऽपि स्वानुरूपाचारवचोभ्यामात्मानं प्रतिष्ठापयति। रामाश्रमस्तुदगूयते शब्द्यते उच्चार्यते इति व्युत्पत्तिमाह। "गुङ् शब्दे"। ४. तदुक्तम्—"संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना" इति। अम० को ३।३।२३। ५. अङ्क्यतेऽनेनेति शेषः। नाम्ना जनोऽङ्कितो भवति। ६. नमनं नामेत्यसङ्गतम्। भावे घञि प्रणामार्थक दन्त्यनामशब्दसाधुत्वापत्तेः। अतः "म्ना अभ्यासे" म्नायते उच्यतेऽभिधीयतेऽर्थोऽनेनेति विग्रहो न्याय्यः। नामन् सीमन् इति निपातितः। ७. अत्र "मुहादीनां वा" का० सू० २।३।४९। इति तकारस्य धकारः। ८. "तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः" का० सू० ३।८।५। इति धस्य ढः। ९. "ढे ढलोपोदीर्घश्चोपधायाः"। का० सू० ३।८।६। इति ढलोपो दीर्घश्च। १०. जलति तीव्रो न भवति। डलयोरैक्ये जड इति हेमचन्द्रः। ११. नेडशब्दः कोषान्तरे नोपलभ्यते। एडमूकशब्दोऽवडमूकशब्दो वा वाक्श्रुतिवर्जितार्थे लभ्यते। तदुक्तम्—"एडमूकस्तु वक्तुं श्रोतुमशिक्षिते' इति। अम० को० ३।१।३८। "एडमूकौ त्वावाक्श्रुतौ" अभि० चि० ३।१२। अतोऽत्रापि अनेडमूक इति पाठः सम्भाव्यते। जडविशेषवाचकत्वेऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण जडे प्रयोगः अनेडशब्दो वा बधिरार्थः सामान्याभिप्रायेण प्रयोगः। १२. का० उ० सू० २।५८। १३. का० उ० सू० ४।१७। १४. नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम्। १५. अत्रापि नान्यत्प्रमाणम्। १६. अत्राऽनेकार्थसङ्ग्रहः ३।५४। प्रमाणम्। तदुक्तम्–नालीकोऽज्ञे शरे सन्धे नालीकं पद्मनन्दने" इति। १७. 'देवानां प्रिय इति च मूर्खे" वा० ३।३।२१। "षष्ठ्या अलुक्" इति पा० सूत्रे।

धीनामवर्जितः ॥ १६६ ॥

धीवर्जितः । बुद्धिवर्जितः । प्रतिभावर्जितः । प्रज्ञावर्जितः । मनीषावर्जितः । धिषणावर्जितः । मतिवर्जितः । संख्यावर्जितः । इत्यादीनि मूर्खनामानि भवन्ति ।

षाष्टिकः कलमः शालिर्व्रीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वारः शालिभेदे । षष्टिरात्रेण पच्यन्ते **षाष्टिकाः**[1] । षष्टिदिवसैरुत्पन्ना इत्यर्थः । कलयति पुष्टिमनेन **कलमः** । शालते धान्येषु **शालिः** । अथवा सहालिना भ्रमरेण युतः सालिः । वर्हति वर्धते **व्रीहिः** ।[2] **स्तम्बकरिः** ।

वत्सः शकृत्करिर्जातः षोडन् षड्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्ष्णं वदति **वत्सः** । शकृत् करोतीति **शकृत्करिः** ।(इः)। "स्तम्ब-[3]शकृतोरिति" व्रीहिवत्सयोरुपसंख्यानादिन् । षड् दन्ता यस्य स **षोडन्** । "समासे दन्तदशधासु षष उत्वं दधोर्ढौ" षड् दशनाः यस्य स **षड्दशनः** ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।
उद्ग्रीव उद्धुरो दृप्तः

नव गर्विते । शौण्डतीति **शौण्डीरः** । "[4]कृशृशौण्डृभ्य ईरः" । गर्वोऽहंकारः संजातोऽस्य **गर्वितः** । तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । स्तभ्यते स्म **स्तब्धः** । मानः पूजादिलक्षणो गर्वो विद्यते अस्य **मानी** । अहम् अहंकारोऽस्त्यस्य **अहंयुः** । "ऊर्णाऽहंशुभंभ्यो युः"[5] । उद्धन्यते रूपेण **उद्धतः**[6] । उद् ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स **उद्ग्रीवः** । उद्धरति गर्वेणान्यम् **उद्धुरः** । दृप्यते **दृप्तः** ।

नीचश्च पिशुनोऽधमः ॥१६८॥

त्रयो दुर्जने । नितरां पापं चिनोति **नीचः**[7] । मैत्री पिंशति मैत्रीं पेशयति वा **पिशुनः**[8] । तालव्यः । पिनष्टि वा पिशुनः । "[9]पिशुनफाल्गुनौ" नञ्पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । "[10]धर्मसीमाग्रीष्माधमाः" । दुर्जनः । क्षुद्रः । कर्णजपः । दोषग्राही । द्विजिह्वः ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।
निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥१६९॥

[11]नव चौरे । चोरयतीति **चोरः** । स्वार्थेऽणि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्येत्यैकागारिकः ।

---

१. "षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते" पा० ५।१।९० । इति कन् प्रत्ययो रात्रशब्दलोपश्च । २. स्तम्बं करोतीति, स्तम्बकरिः । "इः स्तम्बशकृतोः" । का० सू० ४।३।२५ । इति कृञ इप्रत्ययः । ३. का०सू० ४।३।२५ । ४. का० उ० सू० ३।४८ । ५. "ऊर्णाऽहंशुभमोयुस्" इति है० श० ७।२।१७ । ६. उत्कण्ठं हन्ति गच्छति हिनस्ति वा० उद्धतः इति हेमचन्द्रः । ७. ह्रस्वार्थेऽपं शब्दो गतः । तत्र न्यक्चेति विग्रह उक्तः । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेदः । निपूर्वकाच्चिनोतेर्बाहुलकाड्डः । [illegible] । अन्यत्र तु निकृष्टमञ्चतीति विग्रहः । ८. पिंशत्येकदेशेन सूचयति "क्षुपिनिशिमिथिभ्यः किद्" उ० सू० ३।५५। इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । "अपिस्पति [illegible]" इति हेमचन्द्रः । ९. का० उ० सू० २।६१ । १०. का० उ० सू० १।५६ । ११. चौरादयो निशाचरान्ताः नव चौरे । गूढनरादयः प्रणिध्यन्तास्त्रयो गुप्तचरे । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्-'हेरिको गूढपुरुषः । प्रणिधिः'-अभि० चि० ३।३९७ ।

स्तेनयति स्यायति वा **स्तेनः**[1] । उभयम् । तस्यति परद्रव्यं स्वयं नयति **तस्करः** । "तसेः[2] करः" । अथवा कृञ् तत्पूर्वः । तत्करोतीति तस्करः[3] । तदाद्यङ् । नाम्यन्तगुणः । रूढित्वात्तस्य सकारः । प्रतिरुणद्धि मार्गः **प्रतिरोधकः** । निशां चरतीति **निशाचरः** । गूढश्चासौ नरः **गूढनरः** । हिनोति परराष्ट्रं गच्छति **हेरिकः** । प्रकर्षेण नितरां गुप्तो धीयते ध्रियते वा **प्रणिधिः** । दस्युः[4] । परास्कन्दी । मलिम्लुचः । मोषकः । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपाषाणदृषद्धातुः शिला घनः ।

प्रस्तृणात्याच्छादयति [5]**प्रस्तरः** । काठिन्यमुपलाति [6]**उपलम्** । उभयम् । पिनष्टि सर्वं [7]**पाषाणः** । पासानश्च । दृणाति चूर्णयति ध्रियते आद्रियते वा कार्यार्थे **दृषत्**[8] । स्त्रियाम् । दधाति [9]**धातुः** । शिनोति तनूकरोति [10]**शिला** । शिली च[11] । स्त्रियाम् । हन्यते [12]**घनः** । अश्मन् । ग्रावन् । पुलकश्च[13] ।

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् **तत्रजातम्** । प्रस्तरोद्भवः । उपलोद्भवः । धातूद्भवः । दृषदुद्भवः । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । अयते सर्वविकारं सान्तम् **अयः** । लुनाति सर्वं **लोहम्** ।

शातकुम्भं नयेत्परम् ॥ १७० ॥

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं शान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् ।
शीर्णविसानं दूनं च

नव कृशे । क्षायति स्म **क्षामम्** । शाम्यति स्म**शान्तम्** । **कृशम्** । **क्षीणम्** । **हीनम्** ।

---

१. "स्तेन चौर्ये" । चुरादिः । पचाद्यच् । २. का० उ० सू० ६।३ । ३. "तदाद्याद्यन्तानन्तकारबहुबाह्वहर्दिवाविभानिशाप्रभाभाश्चित्रकर्तृनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिक्षेत्रजङ्घाधन्वररुःसङ्ख्यासु च" का० सू० ४।३।२३ । इति कृञष्टप्रत्ययः । ४. दस्युप्रभृतयः प्रतिमोषकान्ताश्चौरपर्य्याया न तु गुप्तचरपर्य्यायाः । गुप्तचरपर्य्यायास्तु–यथार्हवर्णः । अपसर्पः । मन्त्रविद् । चरः । वार्त्तायनः । स्पशः । चारः । ५. "स्तृञ् आच्छादने" । पचाद्यच् । ६. अथवा पलतीति पलः । ओः शम्भोः पलो वोपलः । ७. "पिष्लृ सञ्चूर्णने" । बाहुलकादानच् । पृषोदरादित्वादिकारस्याकारः । "पष बाधे ग्रन्थे च" । हलश्चेति घञ् । पषत्यनेनेति । अणतीत्यणः । "अण शब्दे" । अच् । पाषश्चासावणश्चेति विग्रहोऽन्यत्र द्रष्टव्यः । ८. "दृणातेः पुग् ह्रस्वश्चे" ति साधुः । ९. "धातुस्तु गैरिकम्" अभि० चि० । "धातुर्मनःशिलाद्यद्रेर्गैरिकन्तु विशेषतः" अम० को० । इत्यादिकोषप्रमाणतः सामान्यप्रस्तरपर्यायेऽस्य पाठोऽयुक्तः । १०. शिनोतीति तालव्यशिधातुर्न क्वचिदुपलभ्यते । "शो तनूकरणे" । तस्य श्यतीति रूपम् । तनूकरोतीत्यर्थः । ततः शिलेति निपातो बाहुलकादौणादिकार्थेन समायाति । रामाश्रमादिव्युत्पत्तिकारैस्तु "शिल उञ्छे" शिलतीति शिला । इगुपधेति कः इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्यं सुधीभिर्विचारणीयम् । ११. उदुम्बरश्चाथ शिली शिला चापि शिलिः स्मृतः" इति कल्पद्रुकोषवाक्यमत्रोपोद्बलकम् । १२. "मूर्तौ घनिश्च" का० सू० ४।५।५० । हन्तेरत्र घनादेशश्च । १३. तदुक्तम्–"पुलकः कृमिभेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे । गजान्नपिण्डे रोमाञ्चे गल्वर्कहरितालयोः ।" वि० को० का० व० ११६ ।

जीर्यते स्म **जीर्णम्**। शीर्यते स्म **शीर्णम्**। अवस्यते **अवसानम्**[1]। दूयते स्म **दूनं च**। हे राजेन्द्र, तव **वैरिणां** शत्रूणां भवतु इति प्रयोजनीयम्।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः[2] पौरुषे। धीरस्य भावो **धैर्यम्**। शूरस्य भावः **शौर्यम्**। पुरुषस्य भावः **पौरुषम्**। युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्यम्।

क्षिप्राशुमङ्क्ष्वरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम्।
तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघुः ॥१७२॥

षोडश[3] वेगे। क्षिपति[4] निरस्यति **क्षिप्रम्**। रक्प्रत्यय उणादौ ज्ञातव्यः। अश्नुते **आशु**। कृवापाजीति उण्। मज्जति महति वा **मङ्क्षुः**[5]। इयर्ति मान्तमव्ययम् **अरम्**। अदन्तं च अरम्। शेते कार्ये शीघ(शिङ्घ) ति व्याप्नोति वा **शीघ्रम्**। सहते **सहसा**[6]। अव्ययम्। झटति संघातीभवति इदन्तमव्ययम्। **झटिति**[7]। द्रवति स्म **द्रुतम्**। त्वरते स्म **तूर्णम्**। जवनं **जवः**। जु गतौ। स्यन्दते **स्यदः**। "स्यदो जवः[8]" इति साधुः। रंहयत्यनेन **रंहः**। रयते रीणाति वाऽनेन **रयः**। वीय (विज्य) ते **वेगः**[9]। तरत्यनेन **तरः**। "[10]सर्वधातुभ्योऽसुन्"। लङ्घते भूमिं **लघुः**। संवेगः। गतिवचनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदः।

सदागतिप्रस्तावादाह—

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्ठु वै भृशम्।

सत भृशे। साधुभ्यो हितः **साधीयः**[11]। ईयसुः। अतिक्रान्तोऽर्थं वेलां मात्राम् अन्तं च **अत्यर्थम्**। **अत्यन्तम्**। अतिवेलम्। अतिमात्रं च। नितान्यति स्म **नितान्तम्**। सुष्ठोति **सुष्ठु**।

---

१. अत्रावसानभिन्ना अष्टावपि शब्दा विशेष्यनिघ्नास्तेन कुटुम्बमिति विशेषमध्याहार्य हे राजेन्द्र तव वैरिणां कुटुम्बं क्षामं भवतु। एवं शान्तं कृशमित्याद्यपि योज्यम्। अवसानशब्दस्य भावल्युडन्तत्वात् तव वैरिणामवसानं नाशो भवत्विति विवेकः। अवस्यतेऽवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्त्वसङ्गतः। अवपूर्वस्य "षोऽन्त कर्मणि" इत्यस्य भावलटि अवसीयते इति रूपम्, नत्ववस्यते इति। कर्तरि लटि दिवादौ अवस्यतीति परस्मैपदमेव। नापि कर्तृकान्तोऽवसानशब्दः। क्तप्रत्यये "अवसित" इति रूपस्यैव सर्वसम्मतत्वात्। तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः। २. कोषान्तरप्रमाणतो [illegible] धैर्यादिशब्दानां परस्परकर्मभेदात्पर्यायानर्हत्वेऽपि बलसामान्यविवक्षया त्रयः पौरुषे इत्युक्तम्। ३. गतिवचनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदस्य वक्ष्यमाणत्वात् क्षिप्रादयस्तूर्णान्ता नव [illegible], जवादयो लघ्वन्तास्सप्त वेगार्थे इति सुवचम्। "द्राक् [illegible] झटिति" एतत्[illegible] पाठे कर्तव्येऽपि पृथगस्य पाठो झटितिशब्दपुनरुक्तिश्च दोषः। ४. क्षिपति विलम्बमिति [illegible]। ५ "टु मस्जो शुद्धौ"। बाहुलकात्सुः। मस्जिनशोरिति नुम्। स्कोरिति सलोपः। मज्जति कालान्तरे मङ्क्षुः। ६. "षह मर्षणे। असा प्रत्ययः यद्वा सहस्यति। "षोऽन्तकर्मणि"। [illegible] डित्। [illegible] रान्तमव्ययम्। उदाहरणम्—"सहसा विदधीत न क्रियामित्यादि"। ७. "झट [illegible]"। [illegible] इतिः। ८. का० सू० ४।१।३५। स्यन्देर्घञि नलोपो दीर्घाभावश्च। स्यन्दनं स्यद इति [illegible] न्याय्यः। ९. "ओ विजी भयचलनयोः"। १०. का० उ० सू० ४।५६। ११. [illegible] साधीय इति। साधुभ्यो हित इति टीकोक्तविग्रहस्तु न सङ्गच्छते। [illegible] इति मूलोक्तपदस्य क्लीबत्वेन हित इति पुंविग्रहोऽपि तथैव।

[1]अपष्ठ्वादयः—अपष्टु दुष्टु सुष्टु हरिद्रु मितद्रु शतद्रु शङ्कु धनु इत्यादयः। वै अव्ययम्। बिभर्ति भृशम्[2]।

स्फुटं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

सप्त निर्मले। स्फुरत्यभिप्रायोऽस्मात् [3]**स्फुटम्**। साध्यतीति **साधु**। खलतीति **खलु**[4]। स्पश्यते स्म **स्पष्टम्**। विशति चित्ते **विशदम्**। पुष्णातीति **पुष्कलम्**। न मलमस्मिन् **अमलम्**। प्रकाशम्। प्रकटम्।

चित्राश्चर्याद्भुतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽप्यहो।

षट् कौतुके। चिञ् चयने। चिनोतीति **चित्रम्**[5]। आचरतीत्याश्चर्यम्[6]। पारस्करादित्वात्सुट्। भू सत्तायाम्। अद् पूर्वः। अद् विस्मितो भवत्यत्र **अद्भुतः**। "अदि भुवो डुतः[7]"। चोद्यते इति **चोद्यम्**[8]। विस्मीयते इति **विस्मयः**। कुतुकस्य भावः कौतुकम्। अहो लोका आश्चर्यम् इति प्रयोजनीयम्।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मतः ॥१७४॥

पञ्चोद्यमे। अभियोजनम् **अभियोगः**। यमु उपरमे। यम् उद्पूर्वः। "चुरादेश्च[9]"—इन्। "अस्योप०[10]"—दीर्घः। उद्यामि इति जातम्। "मानुबन्धानां[11]" ह्रस्वः। उद्यमि जातम्। उद्यमनमुद्यमः। भावे घञ्। "कारितस्य०[12]।" उद्योजनम् **उद्योगः**। उत्सहनमुत्साहः। विक्रमणं **विक्रमः**।

रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च भिनत्ति कः।

चत्वार एकान्ते। रहति त्यजति जनः सङ्गं यत्र सान्तं **रहः**। क्लीबे। अव्ययं च। अनुगतं रहः **अनुरहसम्**। "[13]अन्ववतप्तेभ्यो रहस्"। उपाश्नुते अव्ययमुदन्तम् **उपांशुः**। रहसि भवं **रहस्यम्**। कः पुमान् **भिनत्ति** विदारयति। प्रच्छन्नम्। एकान्तम्।। निःशलाकम्। उपह्वरम्। विजनम्। विविक्तम्। जनान्तिकम्।

कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्नुर्दीनोऽभिलापुकः ॥ १७५ ॥

षट् कृपणे। लोभेन क्लिश्यति बाध्यते [14]**कीनाशः**। कीं वाणीं याचकानां नाशयति विनाशयतीति कीनाशः। कल्पते रक्षितुं न तु दातुं **कृपणः**। लुभ्यति स्म **लुब्धः**। गृध्नाति गृध्नः। **गृध्नुरि**त्यपि स्यात्। लोभेन द्योतते शोभते (दीयते क्षयति) **दीनः**। दीङ् क्षये। क्वचित् हीनः इति पठन्ति। लष कान्तौ। अभिपूर्वः। अभिलषतात्येवंशालः **अभिलापुकः**। "शकमगमहनवृषभूस्थालषपतपदामुकञ्[15]"।

---

१. का० उ० सू० ११५। इति कुप्रत्ययः। २. भृधातोः शप्रत्ययः किदित्यर्थः। भृश्यतीति भृशं वा। "भृशु भ्रंशु अवःपतने"। दिवादिः। इगुपधेति कः। भृशिरत्रान्तर्भावितण्यर्थः। ३. स्फुटतीति कर्तृविग्रहो न्याय्यः, नत्वपादानकः तत्र घञि स्फोट इत्यापत्तेः। अत्रेगुपधेति कः। ४. "खल सञ्चये"। बाहुलकादुः। खलुशब्दो नानार्थे। तदुक्तम्—"निषेधवाक्याऽलङ्कारे जिज्ञासाऽनुनये खलु"। अम० को० ३।३।२२५। ५. "चित्र चित्रीकरणे।" चित्रयतीति चित्रम्। पचाद्यच्। इत्यन्यत्र। ६. आ इति चर्यतेऽभिनीयते इति विग्रहोऽन्यत्र। "आश्चर्यमनित्ये" इति सुट्। ७. का० उ० सू० ४।२५। ८. चोद्यशब्द आश्चर्यार्थे। तदुक्तम्—"चोद्यन्तु प्रेर्ये प्रश्नेऽद्भुतेपि च" अने० स० २।३६२। ९. का० सू० ३।२।११। १०. का०सू० ३।६।५। ११. का०सू० ३।४।६५। १२. का०सू० ३।६।४४। इतीनो लोपः। १३. का०सू० ३।४।४१। अत्र रात्रादिवृत्तिः २३। १४. "क्लिशू विबाधने"। "क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च" पा० उ० सू० ५।६६। १५. का० सू० ४।४।३४।

कदर्यः । किम्पचानः । मितम्पचः । क्षुल्लः । क्षुल्लकः । क्लीबः । क्षुद्रः । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः सन्धानीतो नियन्त्रितः ।
नियामितः शृङ्खलितः पिनद्धः पाशितो रिपुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः **पाशनीतः** । सीयते स्म **सितः** । बध्यते स्म **बद्धः** । सन्धां प्रतिज्ञां नीतः प्रापितः **सन्धानीतः** । नियन्त्रं संजातमस्य **नियन्त्रितः** । नियामो जातोऽस्य **नियामितः** । शृङ्खला संजाताऽस्येति **शृङ्खलितः** । तारकितादिदर्शनादितच् । पिनह्यते स्म **पिनद्धः** । पाशः संजातोऽस्य पाशितः । कः **रिपुः** शत्रुः ।

कान्तं च कमनं कम्रं कमनीयं मनोहरम् ।
अभिरामं र(रा)मणीयं रम्यं सौम्यं च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिसुन्दरे) । काम्यते **कान्तम्** । काम्यते **कमनम्** । कामयते इत्येवंशीलं **कम्रम्** । काम्यते वाञ्छ्यते **कमनीयम्** । "[१]तव्यानीयौ" । मनोहरति **मनोहरम्** । मनोहारी । **मनोरमम्** । अभिरमणम् **अभिरामम्** । रमणस्य (णाय) हितं **रमणीयम्**[२] । रम्यते **रम्यम्** । सोमस्य भावः **सौम्यम्**[३] । सुन्दः सौत्रोऽयं सुन्दति सुष्ठु नन्दयति इति निरुक्त्या **सुन्दरम्**[४] ।

चारु श्लक्ष्णं च रुचिरं प्रशस्तं हृद्यबन्धुरम् ।
दर्शनीयं मनोज्ञं च

अष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र **चारु** । शिष्यते युज्यतेऽनेन **श्लक्ष्णः**[५] । रोचते सर्वेभ्यो **रुचिरम्** । प्रशस्यते स्म **प्रशस्तम्** । हृदयस्य प्रियम् **हृद्यम्** । चित्तं बध्नाति **बन्धुरम्** । दृश्यते **दर्शनीयम्** । मनो जानातीति **मनोज्ञम्** ।

चित्तपर्यायहारि च ॥१७८॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि ज्ञातव्यानि ।

अवश्यायं तुषारं च प्रालेयं तुहिनं हिमम् ।
नीहारम्

षड् हिमे । अवश्यायते **अवश्यायः** । "दिहिलिहिश्लिषिश्वसिव्यध्यतीण्श्याऽऽतां च" [illegible] णप्रत्ययः । तुष्यन्त्यनेन **तुषारः** । प्रलयादागतं **प्रालेयम्**[६] । तोहयत्यर्दयति **तुहिनम्** । तुहिर् अर्दने । हिनोति वर्धते जलमनेन **हिमम्** । निह्रियते **नीहारः** । मिहिका । धूमिका । देश्याम् ।

१: का० सू० ३।७।९ । २. रमणाय हितमिति विग्रहो युक्तः । तस्मै हितमिति चतुर्थ्यन्तात् [illegible] । मूले छन्दोभङ्गदोषवारणाय रमणीयमेव रामणीयम् इति स्वार्थिकोऽणपि कार्यः । ३. सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्तः । "प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भावः" इति सिद्धान्तात् सौम्य [illegible] थापत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति व्युत्पत्तिः, "सोमाट्ट्यण्" । इति ट्यण् । [illegible] । ततश्चतुर्वर्णादित्वात्ष्यञ् इति रामाश्रमः । ४. सुष्ठु द्रियते आद्रियते । [illegible] । सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तं वा । सुपूर्वकात् "उन्दी क्लेदने" उन्दधातोर्बाहुलका[illegible] । [illegible] दित्वात्पररूपम् । इति रामाश्रमः । ५. नेत्रं मनो वेति शेषः । "श्लिष आलिङ्गने" । "[illegible]" उ० सू० ३।१९ । इति क्स्नः । उपधाया लकारश्च । ६. का० सू० ४।२।५८ । ७. [illegible] अत्रेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागतं प्रालेयम् । [illegible] । [illegible] ७।३।२ । इति यादेरियादेशः ।

तत्करं विद्धि मृगाङ्कं रोहिणीपतिम् ॥ १७९ ॥

तस्य करस्तत्करस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । अवश्यायकरः । तुषारकरः । प्रालेयकरः । तुहिनकरः । हिमकरः । नीहारकरः । मृगाङ्कः । रोहिणीपतिः । अष्टौ नामानि **विद्धि** जानीहि ।

पुन्नागं सन्नरं प्राहुः

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः **पुन्नागः** । संश्चासौ नरः **सन्नरः** । **प्राहुः** ब्रुवन्ति ।

तिलकं च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्णवाहं तथा द्रुमम् ॥१८०॥

[1]षट् तिलके । तिलकाकृतिः तिलकः । तिलतीति **तिलकम्** । विशिनष्टीति विशेषः । स्वार्थे कः । **विशेषकः** । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये **ललाटिका** । लल्यते **ललामा** । पूर्णं वाहयतीति **पूर्णवाहः** । द्रवति वृद्धिं गच्छति **द्रुमः** । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नागं गजपाटलमारुणम् ।

षट्[2] कज्जले । अज्यतेऽनेनेत्यञ्जनम् । कपति नेत्रवैरूप्यं **कज्जलम्** । न शोभाम् अगति गच्छति **नागम्** । गजति शोभया माद्यति **गजम्** । पाटलाया इदम् **पाटलम्** । ऋच्छति गच्छति शोभाम् **आरुणम्**[3] ।

सालं परिधिं वृक्षं च

त्रयः प्राकारे । सरति गच्छति कालान्तरं **सालः** । परिधीयते वेष्ट्यते अनेन **परिधिः** वृणोति नगरमाच्छादयति **वृक्षम्**[4] ।

कुल्यां स्त्रीं सारणीं विदुः ॥१८१॥

त्रयः[5] पानीयनिर्गमनमार्गे । कुले गृहे साधुः **कुल्या** । स्तृणाति वैरूप्यमाच्छिनत्ति **स्त्री** । सरत्यनया **सारणी** । तां **विदुः** कथयन्ति धनञ्जयकवयो भाष्यकर्तारोऽमरकीर्त्याचार्यश्च ।

चारोऽवसर्पः प्रणिधिर्निगूढपुरुषश्चरः ।

पञ्च[6] चारे । चरति शत्रुमण्डले **चारः**[7] । अवसर्पति **अवसर्पः** । अपसर्पश्च । प्रकर्षेण

---

१. अत्र तिलकविशेषके टीकोक्ततमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाऽलङ्करणे । तदुक्तम्—"तिलके तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषकाः" । अभि० चि० ३।३१७ । ललाटिका पत्रसमूहकृतललाटभूषणम् । तदुक्तम्—"पत्रपाश्या ललाटिका" अभि० चि० ३।३१९ । ललामा तु सीमन्ताग्रे मरुरमणीभिरिव धार्यमाणं रत्नादिकृतभूषणम् । तदुक्तम्—"पुरोन्यस्तं ललामकम्" अभि० चि० ३।३२६ । पूर्णवाहद्रुमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलब्धः । २. षट् कज्जले । इत्यविचारसहम् । अञ्जनकज्जलौ समानार्थौ । नागगजपाटलारुणा ओष्ठकपोलादिरञ्जकलोहितरङ्गविशेषवाचकाः । तदुक्तम्—अनेकार्थसङ्ग्रहे—"नागो मतङ्गजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे" २।३४ । "पाटलन्तु कुसुमश्वेतरक्तयोः" ३।७०१ । "अरुणोऽनूरुसूर्ययोः । सन्ध्या रागे बुधे कुष्ठे निःशब्दाऽव्यक्तरागयोः" ३।१९८ । ३. अरुणमेव आरुणम् । ४. वृक्षशब्दस्य सालार्थे कोषान्तरसंवादो नोपलब्धः । ५. अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । स्त्रीशब्दोऽत्र कुल्यासारण्योः स्त्रीलिङ्गबोधकः; तत्पर्यायः । ६. पूर्वमुक्तेऽपि सिंहावलोकनन्यायेन चारेऽर्थेऽन्यानपि शब्दान् समुच्चिनोति । ७. चरति शत्रुमण्डले चरः, चरेरच् । ततः स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुप्तो धीयते **प्रणिधिः**। निगूढश्चासौ पुरुषः **निगूढपुरुषः**। चरतीति **चरः**। स्पशः। [1]यथार्थवर्णः। मन्त्रशश्च।

तद्वानुक्तः सहस्राक्षः

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं **वान्** इति प्रयुज्यमाने **सहस्राक्षनामानि** भवन्ति। निगूढपुरुषवान्। चरवान् इत्यादीनि ज्ञातव्यानि।

सत्यार्थे सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थे द्वौ। सु सुष्ठु ऋतं सत्यं **सूनृतम्**। पृषोदरादित्वान्नाडागमः। ऋच्छति गच्छति जनः प्रत्ययमत्र **ऋतम्**। तथा चामरकोषे[2]—"सत्यं तथ्यमृतं सम्यक्।"

निस्तलं वर्तुलं वृत्तम्

त्रयो वर्तुले। निर्गतं तलं प्रतिष्ठाऽस्य **निस्तलम्**। अथवा निर्गतं तलादधोभागान्निस्तलम्। भूमौ न तिष्ठति वा। वर्तते भ्रमति **वर्तुलम्**। वृत्यते स्म **वृत्तम्**। सर्वे त्रिषु।

स्थपुटं विषमोन्नतम्।

विषमोन्नते **स्थपुटम्**। स्थापयत्यात्मनो विषमोन्नतत्वे स्थपुटम्। प्रायः क्लीबे।

दीर्घं प्रांशु

द्वौ[3] दीर्घे। दृणाति **दीर्घम्**[4]। प्राश्नुते व्याप्नोतीति **प्रांशु**[5]।

विशालं च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णे। विस्तारं विशति **विशा**[6]**लम्**। बहून् लातीति **बहुलम्**। प्रथते वर्धते **पृथुलम्**। गुणमात्रवृत्तेर्लः। पर्थते **पृथुः**। बृहत्। उरुः। गुरुः। विस्तीर्णः।

उल्बणं दारुणं तिग्मं घोरं तीव्रोग्रमुत्कटम्।

सप्त घोरे। उल्वणत्युल्वणम्[7]। पृषोदरादित्वात्पत्ते लः। दारयति **दारुणम्**। तितिजतीति **तिग्मम्**[8]। घुरति **घोरम्**[9]। तीवति **तीव्रम्**। तीव स्थौल्ये रक्। उच्यति **उग्रम्**[10]। उत्कटयते **उत्कटम्**। प्रतिभयम्। भीमम्। भयानकम्। आभीलम्। भीषणम्। भीष्मम्। भैरवम्।

शीतलं तिमिरं याथं मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

---

१. यथार्थे यथा अर्थः प्रयोजनं वर्णो जातिः प्रसिद्धिर्वा यस्येति तदर्थः। २. अम० को० १।७।२२। ३. वस्तुतस्तु प्रांशुदीर्घयोरर्थभेदः। दीर्घविस्तृतायतशब्दाः पर्यायाः। प्रांशुरुन्नत [illegible]–'दीर्घमायतम्' अम० को० ३।१।७०। ४. "दॄ विदारणे"। बाहुलकाद्घक्। दृणाति [illegible] दीर्घः। ५. प्रकृष्टा अंशवोऽस्येत्यपि। ६. "विश प्रवेशने"। बाहुलकादालः। रामाश्रमस्तु–"वेः शालच्छङ्कटचौ" इति० पा० सूत्रेण विशब्दाच्छालच्प्रत्ययमाह। ७. उद्वलतीति उल्वणम्। पृषोदरादित्वात् [illegible] पाठोऽत्र युक्तः। "वण शब्दे"। अच्। उल्वणशब्दो वस्तुतः स्पष्टार्थकः, न तु दारुणार्थकः। [illegible] ह्युद्वेजको भवति खलानाम्। अत उद्वेजकत्वसामान्यात्तथाह। ८. तितिजतीति [illegible] युक्तम्। "तिज निशाने"। निशानं तीक्ष्णीकरणम्। तेजयतीति तिग्मम्। [illegible] ९. "घुर भीमार्थशब्दयोः"। घोरयतीति घोरम्। ण्यन्तादच्। १०. उच्यति क्षुधा [illegible] उग्रम्। "उच समवाये" दिवादिः। "ऋज्रेन्द्र" इत्यादिना रक् गश्चान्तादेशः।

पञ्च कार्यविलम्बे (म्यिते)। शीतं लाति मन्दो भवति कार्ये **शीतलम्**। ताम्यति स्वकार्यमिच्छति **तिमिरम्**[1]। स्तिमितं स्थिमितं वा पाठः। यथा भवं **याथम्**। मन्यते **मन्दम्**। विलम्ब्यते स्म **विलम्बितम्**। विद्धि जानीहि।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः।

पञ्च स्वभावे निजे। स्वः स्वकीयो भावः **स्वभावः**। प्रकरणं **प्रकृतिः**। शील्यते शीलयति वा **शीलम्**। निसृज्यते **निसर्गः**। विश्वसितीति **विश्वसः**[2]। विश्वासश्च। विश्रम्भः।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे। युज्यते **योग्या**[3]। गुण्यतेऽहर्निशं **गुणनिका**[4]। अभ्यसनमभ्यासः।

स्यादभीक्ष्णं मुहुर्मुहुः॥ १८५॥

मुहुर्मुहुर्वारं वारं **स्यात्** भवेत्। अभीक्ष्णम्। अभीक्ष्णम् अभीक्ष्णम्। अभिमुखमीक्षते वा **अभीक्ष्णम्**[5]। नितराम्।

मृषालीकं मुधा मोघम्

चत्वारो[6]ऽलीके। मृष्यते सहते नारकं दुःखमनेन **मृषा**। आदन्तमव्ययम्। अलति स्वस्वाङ्गा-(स्वर्गा)न्निवारयति **अलीकम्**। मुञ्चति त्यजति निमित्तं **मुधा**। आदन्तमव्ययम्। मुह्यतेऽत्र चित्तं **मोघम्**।

विफलं वितथं वृथा।

निष्फलवचने त्रयः। विगतं फलं **विफलम्**। विगतं तथा सत्यं यस्मात् **वितथम्**। वृणोत्याच्छादयति गुणान् **वृथा**। अव्ययम्।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत्॥ १८६॥

पञ्च कष्टे। कष्टेन विधुनोति शरीरं **विधुरम्**। व्यस्यते अनेन **व्यसनम्**। कष्यते (कषति) **कष्टम्**। कृणोति छिनत्ति दुःखेन **कृच्छ्रम्**[7]। गाह्यते **गहनम्**। **उद्धरेत्** निस्तरेत्।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम्।

षट् समस्ते। समस्यते एकीकरोति **समस्तम्**[8]। समं ग्रसते समग्रम्[9]। समानं कलयतीति [10]**सकलम्**। सरति **सर्वम्**। कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति **कृत्स्नम्**। विशति तिष्ठति सर्वत्र **विश्वम्**। नास्ति खिलं शून्यमस्या**खिलम्**। निखिलं च।

---

१. "तिम आर्द्रीभावे"। तिम्यति आर्द्रीभवति तिमिरः। विलम्बशीलो जनः सर्वदाऽऽर्द्र इव शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति। २. विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति। एवं विश्वासो विश्रम्भोऽपि। विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम्। अतोऽत्र त्रिष्वपि मूलटीके एव प्रमाणम्। ३. योगे चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या "तत्र साधु"रिति यदन्यत्र। ४. गुण्यते गुणना। चुरादिणिजन्ताद् भावे "ण्यासश्रन्थेति युच्। ततः स्वार्थे कः। गुणनैव गुणनिका। ५. अभिक्ष्णौति अभीक्ष्णम्। "क्ष्णु तेजने"। बाहुलकाड्डमुः। अन्येषामपीति दीर्घः। इति रामाश्रमः। ६. अत्र मृषाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणो वितथशब्दश्चासत्यवाचकः। मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽन्यत्र। तदुक्तममरे—"मृषा मिथ्या च वितथे" ३।८।१५। "अलीकं त्वप्रियेऽनृते" ३।३।१२। "मोघं निरर्थकम्" ३।१।८१। व्यर्थके तु वृथा मुधा" ३।४।४। "वितथं त्वनृतं वचः" १।८।२१। इति। ७. कर्षति कृन्तति वेति क्षी० स्वा०। ८. समस्यते स्म समस्तम्। "असु क्षेपणे"। कर्मणि क्तः। ९. सङ्गतमग्रमस्य समग्रम्। १०. सह कलाभिर्वर्तते सकलम्।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे। शक्नोति काये **शकलम्**। **शल्कं** च। विगता कला यस्मात् तद् **विकलम्**। खण्ड्यते **खण्डः**। लिश्यते **लेशः**[1]। लिश विच्छ गतौ। "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्[2]"। रौति शब्दं करोति [3]**लवः**। **विदुः** कथयन्ति। अर्धम्। नेमः। सामि। असम्पूर्णम्। दलं च।

मर्म कोषं च

द्वौ मर्मणि। म्रियतेऽनेन **मर्म**। नान्तम्। कुष्यते **कोषम्**[4]।

कलहं परिवादं छलं नयेत्।

करेण हन्त्यत्र **कलहः**। परिवदनं **परिवादः**। छलयती (त्यत्रे)ति **छलम्**।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षड् रुधिरे। शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन **शोणितम्**। तालव्यः। रोहति देहे जायते **लोहितम्**। रजति रसं **रक्तम्**। रुणद्धि **रुधिरम्**। क्षताद् व्रणाज्जायते **क्षतजम्**। अस्यते क्षिप्यते **असृक्**।

सन्ततानारताजस्रान्वहं कन्यापतिर्वरः।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते। सन्तन्यते स्म **सन्ततम्**। न आरतम् **अनारतम्**। न जस्यतीत्येवंशील**मजस्रम्**। **अन्वहम्**। **कन्यापतिर्वरः** नन्दतु इति प्रयोजनीयम्।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

चत्वारो विवाहे। उद्वहनं **उद्वाहः**। परिणीयते **परिणयनम्**। विवाह्यते **विवाहः**। निवेश्यते **निवेशनम्**।

शुषिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे। शुष्यति जलमत्र [5]**शुषिरम्**। उपशुषीति रः। विव्रियते भूमध्यमनेन **विवरम्**। रणति वातेन रध्यति हिनस्ति प्राणिनं वा **रन्ध्रम्**। छिद्यते तत् **छिद्रम्**। कुहरम्। विलम्। निर्व्यथनम्। रोकम्। श्वभ्रम्। वपा। शुषिः।

गर्ता च गह्वरम्।

गर्तायां द्वौ। पतितं प्राणिनं गिरति **गर्ता**। **गर्तः**। गूहतीति **गह्वरम्**।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके। श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्भ्रान्तं वा **श्वभ्रम्**। रसानां गर्भं **रस्यम्**। पतन्त्यस्मिन् **पातालम्**। नराः कायन्त्यत्र **नरकः**। नारकः। पुंसि। अमेधसः दुर्बुद्धयः [illegible]

---

१. "लिश अल्पीभावे"। दिवादिः। ततो घञ्विधानमर्थानुरूपम्। [illegible] ४।५।४। ३. लूयते छिद्यते लवः। ऋदोरप्। टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनार्थाभिधायी। ४. कोषः शब्दः पेशीवाचको मेदिन्यां लभ्यते। पेशीनां मर्मस्थानत्वमायुर्वेदे सम्मतम्। [illegible] मर्मेत्यभ्युन्नेयम्। तदुक्तम्–'कोषो ऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके। [illegible] शब्दादिसङ्ग्रहे"। पा० वर्ग० ६। ५. "तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिवधिरचिशुषिभ्यः किरच्" [illegible] शुषिरस्यास्तीति विग्रहे तु "ऊषसुषिमुष्कमधो रः" पा० सू० ५।२।१०७। इति रः। [illegible] उषसुषीति पा० सूत्रे दन्त्य एव पाठः। क्षीरस्वामिनापि दन्त्यमेव पठितम्।

पञ्च कार्यविलम्बे (म्बिते)। शीतं लाति मन्दो भवति कार्ये **शीतलम्**। ताम्यति स्वकार्यमिच्छति **तिमिरम्**[१]। स्तिमितं स्थिमितं वा पाठः। यथा भवं **याथम्**। मन्यते **मन्दम्**। विलम्ब्यते स्म **विलम्बितम्**। विद्धि जानीहि।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः।

पञ्च स्वभावे निजे। स्वः स्वकीयो भावः **स्वभावः**। प्रकरणं **प्रकृतिः**। शील्यते शीलयति वा **शीलम्**। निसृज्यते **निसर्गः**। विश्वसितीति **विश्वसः**[२]। विश्वासश्च। विश्रम्भः।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे। युज्यते **योग्या**[३]। गुण्यतेऽहर्निशं **गुणनिका**[४]। अभ्यसनम**भ्यासः**।

स्यादभीक्ष्णं मुहुर्मुहुः॥ १८५॥

मुहुर्मुहुर्वारं वारं **स्यात्** भवेत्। अभीक्ष्णम्। अभीक्ष्णम् अभीक्ष्णम्। अभिमुखमीक्षते वा **अभीक्ष्णम्**[५]। नितराम्।

मृषाऽलीकं मुधा मोघम्

चत्वारो[६]ऽलीके। मृष्यते सहते नारकं दुःखमनेन **मृषा**। आदन्तमव्ययम्। अलति स्वस्वाङ्गा(स्वर्गा)न्निवारयति **अलीकम्**। मुञ्चति त्यजति निमित्तं **मुधा**। आदन्तमव्ययम्। मुह्यतेऽत्र चित्तं **मोघम्**।

विफलं वितथं वृथा।

निष्फलवचने त्रयः। विगतं फलं **विफलम्**। विगतं तथा सत्यं यस्मात् **वितथम्**। वृणोत्याच्छादयति गुणान् **वृथा**। अव्ययम्।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत्॥ १८६॥

पञ्च कष्टे। कष्टेन विधुनोति शरीरं **विधुरम्**। व्यस्यते अनेन **व्यसनम्**। कष्यते (कषति) **कष्टम्**। कृणोति छिनत्ति दुःखेन **कृच्छ्रम्**[७]। गाह्यते **गहनम्**। **उद्धरेत्** निस्तरेत्।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम्।

षट् समस्ते। समस्यते एकीकरोति **समस्तम्**[८]। समं ग्रसते समग्रम्[९]। समानं कलयतीति[१०]**सकलम्**। सरति **सर्वम्**। कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति **कृत्स्नम्**। विशति तिष्ठति सर्वत्र **विश्वम्**। नास्ति खिलं शून्यमस्या**खिलम्**। निखिलं च।

---

१. "तिम आर्द्रीभावे"। तिम्यति आर्द्रीभवति तिमिरः। विलम्बशीलो जनः सर्वदाऽर्द्र इव शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति'। २. विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति। एवं विश्वासो विश्रम्भोऽपि। विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम्। अतोऽत्र त्रिष्वपि मूलटीके एव प्रमाणम्। ३. योगे चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या "तत्र साधु"रिति यदन्यत्र। ४. गुण्यते गुणना। चुरादिणिजन्ताद् भावे "ण्यासश्रन्थेति युच्। ततः स्वार्थे कः। गुणनैव गुणनिका। ५. अभिक्ष्णौति अभीक्ष्णम्। "क्ष्णु तेजने"। बाहुलकाड्डमुः। अन्येषामपीति दीर्घः। इति रामाश्रमः। ६. अत्र मृषाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणो वितथशब्दश्चासत्यवाचकः। मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽन्यत्र। तदुक्तममरे—"मृषा मिथ्या च वितथे" ३।४।१५। "अलीकं त्वप्रियेऽनृते" ३।३।१२। "मोघं निरर्थकम्" ३।१।८१। व्यर्थके तु वृथा मुधा" ३।४।४। "वितथं त्वनृतं वचः" १।८।२१। इति। ७. कर्पति कृन्तति वेति क्षी० स्वा०। ८. समस्यते स्म समस्तम्। "असु क्षेपणे"। कर्मणि क्तः। ९. सङ्गतमग्रमस्य समग्रम्। १०. सह कलाभिर्वर्तते सकलम्।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे। शक्नोति काये शकलम्। शल्कं च। विगता कला यस्मात् तद् विकलम्। खण्ड्यते खण्डः। लिश्यते लेशः[1]। लिश विच्छ गतौ। "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्[2]"। रौति शब्दं करोति [3]लवः। विदुः कथयन्ति। अर्धम्। नेमः। सामि। असम्पूर्णम्। दलं च।

मर्म कोपं च

द्वौ मर्मणि। म्रियतेऽनेन मर्म। नान्तम्। कुप्यते कोपम्[4]।

कलहं परिवादं छलं नयेत्।

करेण हन्त्यत्र कलहः। परिवदनं परिवादः। छलयती (त्यत्रे)ति छलम्।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षड् रुधिरे। शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन शोणितम्। तालव्यः। रोहति देहे जायते लोहितम्। रजति रसं रक्तम्। रुणद्धि रुधिरम्। क्षताद् व्रणाज्जायते क्षतजम्। अस्यते क्षिप्यते असृक्।

सन्ततानारताजस्रान्वहं कन्यापतिर्वरः।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते। सन्तन्यते स्म सन्ततम्। न आरतम् अनारतम्। न जस्यतीत्येवंशीलमजस्रम्। अन्वहम्। कन्यापतिर्वरः नन्दतु इति प्रयोजनीयम्।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

चत्वारो विवाहे। उद्वहनं उद्वाहः। परिणीयते परिणयनम्। विवाह्यते विवाहः। निवेश्यते निवेशनम्।

शुषिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे। शुष्यति जलमत्र [5]शुषिरम्। उपशुषीति रः। विव्रियते भूमध्यमनेन विवरम्। रणति वातेन रध्यति हिनस्ति प्राणिनं वा रन्ध्रम्। छिद्यते तत् छिद्रम्। कुहरम्। विलम्। निर्व्यथनम्। रोकम्। श्वभ्रम्। वपा। शुषिः।

गर्ता च गह्वरम्।

गर्तायां द्वौ। पतितं प्राणिनं गिरति गर्ता। गर्तः। गूहतीति गह्वरम्।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके। श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्भ्रान्तं वा श्वभ्रम्। रसायां भवं रस्यम्। पतन्त्यस्मिन् पातालम्। नराः कायन्त्यत्र नरकः। नारकः। पुंसि। अमेधसः बुद्धिरहिताः

---

१. "लिश अल्पीभावे"। दिवादिः। ततो घञ्विधानमर्थाऽनुरूपम्।। २. का० सू० ४।५।४। ३. लूयते छिद्यते लवः। ऋदोरप्। टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनार्थाऽभिधायी। ४. कोपशब्दः पेशीवाचको मेदिन्यां लभ्यते। पेशीनां मर्मस्थानत्वमायुर्वेदे सम्मतम्। अत उपचारात् कोपोऽपि मर्मेत्यभ्युन्नेयम्। तदुक्तम्—'कोपोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके। जातिकोपेऽर्थसङ्घाते पेश्यां शब्दादिसङ्ग्रहे"। पा०वर्गा० ६। ५. "तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुषिभ्यः किरः" का०उ० १।२३। सुषिरस्यास्तीति विग्रहे तु "उपसुषिमुष्कमधो रः" पा०सू० ५।२।१०७। इति रः। रप्रत्ययपक्षे दन्त्यादिरयम्। उषसुषीति पा० सूत्रे दन्त्य एव पाठः। क्षीरस्वाम्यपि दन्त्यमेव पपाठ।

सम्यक्चारित्ररहिता **यान्ति** गच्छन्ति नरकम् । निरयः । दुर्गतिः ।

अदभ्रं भूरि भूयिष्ठं बंहिष्ठं बहुलं बहु ।
प्रचुरं नैकमानन्त्यं प्राज्यं प्राभूतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

द्वादश प्रभूते । न दभ्रमदभ्रम् । भवति प्राचुर्यमत्र **भूरि**, भूरिष्ठं च । अतिशयेन बहु **भूयिष्ठम्** । "बहो[1] र्लोपो भू च बहोः" "इष्ठस्य[2] यिट्चेति" भूरादेशो यिडागमश्च । अतिशयेन बहुलो **बंहिष्ठः** । वहति प्राचुर्यं **बहुलम्** । प्रचुरति [3]**प्रचुरम्** । न एकं **नैकम्** । अनन्तस्य भाव **आनन्त्यम्** । प्राज्यते प्रकर्षेण वीयतेऽनेन वा **प्राज्यम्**[4] । प्रा भवति स्म **प्राभूतम्** । प्रभूतं च । पुष्यति **पुष्कलम्** । पुष्कं च । पुरुलम् । पुष्टम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।

तत्त्वज्ञश्चतुरो धीरस्त्यजेज्जन्माजवं जवम् ॥ १६२ ॥

अष्टौ संसारे । भवतीति **भवः** । भवतीति **भावः** । "[5]वा ज्वलादिदुनीभुवो णः" । संसरति अस्मिन् **संसारः** । संस्रियते अस्मिन् **संसरणम्** । संसरणं **संसृतिः** । जनयतीति **जन्म** । आजवतीति **आजवम्** । जवति चतुर्गत्यां भ्रमति (अत्र) **जवः** ।

ऊर्जस्फूर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्व्यपि ।

चत्वार (पञ्च) स्तेजोयुक्तपुरुषे । ऊर्क् ऊर्जा वाऽस्त्यस्येति **ऊर्जस्वी** । स्फूर्जोऽस्यास्तीति **स्फूर्जस्वी** । तरोऽस्यास्तीति **तरस्वी** । तेजोऽस्यास्तीति **तेजस्वी** । मनोऽस्यास्तीति **मनस्वी** ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो मतः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते इत्येवंशीलो **भास्वरः**[6] । **भासुरः** । "भिदि[7]भासिभंजां घुरः" । शूरयति **शूरः** । शूर वीर विक्रान्तौ । प्रवीरयते **प्रवीरः** । सुष्ठु भटः **सुभटः** । विक्रान्तः ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

पञ्च कवचे । तनु शरीरं त्रायते रक्षति **तनुत्रम्** । वृणोत्यङ्गं **वर्म** । कच्यते वध्यते शरीरम् अनेन **कवचम्** । आवरणमा**वृतिः** । वाणानां वारणं निषेधनं **वाणवारणम्** ।

कूर्पासं कञ्चुकम् ।

द्वौ कञ्चुके । करोति शोभां **कूर्पासम्** । कर्पासं च । कञ्च्यते बध्यते **कञ्चुकः** ।

छत्रमातपत्रोष्णवारणम् ॥ १६४ ॥

त्रयश्छत्रे । वर्षातपौ छादयतीति **छत्रम्** । त्रिपु । छत्रः, छत्री । आतपात् त्रायते **आतपत्रम्** । उष्णस्य वारणम् **उष्णवारणम्** । नृपलक्ष्म ।

केशं शिरोरुहं बालं कचं चिकुरमीहयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेते **केशः** । शिरसि रोहति **शिरोरुहः** । वल्यते संव्रियते **वालः** । मस्तके चीयते कचति वा **कचः** । चीयते यत्नेन चिङ्गुरः । **चिकुरश्च** । मूर्धजः । शिरसिजः ।

---

१. पा० सू० ६।४।१५८। २. पा० सू० ६।४।१५६ । ३. प्रचोरति प्रचुरम् । चुर स्तेये । चुरादीनां णिज्वैकल्पिकः । इगुपधेति कः । प्रगतं चुरायाः प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४. प्राज्यते काम्यते "अञ्जू व्यक्त्यादौ" अञ्जेः संज्ञायामिति क्यप् । यद्वा प्रवीयते "अज गतिक्षेपणयोः" क्यप् । वीभावो नेति टीकाशयः । ५. का० सू० ४।२।५५ । इति णः । ६. "कपिपिसिभासीशस्थाप्रमदां च" का० सू० ४।४।४७ । इति वरः । ७. का० सू० ४।४।४१ ।

वृजिनः[1] । कुन्तलः ।

चूडापाशं च धम्मिल्लं कबरी केशबन्धनम् ॥ १९५ ॥

चत्वारः केशबन्धने । चुद संचोदने । "चुरादेश्च[2]" इन् । नामिनो[3] गुणः । चोदनं चूडा । "ऊन[4]चुदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यः संज्ञायाम्" अङ् प्रत्ययः । कारितलोपः । निपातनात् उपधाया ह्रस्वत्वम् । दस्य डत्वम् । चूडायाः शिखायाः पाशः बन्धनं **चूडापाशः** । धम्मिः सौत्रः । धम्यन्ते केशा बध्यन्ते **धम्मिल्लः** । कं मस्तकं वृणोति कबरो नदादित्वादीः । **कबरी** । इदन्तोऽपि कबरिः । आबन्तो वा कबरा । केशस्य बन्धनं **केशबन्धनम्** । वेणी । प्रवेणी । वीणा च

उररीकृतमप्यूरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

त्रयोऽङ्गीकारे । ऊरीप्रभृतीनां कृञा सह समासो वा भवति । तथाहि—ऊरी उररी अङ्गीकरणे विस्तारे च । आश्रुतम् । प्रतिज्ञातम् । उपगतम् ।

अस्तुंकारोऽभ्युपगमे

अभ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुङ्कारः कथ्यते । अस्तु करोतीति (करणम्) **अस्तुङ्कारः**[5] । "[6]कर्मण्यण्" अण् प्रत्ययः । अस्योप० वृद्धिः । व्यंजनम[7] । "[8]सत्यागदास्तूनां कारे" । मकारागमः ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १९६ ॥

सत्यापणे सत्यं करोतीति सत्यङ्कारः[9] ।

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।
मैत्री मैत्रेयिकाजर्यं सहाय्यं संगतं मतम् ॥ १९७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदां भावः **सौहार्दम्** । **सौहृदम्** । **हार्दम्** । **सौहृद्यमे**कमेव वाक्यम् । सख्युर्भावः **सख्यम्** । सुरस्येदं (भेरिदं) **सौरभम्** । मित्रस्य भावो **मैत्री** । मैत्र्यां नियुक्तो **मैत्रेयिकः** । न जीर्यते **अजर्यम्** । सहाजी (य्य) ते **सहाय्यम्** । संगमनम् **सङ्गतम्** ।

क्षेमं कल्याणमुभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।
भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १९८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षिणोति क्लेशान् **क्षेमम्** । कल्यते ज्ञायते **कल्याणम्** । कल्यं नीरुजत्वमनिति वा कल्याणम् । प्रकृष्टं प्रशस्यं **श्रेयस्** । सान्तम् । भदते ह्लादते सुखीभवत्यनेन **भद्रम्** । मं पापं गालयतीति **मङ्गलम्** । भवनशीलं **भावुकम्** । "श्रकमगमहनवृषभूस्थालषपतपदामुकञ्[10]"। प्रशस्तो भवोऽस्यास्तीति **भविकम्** । पुण्यकृतो भवितव्यं भवति **भव्यम्** । श्वः शोभनञ्च वसीयः **श्वोवसीयः** । श्वोवसीयसं च । 'श्वसो'[11]वसीयस्" । शीयते तनूक्रियते दुःखमनेन **शिवम्** । भाष्यविधातॄणां श्रीमदमरकीर्तीनां शिवं भवतु ।

---

१. वृजिनशब्दो भङ्गुरवाची । तदुक्तम्—"वृजिनं भङ्गुरं भुग्नमरालं जिह्ममूर्त्तिमत्" अभि० चि० ३।९३ । लक्षणया भङ्गुरकेशेऽपि वृजिनशब्दप्रयोगः । २. का० सू० ३।२।११ । ३. का० सू० ३।५।२ । ४. का० सू० ४।५।८२ । अत्र दुर्गवृत्तिः "ऊनचुदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यो यो प्राप्ते वचनम्" इत्येवंरूपा । ५. अस्तुकरणमस्तुङ्कारः । ६. का० सू० ४।३।१ । ७. "व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्" का० सू० १।१।२१ । ८. का० सू० ४।१।२३ । ९. सत्यस्य करणं सत्यङ्कारः । भावे घञ् । कर्तृविग्रहष्टीकोक्तस्त्वयुक्तः । १०. का० सू० ४।४।३४ । ११. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।
शब्दपारायणस्यान्तं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १९९ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमव्याख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय सूचितम् ।
बोधयेत्कियदुक्तिज्ञो मार्गज्ञः सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया धनञ्जयकविना सूचितं कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उक्तिज्ञो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गज्ञः किं सह याति गच्छति, अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
द्विःसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

एतद्रत्नत्रयमपश्चिमं नवीनमपूर्वं वर्तते ।

कवेर्धनञ्जयस्येयं सत्कवीनां शिरोमणेः ।
प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्वयम् ॥ २०२ ॥

धनञ्जयस्य कवेः सत्कवीनां शिरोमणेः इति अमुना प्रकारेण इयं नाममाला श्लोकानां शतद्वयं २०० प्रमाणमस्ति ।

ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुषाराचल-
स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।
अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो
फूत्कुर्वन्ति धनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥२०३॥

अहो लोकाः धनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिताः सम्यक् प्रकारेण पीडिताः फूत्कुर्वन्ति । किं कृत्वा पूर्वं वेदनिनदव्याजात् मिषात् ब्रह्माणं समुपेत्य प्राप्य, ईश्वरं तुषाराचलस्थानस्थावरं सुरनदीव्याजात् प्राप्य, केशवं श्रीविष्णुं किं विशिष्टं अम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशात् समुपेत्य सुगमोऽयं श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन
श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां
धनञ्जयनाममालायां प्रथमं काण्डं
व्याख्यातम्

श्रीमद्धनञ्जयकविविरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—०—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च चैलाचार्यं शिवायनम् ।
अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विवृणोम्यहम् ॥ १ ॥
गम्भीरं रुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् ॥
शाब्दं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोज्ञं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् । सुगमव्याख्याऽस्ति ।

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू[1]

शम्भू इति द्विवचनान्तं पदम् ।

जिनावर्हत्तथागतौ[2] ।

जिनौ कथ्येते ।

वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ[3]

वेदश्च सूर्यश्च वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ सूर्यौ कथ्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषाकपी[4] ॥ ३ ॥
विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनन्तौ[5] शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेन्द्रः, शार्ङ्गी च विष्णुः शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूतौ[6] तु करिक्रीडौ पर्जन्यौ[7] शक्रवारिदौ ॥ ४ ॥
वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽर्णसि ।

सुगमव्याख्या ।

---

१. शं कल्याणं भवतीति शम्भुः । डुप्रत्ययः । केशवब्रह्मवाची च । तदुक्तम्—"शम्भुः स्याद् ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे", । इति वि० लो० भा० व० ९ । हैमे च—"शम्भुर्ब्रह्मार्हतोः शिवे" । २१६ । इति च । २. विष्णु, अतिवृद्ध, जित्वर, इत्येतेष्वपि जिनः । तदुक्तम्—"जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोस्त्रिषु" वि० लो० ना० व० ८ । हैमे- "जिनोऽर्हद्बुद्धविष्णुषु" २।२६९ । ३. "विवस्वान् देवसूर्ययोः" अने० स० ३।३१७ । अत्र देवशब्दपाठात्प्रस्तुतेऽपि देवशब्द एव युक्तः । ४. अग्निश्च । तदुक्तम्-"वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽग्नौ च" अने० सं० ४।२१६ । ५. अनवधिरप्यनन्तार्थः । "अनन्तः केशवे शेषे पुमाननवधौ त्रिषु" इति मेदिनी । ६. "जीमूतो वासवेऽम्बुदे । घोषकेऽद्रौ भृतिकरे" इति० अने० सं० । ७. पर्जन्यो मेघगर्जितेऽपि । तदुक्तम्—"पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुद-शक्रयोः" इति मेदिन्याम् ।

घृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
तल्पं दारेषु शय्यायां ज्योतिश्चक्षुषि तारके ।
धवले सुन्दरे रामो वामो वक्रे मनोहरे ॥ ६ ॥
नक्षत्रे मन्दिरे धिष्ण्यम्

देवेष्टि शब्दं करोत्यत्र जनो **धिष्ण्यम्** । नपुंसकम् । धिष शब्दे ।

वसने गगनेऽम्बरम् ।

वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्बं शब्दं राति ददातीति **अम्बरम्** ।

परिधौ पादपे सालः

परिधौ पादपे सालो वर्तते । सां लक्ष्मीं लातीति **सालः** ।

"सालः शर्जतरौ वृक्षमात्रप्राकारयोरपि" इति हैमः[1] ।

सिन्धुः स्रोतसि योषिति ॥ ७ ॥

स्रोतसि योषिति सिन्धुः । स्यन्दते **सिन्धुः** ।

सारसः शकुनौ धूर्ते

सरसि तडागे भवः [2]**सारसः** ।

केतनं दीधितौ ध्वजे ।

केतन्ति जानन्त्यत्र **केतनम्** । तथा च—

"कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।"

मयूखः कीलके दीप्तौ

मयते विस्तारं यातीति **मयूखः** ।

पतङ्गः शलभे रवौ ॥ ८ ॥

पततीति **पतङ्गः** । पत्लृ गतौ ।

अञ्जनः कज्जले नागे

कज्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिषु । विक्रमेण[3] अज्यते प्रकटीक्रियते **अञ्जनः** ।

सारङ्गः पृषते गजे ।

सरतीति **सारङ्गः**[4] ।

सरलः प्रगुणे वृक्षे

ऋजुत्वात्**सरलः** ।

पुन्नागः[5] सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥

पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः ।

---

१. अने० स० २।२२७ । २. धूर्तपक्षे तु अरसेन द्वेषेण सहितः सारस इति विवेकः । ३. गजोऽपि विक्रमेण ज्ञायते, कज्जलोऽपि विक्रमणबलेन म्रक्ष्यते । ४. सारं दृढमङ्गं यस्येत्यपि । सरतीत्यस्य स्थाने सारयतीति युक्तम् । ५."पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीफले नरश्रेष्ठे पाण्डुनागे द्रुमान्तरे।"इति मेदिनी

पाञ्चजन्योऽनले शङ्खे[1]

पञ्चजने पाताले भवः **पाञ्चजन्यः** ।

कम्बुः[2] **शङ्खे मतङ्गजे ।**

कम्बुः सौत्रः कम्ब्यते वर्ण्यते **कंबुः** । अथ वा कवृ वर्णे उणादित्वादस्मादेव नकारागमश्च ।

कस्वरो द्युभवे द्युम्ने

द्युभवे स्वर्गोद्भवे द्युम्ने सुवर्णे **कस्वरः** । कुत्सितं स्वरति **कस्वरः** ।

स्यन्दनं शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यदन्ते **स्यन्दनम्**[3] ।

अद्रिर्गिरिवनस्पत्योः

गिरिश्च वनस्पतिश्च गिरिवनस्पती तयो**र्गिरिवनस्पत्योः** । अत्ति आकाशमित्य**द्रिः** ।

शिखरी तरुभूध्रयोः

शिखरमस्यास्तीति **शिखरी** ।

[4]**राजा चन्द्रमहीपत्योः ।**

राजते इति **राजा** ।

द्विजो दशनविप्रयोः ॥ ११ ॥

द्विर्जातो **द्विजः** ।

मोचामरस्त्रियो रम्भा

ब्रह्मर्षीनपि रमयतीति **रम्भा** ।

कदली ध्वजमोचयोः ।

केन वायुना दल्यते विदार्यते **कदली** ।

अशोकः सुमनस्तर्वोः

न शोको यस्माद्यस्य वा **अशोकः** ।

सुमनाः सुरपुष्पयोः ॥ १२ ॥

सुरश्च पुष्पं च सुरपुष्पे तयोः **सुरपुष्पयोः** । शोभनचित्तः **सुमनाः** ।

मुक्तारजतयोस्तारः

तीर्यते **तारः** ।

भूरि भूयःसुवर्णयोः ।

पुण्यवत्सु भवतीति **भूरि** । क्लीबे ।

पानीयदुग्धयोः क्षीरम्[5]

घस्लृ अदने । सौत्रोऽयम् ।

---

१. "पाञ्चजन्यस्तु विष्णुशङ्खे द्रुमान्तरे" इति मेदिनी । २. "कम्बुः पुमान् गजे । वलये शङ्ख-शम्बूककन्धरामलके स्त्रियाम्" इति वि॰ लो॰ बा॰ व॰ २ । ३. "स्यन्दनं प्लवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रथे" वि॰ लो॰ ना॰ व॰ १५१ । ४. राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ । यक्षे शक्रे च पुंसि स्यात्" इति मेदिनी । ५. घस्यतेऽद्यते क्षीरम् । "घस्लृ अदने" । घसेः किच्चेति कीरः ।

पयः सलिलदुग्धयोः ॥ १३ ॥

पीयते **पयः** ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालश्च त्रुट्यादिलक्षणः ।

"स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥"

अथवा— "सर्षपस्य प्रयत्नेन क्षिप्तस्य पततोऽम्बरात् ।
द्विग्रवं यावदध्वानं कालः स (च) त्रुटिः स्मृतः ॥"

प्रकर्षश्च प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षौ तयोः **कालप्रकर्षयोः काष्ठा** कथ्यते । काशते भासते **काष्ठा** । ष्ठान्तोऽयम् ।

कोटिः संख्याप्रकर्षयोः ।

कुटतीति **कोटिः** ।

"कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षा च कोटिरपि कियती ।
औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती ॥"

रन्ध्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धानं **सन्धिः** ।

"सन्धिर्योनौ सुरङ्गायां नाट्येऽङ्गे श्लेषभेदयोः" इति हैमी[1] ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्यन्दते **सिन्धुः** ।

निषेधदुःखयोर्बाधा

बन्धनं (बाधनं) **बाधा** । बाधृ प्रतिघाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुह्यते **व्यामोहः**[2] ।

कौपीनाकारयोर्गुह्यम्

गुह्यते **गुह्यम्** । गुहू संवरणे । "गुह्यमुपस्थे रहस्ये च" इति हैमी[3] ।

कीलालं रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीलां लातीति **कीलालम्**[4] । "कीलालं रुधिरे नीले" इति हैमी[5] ।

मूल्यसत्कारयोरर्घः

अर्घ्यते पूज्यतेऽनेनेत्यर्घः । "[6]व्यञ्जनाच्च" घञ् । होपधत्वाद्दीर्घो न। "न्यङ्क्वादीनां हश्च घः[7]" ।

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

---

१. अने० स० २।२५७ । २. व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूलं मृग्यम् । ३. अने० स० २।३५८ । ४. कीलां ज्वालामलति वारयति । अल पर्याप्त्यादौ । इति जले विग्रहः । रुधिरार्थे तु टीकोक्तः । ५. अने० स० ३।६८३ । ६. का० सू० ४।५।९९ । ७. का० सू० ४।६।५७ ।

श्रेष्ठकुलीनयोर्जात्यः । जात्यां भवो जात्यः ।

मेघवत्सरयोरब्दः

अवतीति अब्दः । कुन्दादयः[1]–"कुन्दतुन्दमन्दाब्दाः" । "अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि[2] ।"

तार्क्ष्यो हयगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

तृक्षस्यापत्यं तार्क्ष्यः । पुंसि ।

स्तब्धतास्थूणयोः स्तम्भः

स्तम्भु इति सौत्रोऽयं धातुः ।

चर्चा चिन्तावितर्कयोः ।

चर्चणं चर्चा ।

हरकीलकयोः स्थाणुः

तिष्ठतीति स्थाणुः ।

स्वैरः स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वस्य ईरः स्वैरः । [3]स्वस्यात ऐतमीरेरिणोरपि वक्तव्यम् । तथा चालङ्कारे—

"स्वैरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति ।
भिक्षुरेकः सुखी लोके राजचौरभयोज्झितः ॥"
"स्वैरो मन्दे स्वतन्त्रे च" इति हैमी[4] ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।
संख्यायाम्

शं कायति कूयते वा [5]शङ्कुः ।

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दुनोतीति दवः । दावः । "वा[6] ज्वलादिदुनीभुवो णः" ।

कीनाशः कृपणे भृत्ये कृतान्ते पिशिताशिनि ।
तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥१९॥

लोभेन विलश्यते बाध्यते कीनाशः । तालव्यः ।

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुसूनौ हुताशने ।

विरोचते इत्येवंशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रध्ने यतावश्वे सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हंसः ।

सोमश्चन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा युगादिभूः ।
सोमः प्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिग्पतिः ॥ २१ ॥

---

१. का० उ० सू० ३।६४ इति दप्रत्ययः । २. अने० स० २।२२६ । ३. "स्वस्येरेरिणीरिपु" का० रू० पू० ३८ । ४. अने० स० २।४८२ । ५. शङ्कतेऽस्मात् शङ्कुः । "शकि शङ्कायाम्" । औणादिक उः । ६. का० सू० ४।२।५५। इति णप्रत्ययः "टुदु उपतापे" ।

पुञ् अभिषवे। अनेन सर्वेषां साधनिका ज्ञातव्या।

अजो विधिरजो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः।
अजस्त्रैवार्षिको व्रीहिरजो रामपितामहः॥ २२॥

न जायते नोत्पद्यते अजः।

शुद्धेऽनुपहते वह्नौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे।
आषाढेऽध्यात्मसंवित्तौ ब्रह्मचर्ये शुचिर्मतः॥ २३॥

मतः कथितः। एतेष्वर्थेषु शुचिशब्दः। शोचति जनो देहलग्नेऽत्र शुचिः। तथा च यशस्तिलकचम्पूकाव्ये–

“न स्त्रीभिः सङ्गमो यस्य सर्वद्वन्द्वविवर्जितः।
तं शुचिं सर्वदा प्राहुः मारुतं च हुताशनमिति॥”

अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु।

अर्थशब्दः पठ्यते। अभिधेयश्च शब्दो वाचकः, शब्दमध्ये योऽसावर्थः स वाच्यः अभिधेयश्च कथ्यते। राः सुवर्णम्। वस्तु—अस्थ्यादिर्लोहितादिर्वा। गैरिकान्वितं (दिकं च) वस्तु। प्रयोजनं कार्यम्। निवृत्तिश्च मुक्तिः। तासु। ऋ गतौ। अर्यते इत्यर्थः।

भावः पदार्थचेष्टात्मसत्ताभिप्रायजन्मसु॥ २४॥

एतेष्वर्थेषु भावः पठ्यते। भवतीति भावः। “वा[1] ज्वलादिदुनीभुवो णः।”

प्रायो भूमोपमातर्क्यप्रभृत्यन्ननिवृत्तिषु।

एतेष्वर्थेषु प्रायः[2] शब्दः।

अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्त्वव्यतीतिषु॥ २५॥

एतेष्वर्थेषु अन्तः।

अक्षो द्यूते वरूथाङ्गे नयनादौ विभीतके।

द्यूते वरूथाङ्गे रथचक्रावयवे, नयनादौ, विभीतके पूतनायाम् अक्षो वर्तते।

सारः श्रेष्ठे वले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे॥ २६॥

श्रेष्ठे, वले, वित्ते, कोशे, क्रोशे वा पाठः। जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते। सरत्यनेनेति सारः। [3]“वलमत्स्ययोश्च” इति परसूत्रेण घञ्। स्वमते “अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्[4]” इति घञ्। “सारो मज्जस्थिरांशयोः, वले श्रेष्ठे “च” इति हैमी।

वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि रवौ दिवि।
विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः॥ २७॥

पूजां गच्छतीति गौः। गमेर्डोः।

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे हये।
मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्वपि हरिः स्मृतः॥ २८॥

हरतीति हरिः।

---

१. का० सू० ४।२।५५। २. प्रकृष्टमयनं प्रायः। “इण गतौ”। एरच्। ३. “सर्तेःस्थिरव्याधिमत्स्यवले” हे० श० ५।३।१७। ४. का० सू० ४।५।४। ५. अने० स० २।४७८।

पद्मे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड्गफले गदे ।
वाद्यभाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २९ ॥

पुष्णातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कषायादौ घृतादौ च विषे जले ।
निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इष्यते ॥ ३० ॥

शृङ्गारादौ–

"शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥"

कषायादौ—तिक्ताम्लमधुकटुकषायेषु । घृतादौ—दुग्धदधिघृततैललवणेक्षुरसेषु । विषे जले, निर्यासे वृक्षरसविशेषे, पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इष्यते ।

तीर्थं प्रवचने पात्रे लब्ध्याम्नाये विदांवरे ।
पुण्यारण्ये जलोत्तारे महासत्ये महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्[1] ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।
पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

पञ्चसु लोहेषु सुवर्णरजतताम्ररीतिकांस्येषु । शरीरस्य रसादिषु रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रेषु । पृथिव्यादिचतुष्के च पृथिव्यप्तेजोवायु (वनस्पति) षु, स्वभावे, वातपित्तश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु **धातुः** पठ्यते । दधातीति **धातुः** ।

प्रधानशृङ्गलाङ्गूलभूषापुण्ड्रप्रभावना ।
ध्वजलक्ष्मतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

एतेष्वर्थेषु [2]ललामः । ललामन् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।
माल्यानुलेपने चैव वर्णः षट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृतौ, अक्षरे, रूपे, ब्राह्मणादिषु जातिषु, माल्यानुलेपने च **वर्णो**[3] निगद्यते ।

अकारादावुदात्तादौ षड्जादौ निस्वने स्वरः ।

एतेष्वर्थेषु **स्वरः** कथ्यते । अकारादौ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ औ, । उदात्तादौ—'[4]उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः," "नीचैरनुदात्तः" "समवृत्या स्वरितः" । षड्जादौ—

"निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रिकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥"

निस्वने शब्दे ।

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते **समयः** ।

---

१. तरति तीर्यते वाऽनेन तीर्थम् । २. "लड विलासे" । डलयोरभेदात् ललतीति ललामः । ३. "वर्ण शब्दे" । वर्णयति वर्ण्यते वा वर्णः । घञ् कर्मणि, अच्वा कर्तरि । ४. सारस्व० सू० २ । ५. अम० को० १।७।१ ।

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छदे ।

तन्त्यन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति **तन्त्रम्** । ष्ट्रप्रत्ययः ।

सत्त्वमोजसि सत्तायामुत्साहे स्थेम्नि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।

रूपादौ तन्तुषु ज्यायामप्रधाने नये गुणः ।

गुणयतीति **गुणः** ।

ज्ञानचारित्रमोक्षात्मश्रुतिषु ब्रह्मवाग्वरा ॥ ३७ ॥

वरा विशिष्टा ।

अवकाशे क्षणे वस्त्रे वहिर्योगे व्यतिक्रमे ।
मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

एतेष्वर्थेषु **अन्तरः** ।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ ।
आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ॥ ३९ ॥

इष्यते कथ्यते । **अथ** एष्वर्थेषु ।

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४० ॥

प्रकीर्तितः कथितः इतिशब्दः एतेष्वर्थेषु । इण् गतौ । इ । एति एवमादिकमर्थमिति । "इति [1]अमुर्पणि प्रभृतिभ्यो यण्वत्" इत्यनेनेतिप्रत्ययः । इति जातम् । प्रथ० सिः । "अव्य-[2]याच्च" सिलोपः ।

धर्मो धनुष्यहिंसादावुत्पादादावये नये ।
द्रव्यक्रियाश्रये वित्ते जीवादौ दारुवैकृते ॥ ४१ ॥

एतेष्वर्थेषु **धर्मः** । धरतीति **धर्मः** ।

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।

एतेष्वर्थेषु **पुद्गलः**[3] ।

अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म-पुद्गलस्कन्धः) कर्म-ज्ञानावरणादि, नोकर्म—शरीरादि । जातिर्गोत्रादि । एतेषु वर्गणा वर्तते ।

ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्यावबोधस्य षण्णां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

भजन्त्यस्मिन्निति [4]**भगः** ।

आहुः कैवल्यमार्हन्त्ये विविक्ते निर्वृतावपि ।

---

१. कातन्त्रेऽस्य शुद्धं रूपं नोपलब्धम् । २. का० सू० २।४।४ । ३. पूर्यन्ते पुनः पुनः सत्यधर्मे इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च, पुद्गलाः । पृषोदरादित्वाद्रस्य दः । ४. भज्यते सेव्यते धार्यते वा भगः ।

केवलस्य भावः कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधादाविष्टाप्तौ नियतौ श्रियाम् ॥ ४४ ॥

लम्भनं लब्धिः ।

अनेकान्ते च विद्यादौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

[1]स्यात् भवेत् एतेष्वर्थेषु निपातः ।

भ[2]ट्टारको धर्मचन्द्रस्तत्पट्टे धर्मभूषणः ।
तत्र देवेन्द्रकीर्तिः श्रीकुमुच्चन्द्रस्ततः परम् ॥ १ ॥
धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तत्पदेऽभवत् ।
तेन पुस्तकमेतद्धि दत्तं (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

---

१. स्यात् इत्याकारको निपात एतेष्वर्थेषु इति सम्बन्धः । २. इतः परं मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलभ्यते, तद्यथा--"दर्शनादौ मणौ रत्नं भव्यः शस्ते प्रसेत्स्यति ॥४५॥ परमात्मा जिने सिद्धे परमेष्ठ्यर्हदादिषु । सिद्धाः सिद्धनिषद्यायामर्हत्सिद्धश्रियामपि ॥४६॥ अर्हत्सिद्धमिति द्वावप्यर्हत्सिद्धाभिधायिनौ । अर्हदादीनपि प्राहुः शरणोत्तममङ्गलान् ॥४७॥ इति । ३. अत्राशुद्धिदोषात्किञ्चित्पाठभेदः, स च शोधित इत्थंरूपः संवृत्तः ।

अनेकार्थ-निघण्टुः

गम्भीरान् रुचिरांश्चित्रान् विस्तीर्णार्थप्रसाधनान् । कण्टशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥

वाग्दिग्भूरश्मिवज्रेषु पशुवक्षिस्वर्गवारिषु । नवस्वर्थेषु मेधावी गोशब्दमुपलक्षयेत् ॥२॥
कः प्रजापतिरुद्दिष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्दः स्वर्गमाख्याति क इत्यात्मा मतः क्वचित् ॥३॥
सलिलं कमिति ज्ञेयं शिरः कमिति चोच्यते । देवाननिमिषानाहुर्मत्स्याननिमिषांस्तथा ॥४॥
अग्निश्च वर्हिणः चैव वृक्षः कुक्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिताः शस्त्रः पृथुकश्च मतः शिखी ॥५॥
हंसो नारायणः प्रोक्तः क्वचिद्धंसो दिवाकरः । अश्वश्चापि स्मृतो हंसो हंसश्चापि विहंगमः ॥६॥
सारसस्सरसिजेन्द्वोः पतत्र्यपि च सारसः । राजाऽपि नृपतिर्ज्ञेयो राजा चोक्तो निशाकरः ॥७॥
विभावसुर्हुताशः स्याच्छ्वेतच्छत्रं क्वचिद्भवेत् । हिमारातिः स्मृतो वह्निः हिमारातिश्च भास्करः ॥८॥
धनञ्जयोऽग्निर्व्याख्यातो पार्थश्चापि धनञ्जयः । बीभत्सश्च मतः पार्थो बीभत्सो विकृतः स्मृतः ॥९॥
अग्निर्विरोचनः प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचनः । विरोचनश्च चन्द्रः स्यात्क्वचिद्दैत्यो विरोचनः ॥१०॥
पाञ्चजन्यः क्वचिद्वह्निः क्वचिच्छङ्खो निगद्यते । कम्बुश्च गदितः शङ्खः कम्बुरिष्टश्च कुञ्जरः ॥११॥
भास्करोऽग्निः समुद्दिष्टः सहस्रांशुरपि क्वचित् । पतङ्गो दिनकृद् ज्ञेयः पतङ्गः शलभः स्मृतः ॥१२॥
कौशिको देवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिकः । शम्भुर्ब्रह्मा च विष्णुश्च शम्भुश्चैव महेश्वरः ॥१३॥
वृषकेतुर्मतः शङ्कुः शङ्कुः कील इहोच्यते । जम्बुको वरुणो ज्ञेयः शृगालश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
अर्क इष्टस्तु मघवान् घर्मांशुरर्क उच्यते । मन्थी राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्थी निरुच्यते ॥१५॥
केतवो रश्मयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोनुदः सहस्रांशुरग्निश्चापि प्रकीर्त्यते ॥१६॥
मयूखाः किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कीलकाः । सप्तर्षिरुत्सवः प्रोक्तः सप्तान्ये ऋषयः क्वचित् ॥१७॥
वसवः शंवरा उक्ता देवाश्च वसवो मताः । नक्षत्रं धिष्ण्यमित्युक्तं गेहं धिष्ण्यं मतं क्वचित् ॥१८॥
वासोऽम्बरमिति ख्यातमम्बरं च नभःस्थलम् । पयः सलिलमुद्दिष्टं पयः क्षीरं मतं क्वचित् ॥१९॥
शिवं पानीयमुद्दिष्टं शिवं श्रेयः शिवं सुखम् । शिवं व्योमपतिं प्राहुः शिवं श्रेष्ठं प्रचक्षते ॥२०॥
क्षरं जलं विजानीयात्क्वचिन्मेघं विदुः क्षरम् । स्यन्दनं चाम्बु निर्दिष्टं स्यन्दनश्च महारथः ॥२१॥
कृष्णं तमः समाख्यातं कृष्णश्चाधोक्षजस्तथा । अमृतं क्षीरमित्युक्तं क्वचिच्चेष्टं समुद्रजम् ॥२२॥
शवं च सलिलं प्रोक्तं मृतमाहुः शवं तथा । तोयं घृतमिति प्रोक्तं घृतं सर्पिः क्वचिद्भवेत् ॥२३॥
पानीयं च विषं प्रोक्तं क्वचिद्धालाहलं विषम् । हस्तिहस्तः करः प्रोक्तः करो हस्तः प्रचक्ष्यते ॥२४॥
कीलालं रुधिरं प्रोक्तं नीरं चैव प्रशस्यते । भुवनं सलिलं प्रोक्तं आकाशं भुवनं स्मृतम् ॥२५॥
प्रवालं कोमलं ज्ञेयं कोमलं स्पष्टवाचकम् । सदनं च स्मृतं तोयं सदनं वेश्म उच्यते ॥२६॥
तोयं सद्मेति गदितं निलयं सद्म निगद्यते । संवरं च जलं प्रोक्तं संवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
संवरश्चाऽसुरः ख्यातो यो बिभर्ति रसां प्रियाम् । स्वरवाक्क्ष्मास्विडां प्राहुरिडा चाम्बरदेवताम् ॥२८॥
पत्नीं चन्द्रेरिडां प्राहुरिला तत्समतां गता । अदितिः पृथिवी ज्ञेया देवमाताऽदितिः क्वचित् ॥२९॥
अध्यूढा भार्या परित्यक्ता त्वद्भिदिश्च निगद्यते । वृषो धर्म्मः क्वचिज्ज्ञेयो गवामपि पतिर्वृषः ॥३०॥
वृषा कर्णश्च गदितो वृषा चोक्तः शतक्रतुः । रौहिणेयो वलः प्रोक्तो रौहिणेयो बुधः क्वचित् ॥३१॥
वलदेवो मतः शेषो नागो वा शेष उच्यते । रामस्तु लांगली ज्ञेयो रामो दाशरथिः क्वचित् ॥३२॥
रामश्च शुक्लो वर्णो रामश्च क्षत्रनाशनः । वराहः केशवः ख्यातो वराहो जलदः क्वचित् ॥३३॥
वराहः शूकरो ज्ञेयो विष्णुर्मेघो हरिस्तथा । अजाराट्स्मरेन्दवो ज्ञेयास्त्रिनेत्रश्चाप्यजो मतः ॥३४॥
अजः पशुश्च विख्यातो तथाजौ ब्रह्मकेशवौ । शरीरजः स्मृतो रोगः पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

ज्ञयं पुष्करमब्जं च नागनासाग्रमेव च । कूलं नभः समाख्यातं कूलं रोधः प्रचक्षते ॥३६॥
खं चानन्तमिति प्रोक्तमनन्तं च बलं क्वचित् । विष्णुः क्वचिदनन्तः स्यान्नागश्चानन्त उच्यते ॥३७॥
प्रजापतिः स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापतिः । प्रजापतिः स्मृतः क्षत्ता क्षत्ता च चर उच्यते ॥३८॥
वामः पयोधरः प्रोक्तो वामः स्याद्द्रविणं हरः । वामश्च मदनः प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
आगोपो गोपको ज्ञेयः क्वचिदागोपको ध्वजः । उरश्चाङ्कः समाख्यातः स्थानमङ्कः स्मृतस्तथा ॥४०॥
वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । विभावसुर्निशा ज्ञेया गन्धर्वश्च क्वचिन्मतः ॥४१॥
शर्वर्यो रात्रयः प्रोक्ताः शर्वर्यश्च स्त्रियो मताः । सान्द्रं घनमिति प्रोक्तं स्निग्धं सान्द्रं निगद्यते ॥४२॥
स्वः स्वर्गस्य मतं नाम स्वः सुखं क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निर्दिष्टः स्वः प्रोक्तो गृहमूषिकः ॥४३॥
ककुश्छन्दोविशेषज्ञो मतः शास्त्रेपि ना ककुप् । ककुम्महीरुहः प्रोक्तो ज्ञेयास्तु ककुभो दिशः ॥४४॥
क्षयं वेश्म समुद्दिष्टं क्षयं रोगं प्रचक्षते । जलदस्तु प्लवो ज्ञेयः प्लवो ज्ञेयस्तथोडुपः ॥४५॥
प्रासादो मण्डपः प्रोक्तो विहारश्चापि कथ्यते । घनं घनं विजानीयाद् घनं विपुलमुच्यते ॥४६॥
प्रयुज्यते च कस्मिश्चिद् घनं सङ्घातवाद्ययोः । वरूथं स्यन्दनाग्रं स्याद्वरूथं वेश्म उच्यते ॥४७॥
चमूश्च वर्म सहसा प्रवदन्ति मनीषिणः । असुराश्च सुरा ज्ञेयाः क्वचिद्देवारयोऽसुराः ॥४८॥
नागाश्च द्विरदा ज्ञेयाः पन्नगाश्च क्वचिन्मताः । गन्धर्वश्च तथा वायुः क्वचित्स्याद् देवगायनः ॥४९॥
तार्क्ष्यो हयः समुद्दिष्टस्तार्क्ष्यश्चापि पतत्रिराट् । बालेयानसुरानाहुर्बालेयांश्च क्वचित् खरान् ॥५०॥
तृणी वनस्पतिः प्रोक्ता क्वचिदार्द्राश्च कथ्यते । शिखरी वृक्ष उद्दिष्टः शिखरी पर्वतः स्मृतः ॥५१॥
द्विजो विप्रश्च दन्तश्च द्विजः पक्षी निगद्यते । चौरो मलिम्लुचो ज्ञेयो वातश्चापि मलिम्लुचः ॥५२॥
आत्मजं रक्तमुद्दिष्टं, सुतः कामस्तथैव च । कीनाशो मृतको ज्ञेयः कीनाशश्चापि राक्षसः ॥५३॥
कीनाशोऽग्निः कृतघ्नश्च कृपणो यम एव च । कीनाशः कर्षको ज्ञेयः कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
अवदातं प्रधानं स्यादवदातं च पाण्डुरम् । ज्योतिर्ल्लोचनमुद्दिष्टं ज्योतिर्नक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
ज्योतिश्च गदितो वह्निः काव्येषु मुनिपुङ्गवैः । प्रधानं सज्जनं ज्ञेयं प्रधानं श्वेतमुच्यते ॥५६॥
अब्दः संवत्सरो ज्ञेयो मेघश्चापि क्वचिन्मतः । बलाहका महामेघाः शिखरी च बलाहकः ॥५७॥
तोयदं जलदं प्राहुस्तोयदं कथ्यते घृतम् । जीमूतश्च मतो नागो जीमूतः क्वचिदम्बुदः ॥५८॥
पौलस्त्यं तु मतं युद्धं पौलस्त्यं पौरुषं विदुः । शुचिकृद्रजकश्चैव प्रोक्तो नित्यं बुधै रसः ॥५९॥
पर्जन्यं जलदं प्राहुः पर्जन्यं तु शतक्रतुः । शिलीमुखाः स्मृता बाणा भ्रमराश्च शिलीमुखाः ॥६०॥
लेखा सीमेति विज्ञेया लेखा चित्रकृतो मता । अम्बरीषं क्वचिद्भ्राष्ट्रं क्वचिद्युद्धं निगद्यते ॥६१॥
पुंस्त्वं चापि मतं युद्धं पुंस्त्वं पौरुषमुच्यते । विद्वांसोऽरिपवो ज्ञेया विद्वांसस्त्वसवो मताः ॥६२॥
मायाऽविद्येति विज्ञेया क्वचिन्माया तु सांवरी । मधु द्राक्षीति विज्ञेया क्वचित्स्यान्मधु माक्षिकम् ॥६३॥
मधु चाम्बु समाख्यातं सुरा च मधुसंज्ञका । खं रंध्रमिति विज्ञेयं खं गृहं नभ एव च ॥६४॥
खमिन्द्रियमिति ख्यातं खं च नक्षत्रमुच्यते । धार्तराष्ट्रा महाहंसा धृतराष्ट्रसुताः क्वचित् ॥६५॥
प्रभाकरो मतः सूर्यो वह्निश्चापि प्रभाकरः । सितं शुक्लमिति ज्ञेयं सितं बद्धं प्रचक्षते ॥६६॥
असितं कृष्णमित्युक्तं अशितं भक्षितं स्मृतम् । बभ्रुस्तु नकुलो ज्ञेयः पाण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
त्रिशङ्कुमाहुर्मार्जारमृषिश्चापि तथेष्यते । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यमः प्रेताधिपस्तथा ॥६८॥
लक्ष्मणं सारसं विद्यात्तथा दशरथात्मजम् । लक्ष्म चन्द्रस्य कार्ष्ण्यं स्याल्लक्ष्म्यः केतुः प्रकीर्तितः ॥६९॥
केतुश्चापि मतः काव्ये लक्ष्मेति मुनिपुङ्गवैः । आरुणेयः स्मृतो दक्षो दक्षश्चाचेतसः क्वचित् ॥७०॥
आशुकारी भवेद्दक्षः स्यादली तोमरः स्मृतः । आदित्यं च रविं विद्याद् दैत्यश्चाप्यदितेः सुतः ॥७१॥
रोगो रजस्तथा रेणू रजो लोहितमुच्यते । स्कन्धो नितम्बसंज्ञः स्यान्नितम्बं जघनं तटम् ॥७२॥
हेम वस्विति विज्ञेयं वसु तेजो निगद्यते । सारङ्गं चातकं प्राहुः स्वर्णं चापि सितासितौ ॥७३॥
रम्भाश्च कदलीः प्राहू रम्भा स्वर्गाङ्गना मता । ग्रावाणो गिरिजाः प्रोक्ता मेघाश्चापि मनीषिभिः ॥७४॥

.... निगद्यते । औपर्णं रसमुद्दिष्टमृतं सत्यमपि क्वचित् ॥७५॥
अक्ष आत्मेति विज्ञेयः केचिदाहुर्विभीतकम् । ज्ञेयमिन्द्रियमक्षं च शाकटं कर्ष एव च ॥७६॥
अक्षं च पाशकं विद्याद्व्यावहारिकमेव च । पद्ममिन्द्रियमित्युक्तं पद्मं तामरसं विदुः ॥७७॥
चैत्यमायतनं प्रोक्तं नीडमायतनं तथा । पुष्पं लोहितमुद्दिष्टं पुष्पं च कुसुमं तथा ॥७८॥
वाजी तुरङ्गमो ज्ञेयो वाजी श्येनो विहङ्गमः । विष्णिवन्द्रसिंहनण्डूकचन्द्रादित्यांस्तु वानरान् ॥७९॥
वभ्रुशिवानिलहयान् हरीनिच्छन्ति कोविदाः । पुरुषध्वजलिङ्गेषु हयभूषणलक्ष्मषु ॥८०॥
रामशेफावनीन्द्रेषु ललामं नवसु स्मृतम् । शुका स्मृताऽक्षिदोषोना लवली मञ्जरी तथा ॥८१॥
वक्रवक्त्रः शुको ज्ञेयः कोकिला वचनप्रिया । पुलिनं जलविच्छेदः पङ्कजं स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
रतं पापमिति ज्ञेयं सत्वरं शीघ्रमुच्यते । पिशङ्गं रोचनाभं स्यान्मेचकस्तिलको मतः ॥८३॥
ललाटेऽवस्थितं चिह्नं विद्वद्भिस्तिलकं मतम् । परिचर्यं च कटकं निकषस्तु कषो मतः ॥८४॥
नानारत्नैरुपचिता मञ्जूष रागिणी स्मृता । दिनकृद्वाजिसिंहेषु केसरित्वं विधीयते ॥८५॥
अव्यक्तो मधुरः शब्दः कल इत्यभिधीयते । अलातमुल्मुकं ज्ञेयं छेदो नाम भयङ्करः ॥८६॥
भावः शृङ्गारमाधुर्यं भावोऽवस्थाप्ररूपणम् । विलासः कामजो दोषस्तदेव ललितं मतम् ॥८७॥
उत्तमाङ्गं विना देहं कबन्धं चेति शस्यते । शिरसो वेष्टनं यद्वै तदुष्णीषं निगद्यते ॥८८॥
आहतं समदीर्घं स्यान्निविडं पीडितोन्नतम् । मण्डूको भेकसंज्ञः स्याद्दर्पाभूश्चातको मतः ॥८९॥
शिवा पिङ्गवती ज्ञेया विशालं सबलं मतम् । दुश्चर्मा शिपिविष्टः स्यात्कर्षकस्तु कृषीवलः ॥९०॥
कन्याजातश्च कानीनो पण्डः क्लीव इति स्मृतः । उत्कृष्टः श्वसुरः स्यातां म्लिष्टमव्यक्तवाचकम् ॥९१॥
रदनो हस्तिदन्तः स्याद्दानं कटकसंज्ञितम् । तोदनं चाङ्कुशं विद्यादालानं हस्तिबन्धनम् ॥९२॥
घनाघन इति ख्यातः शास्त्रेष्वधिकपौरुषः । अपाचीनं मनोज्ञं च बुद्धिर्ज्ञेया तु शेमुषी ॥९३॥
अर्कस्तु पादपे ज्ञेयो नदी स्यात्फेनवाहिनी । अश्वारोहो मरुद्यानोऽश्वानां हृदये ध्वनिः ॥९४॥
आक्रन्द इति विज्ञेयः खुराश्च शफसंज्ञिताः । आममांसं भवेत्क्रव्यं पक्वं पिशितमुच्यते ॥९५॥
शुष्कं तु विरसं ज्ञेयं मृष्टं सरसमुच्यते । शङ्खजं शुक्तिजं चैव वाराहं तिमिमौक्तिकम् ॥९६॥
वंशावाशीविषान्नागाज्जीमूताच्च तथाष्टमम् । लोकज्ञो दक्षिणो ज्ञेयो दक्षिणश्च तुरः स्मृतः ॥९७॥
आकूतं तु मतं विद्यात्कण्टकं गहनं मतम् । आननं चाकुले नेत्रे विकुरं चापि शस्यते ॥९८॥
पापः श्याम इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मतः । स्थविष्टं स्थावरे चैव दविष्टं दूरमुच्यते ॥९९॥
परमेष्ठी मतः श्रेष्ठः प्रेम प्रियमुदाहृतम् । प्रकाशः स्त्रीगृहेरक्तः शैलूष इति संज्ञितः ॥१००॥
पदकृच्चर्म्मकारः स्यान्नापितस्त्वजयः स्मृतः । लावण्यमाहुर्माधुर्यं चित्रं च शुभकर्म्मजम् ॥१०१॥
व्याधयश्चामयाः प्रोक्ताः पानीयं तु समुच्चयः । आधयस्तु स्मृताः प्राज्ञैश्चित्तोत्पन्ना उपद्रवाः ॥१०२॥
रंहो वेगः समाख्यातः सत्रं सच्चरितं स्मृतम् । आलवालं स्मृतं सद्भिरपां वेगनिवारणम् ॥१०३॥
चटकः फलविङ्कः स्यात्तुल्यं सदृशमुच्यते । किलासं पाण्डुरं ज्ञेयं दोला प्रेङ्खेति शस्यते ॥१०४॥
मन्दिरं नगरं ज्ञेयं निलयं चापि मन्दिरम् । सहस्रनयनोऽगारिः प्रधनं युद्धमुच्यते ॥१०५॥
पलाशो हरितो वर्णो मेचको नीलपिञ्जरः । उक्षाणं वृषभं विद्याल्लुलायो महिषो मतः ॥१०६॥
उस्रा वंध्या वसा वेहत् पृष्ठौही गर्भिणी हि या । व्याख्यातो मस्करो वेणुस्त्वचिसारः परिकीर्तितः॥१०७॥
हिलं कामं शपं चैव रोषमाहुर्मनीषिणः । कलभोऽल्पवयो नागः कलुषं चाविलं मतम् ॥१०८॥
वृजिनं कुटिलं विद्यात्सम्राट् राजा च भूभुजो । रत्नं वज्रं विजानीयात्त्रियामा क्षणदा मता ॥१०९॥
दीर्घं प्रांशु विजानीयात् ह्रस्वं नीचकमुच्यते । भूरि प्रभूतमुद्दिष्टमभितः सर्ववाचकम् ॥११०॥
पवनश्चानिलो ज्ञेयः पवनश्चाधमो जनः । प्रियवाक्यो भवेदार्यः स्नातश्च परिकीर्तितः ॥१११॥
आडम्बरश्च पटहो व्यञ्जनं बोधनं मतम् । विपंची वल्लकी ख्याता वीणा चैव निगद्यते ॥११२॥
मालती सुमना ज्ञेया सुमना मुदितो जनः । वल्लरी मञ्जरी ख्याता प्रपाऽप्शाला प्रकीर्तिता ॥११३॥

आयुर्निरुच्यते तोयं तेन जीवति पद्मकम् । तस्य पत्राक्षिमानेन रामो राजीवलोचनः ॥११४॥
उत्कृत्य कवचं देहादसृग्दग्धं च यत्पुरा । इन्द्राय दत्तवान्कर्णस्तेन वैकर्त्तनः स्मृतः ॥११५॥
तीक्ष्णश्चैव प्रचण्डश्च वृको नामानलो मतः । स पाण्डवस्य उदरे तेन भीमो वृकोदरः ॥११६॥
यस्य श्रुतिमुखा वाणी पुण्य-श्लोकः स उच्यते । यः खेदी चानिवर्त्ती च युद्धशौण्डः स उच्यते ॥११७॥
महासंसर्गसङ्घातं महेष्वासं प्रचक्षते । स्वविक्रमैस्तापयेच्च परं......यूथं तापयेत् ॥११८॥
यूथं तापयेद्यस्तं विज्ञेयश्च स यूथपः । तस्मादपि च यो वर्यः स तु यूथपयूथपः ॥११९॥
सिंहान्नितान्तसौवीरः स नृसिंह इति स्मृतः । ये हि स्पष्टप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिनः ॥१२०॥
यो यमित्थं च नाम्नाति स कीनाश इति स्मृतः । योऽप्रबुद्धोऽल्पबुद्धिश्च स तु मन्द इति स्मृतः ॥१२१॥
उपकारं तु यो हन्ति स कृतघ्न इति स्मृतः । हर्षे गर्वे सुखे खेदे वृद्धौ च प्रतिभासते ॥१२२॥
स्नेहभाग्यक्षये चैव मन्दशब्दो निगद्यते । नातीत्य वर्तते यत्र तदध्यात्मं प्रचक्षते ॥१२३॥
चेतसश्च समाधानं समाधिरिति गद्यते । सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृतः ॥१२४॥
निर्ममो निरहङ्कारो विज्ञेयः छिन्नसंशयः । प्रदाता देशकालज्ञः समाधिस्थः स उच्यते ॥१२५॥
मुखरोऽल्पमतिर्यस्तु सक्रोधश्चैव कीटकः । वृत्तिर्यत्र तु गृह्यानां परोक्षे बहिः तत्क्रिया ॥१२६॥
आहारव्यवहारेषु सा प्रीतिर्निरुपस्करा । परस्परं स्वदारेषु सतां येषां प्रवर्तते ॥१२७॥
विश्रम्भात्प्रणयाद्वापि सा प्रीतिर्निरुपद्रवा । यशः ख्यातिरिति प्रोक्तं तद्योगात्प्राहुरुच्यते ॥१२८॥
कीर्तिख्यातियशोयोगाद् भगवन्निति चोच्यते । प्रियदानेषु यः शुद्धः स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
रजस्वला तु या नारी सा चोदक्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्भावक्रिये स्वच्छरक्षालिंगितनुं विपुम्?॥१३०॥
तेजो रेतसि दीप्तौ तपो हि स्याद् वृषार्थकः । योऽन्यजातो हनो जीवः स शरारू इति स्मृतः ॥१३१॥
मिथ्यादृष्टिरहंमानी नास्तिकः सः प्रकीर्त्तितः । कामः क्रोधश्च वै पूर्वे लोभोऽसत्यं च मध्यमे ॥१३२॥
अन्ते मोहो विषादश्च यस्य ज्ञेयः स षड्वदः । अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्त्तरि गोलकः ॥१३३॥
अनयोर्योऽन्नमश्नाति स कुण्डाशी निगद्यते । भ्रूणस्त्री गर्भिणी बाला ब्राह्मणी ब्रह्मजीविनी ॥१३४॥
परचित्ते यवीयान् योः ज्येष्ठपत्नीं परामृशन् । यः पश्चिमश्च ज्येष्ठोऽपि परचित्तः स उच्यते ॥१३५॥
पुष्पजं क्षोमजं चर्म्मकोशजं भर्म्मजं तथा । गुणजं च समुद्दिष्टं तद्भेदा वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
बिम्बारक्तधरा या स्त्री विम्बोष्ठीं तां विनिर्दिशेत् । या स्यात् संक्रीडनपरा ललना तां विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
दूर्व्वाकाण्डप्रतीकाशा कुंभौ यस्यास्तनू कुचौ । सर्वरूपविविक्ताङ्गी सा भवेद्वरवर्णिनी ॥१३८॥
लावण्ययुक्ता या नारी ललितां तां विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवज्ज्योतिः सा ज्ञेया मत्तकाशिनी॥१३९॥
भूरिश्च भूरिमुद्दिष्टं अन्नं श्रव इति स्मृतम् । भूरि श्रवो ददातीह तस्माद् भूरिश्रवो हि सः ॥१४०॥
चतुष्पाद्विंशतिभुजो लोहितग्रीव एव च । निसर्गाद्दारुणात्क्रूराद्रवणाद् रावणः स्मृतः ॥१४१॥
रोषणा या भवेन्नारी भामिनीं तां विनिर्दिशेत् । न्यग्रोधलक्षणं विद्याद्धाना परिमण्डलम् ॥१४२॥
ताभ्यामुपेता वनिता न्यग्रोधपरिमण्डला । तत्तुल्ये चाक्षिणी यस्याः सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
वर्णप्रमाणनिर्घोषोऽछिन्नसंपद्भिरन्वितः । राजीवमन्ये शंसन्ति स्निग्धवर्णं सितासितम् ॥१४४॥*
किंचिदुत्तरतद्योगात्सीता राजीवलोचना । बलिभिर्यास्त्रिभिर्युक्ता शङ्खकण्ठी उदाहृता ॥१४५॥
.....जराकराकारं स्यन्दनाग्रमिवाग्रतः । वस्त्वे...ति तज्ज्ञेयं तस्यैवाग्रं........॥१४६॥
......त्तं मर्मसंयुक्तं तत्तथालिनमुच्यते । ग्रहणे धारणे सामे वाहने धर्मसंयुता ॥१४७॥
रमणे क्रीडने सङ्गे भार्या नाम प्रवर्त्तते । मूढतायां सविद्यायां सप्ताश्वस्त्वंशुमालिनि ॥१४८॥
विषमाक्षदरा एते ज्ञेयाग्रं तैः विसंस्थिताः । कोटरस्था इति ज्ञेयाः सर्प्पकीटखगादयः ॥१४९॥
आताम्रपल्लवो यस्तु वृक्षाणामचिरोद्गमः । ....॥१५०॥
सौकुमार्यं किसलयं कोमलत्वं च तत्स्मृतम् । शतानां च चतुर्हस्तं नल्वं तदिहसंज्ञितम् ॥१५१॥

* नोट—मूल प्रतिमें १४४ से १४८ तकके पद्योंपर उनके नम्बर नहीं पड़े हैं।

कुम्भो वाहः प्रस्थः समं नल्व इति विधीयते । विपिनं शून्यमित्युक्तं विपिनं गृहमेव च ॥१५२॥
रुक्म वर्णं च धामं च दर्शनीयार्थवाचकः । सर्वार्थश्चाप्युवर्णश्च पानीयं शीतमुच्यते ॥१५३॥
नीहारं शीतमित्युक्तं प्रदोषान्तो निशीथकः। .... ॥

इति महाकविश्रीधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णे अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेदः ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वाभिधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाष्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
अः कृष्णः आः स्वयंभूरिः काम ई श्रीरुरीश्वरः । ऊ रक्षणः ऋ ॠ ज्ञेयौ देवदानवमातरौ ॥२॥
ऌर्देवसूः ॡर्वाराही भवेदेर्विष्णुरैः शिवः । ओर्वेधा औरनंतः स्यादं ब्रह्म परम् अः शिवः ॥३॥
को ब्रह्मात्मप्रकाशार्के कः स्याद्वायुयमाग्निषु । कं शीर्षे सुसुखे कुस्तु भूमौ शब्दे च किं पुनः ॥४॥
स्यात्क्षेपनिन्दयोः प्रश्ने वितर्के च खमिन्द्रिये । स्वर्गे व्योम्नि मुखे शून्ये सुखे संविदि खो रवौ ॥५॥
गस्तु गातरि गंधर्व्वे गा गीतौ गो विनायके । स्वर्गे दिशि पशौ वज्रे भूमाविन्दौ जले गिरि ॥६॥
घस्तु सुघटीशे घा किंकिण्या च घुर्घ्वनौ । ङं मञ्जने ङो वृष भेजिने चः चन्द्रचौरयोः ॥७॥
चःसूर्ये कच्छपे छं तु निर्मले जस्तु जेतरि । विजये तेजसि वाचि पिशाच्यां जिः जवेऽपि च ॥८॥
झो नष्टे रवे वायौ ञो गायने घर्घरध्वनौ । टं पृथिव्यां करटे च ठो ध्वनौ ठो महेश्वरे ॥९॥
शून्ये वृहद्ध्वनौ चंद्रमंडले डं शिवे ध्वनौ । ढो भये निर्गुणे शब्दे ढक्कायां णस्तु निश्चये ॥१०॥
ज्ञाने तस्तस्करे क्रोडपुंच्छयोस्ता पुनर्दया । थो भीत्राणे महीधे दं पत्न्यां दा दातृदानयोः ॥११॥
वन्धे च धा गुहृये केशे धातरि धीर्मतौ । घूर्भारकंपचितासु नो नरे वन्धुबुद्धयोः ॥१२॥
निस्तु नेतरि नुः स्तुत्यां नौः सूर्ये पस्तु पातरि । पावने जलयाने च फो झंझाजलफेनयोः ॥१३॥
भाः कांतौ भूर्भुवः स्थाने भीर्भये मः शिवे विधौ । चंद्रे शिरसि मा माने श्रीमात्रोर्वारणेऽव्ययम् ॥१४॥
मुः पुंसिर्वंधने यस्तु मातरिश्वनि यं यशः । यास्तु यातरि खट्वांगे याने लक्ष्म्यां च रो धृतौ ॥१५॥
तीव्रे वैश्वानरे कामे राः स्वर्णे जलदे ध्वनौ । री भ्रमे रुर्भये सूर्ये ल इंद्रे चलनेपि च ॥१६॥
लं तैले लीः पुनः श्लेषे ली भये वो महेश्वरे । वः पश्चिमदिशास्वामी व इवार्थे स्मरेऽव्ययम् ॥१७॥
शं शुभे शा तु शोभायां शी शयने शु निशाकरे । षः श्लिष्टे पुनर्गर्भे विमोक्षे षः परोक्षके ॥१८॥
सा लक्ष्म्यां हो निपाते च हुस्ते दारुणि शूलिनि । क्षं क्षेत्र रक्षसीत्युक्ता माला प्राक्सूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥छ॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानुक्रमणिका

नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

फ

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

भाष्यगता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

सङ्केतविवरण

अ० चि० अभिधानचिन्तामणि
अनेका० सं० अनेकार्थसङ्ग्रह
अम० को० अमरकोश
अम० को० क्षी० भा० अमरकोश क्षीरस्वामी भाष्य
अमर० अमरकोश
अ० सं० अनेकार्थसंग्रह
उ० सू० उणादि सूत्र
कल्प० को० कल्पद्रुकोश
का० उ० कातन्त्र उणादि
का० रू० उ० कातन्त्र रूपमाला उत्तरार्ध
का० रू० पू० कातन्त्र रूपमाला पूर्वार्ध
का० रू० पू० सू० कातन्त्ररूपमाला पूर्वार्धसूत्र
का० सू० कातन्त्रसूत्र
क्षी० भा० क्षीरस्वामिभाष्य
क्षी० स्वा० क्षीरस्वामी
जन० समु० जनपदसमुद्देश
जै० सू० जैनेन्द्रसूत्र
त० सू० तत्त्वार्थसूत्र
नीतिसा० नीतिसार
नी० वा० समु० सू० नीति वाक्यामृत समुद्देशसूक्ति
प०प० पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका
पा० उ० पाणिनि उणादि
पा० गणसू० पाणिनि गणसूत्र
पात० भाष्य पातञ्जलमहाभाष्य
पा० सू० पाणिनिसूत्र
भो० उ० भोजउणादि
मे० को० वा० व० मेदिनीकोश वान्तवर्ग
यश० ति० आ० क० यशस्तिलक आश्वास कल्प
वि० को० का० विश्वलोचनकोश कान्तवर्ग
वि० लो० विश्वलोचन कोश
श० च० शब्दार्णवचन्द्रिका
श० च० सू० शब्दार्णवचन्द्रिका सूत्र
शा० कारिका शाकटायन कारिका
शा० सू० शाकटायन सूत्र
सर० क० सरस्वतीकण्ठाभरण
सार० समा० सू० सारस्वत समास सूत्र
हे० च० हेमचन्द्र
हे० श० हेमशब्दानुशासन

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	प०	अशुद्धयः	शुद्धयः
७	१४	सरं	शरं
५३	२	स्तमितं	स्तनितं
५४	२१	मुक्तोपा-	मुत्तोपा-
६५	९	विपाशयः	विपक्षयः
६९	२	निकुरो	निकरो
७१	२१	श्वेतो	श्येतो